"SOCIO-ECONOMIC CONDITION AS DEPICTED IN THE KATHASARITSAGAR OF SOMADEVA"

(In Hindi)

A Thesis Submitted for the

Degree

of

Doctor of Philosophy

by

Surya kant

Under the Supervision of

Dr. A. P. Ojha

Department of Ancient History Culture & Archaeology

University of Allahabad

Allahabad (India)

2002

आत्म निवेदन

माध्यमिक स्तरीय शिक्षा-प्राप्तिकाल मे एक दिन विद्यालयीय-पुस्तकालय मे मेरी दृष्टि एक पुस्तक 'बेताल-पचीसी' पर गयी। कौतूहल हुआ पुस्तक निर्गत करायी। मैने पढी। लघु कलेवर, एक विस्तृत चिन्तन शिव-सुघर-धार से उच्छरित जीवन-गति विकासोन्मुख-भाव-बिन्दु-सिक्त पुस्तक। मेरा मन-मस्तिष्क-समग्र स्नात आर्द्र। कथा की गति से अन्त अभिभूत मै उस प्रकार की कथाओ का अन्वेषी बन गया।

महाविद्यालय एव विश्वविद्यालयी शिक्षास्तर तक पहुच सस्कृत भाषा और साहित्य के इतिहास का अध्ययन करते समय मै एक विचित्र तथ्य से अवगत हुआ कि सुविख्यात कथा काव्य कादम्बरी का कथा-विस्तार कदाचित किसी कथासरित्सागर/वृहत्कथान्तर्गत समाविष्ट आख्यान क्रम से उत्प्रेरित है। और वही पूर्व पठित बेताल-पचीसी भी सगुम्फित है। फिर तो मेरी उत्कण्ठा एव अभिरुचि सस्कृत साहित्य की ओर अत्यधिक अभिवर्द्धित हुयी। नियति ने मुझे प्राचीन इतिहास सस्कृति एव पुरातत्व अध्ययन की ओर अभिमुख कर दिया। सफल भी हुआ मै। एम0 ए0 परीक्षा उत्तीर्ण करने के अनन्तर अपने अन्य सहाध्यायियो की ही भाँति अनुसन्धित्सुभावी मानस मै प्रेरणा एव निर्देश प्राप्ति के लिए यत्नशील हुआ। विधिवशात् तत्कालीन प्रोफेसर (अध्यक्ष) प्राचीन इतिहास सस्कृति एव पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय श्री वी0डी0 मिश्र जी के समक्ष मैने अपनी उत्कण्ठा प्रकट की। उन्होने मेरी अभिरुचि जाननी चाही। मैंने माध्यमिक पुस्तकालय से सम्प्राप्त वेताल-पचीसी की चर्चा सहजभाव से कर दी/बस/तत्क्षण उन्होने कहा-समझ गया। अपनी चिरसजोयी मूर्त करने का अवसर तुम्हारा उपस्थित है। 'कथा सरित्सागर' का अध्ययन करो और उसी में वर्णित किसी पक्ष विशेष शोध-विषय विनिश्चित कर लो।

चिरसजोयी ललक सम्पूर्ति के लिए प्रेरणा सूत्र पाकर मै आह्लादित हो उठा।

कथासरित्सागर एव तद्विषयक कथागत, विषयगति एव स्वरूपगत ज्ञान बोधार्थ उन्मुख हुआ। ग्रन्थोपलब्धि में कठिनाई किन्तु येन-केन-प्रकारेण सम्प्राप्ति हुई। कलेवर देख कर ही हतासा ने अक्रान्त किया- किस पक्ष का अध्ययन समीचीन अथवा असमीचीन-उहापोह। पता चला ग्रन्थ का सास्कृतिक अनुशीलन दो रूपो मे हो चुका है-
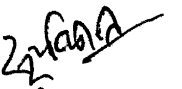
'कथासरित्सागर' तथा भारतीय सस्कृति एव 'कथासरित्सागर एक सास्कृतिक अध्ययन'। विद्वानद्वय डॉ0 एस0एन0 प्रसाद और वाचस्पति द्विवेदी की कृतियो का अध्ययन किया। मार्ग मिला। विनिश्चय किया-ग्रन्थान्तर्गत उपलब्ध तत्सामयिक सामाजिक एव आर्थिक स्थिति का अनुशीलन करू। इसी भाव भूमि पर गुरुजनो की प्रेरणा मिली, विषय विनिश्चय हुआ-'कथासरित्सागर मे प्रतिबिम्बित सामाजिक आर्थिक स्थिति' बस। इसी दिशा मे अनुशीलन रत हुआ। निविड कथानुकथा-सग्रह 'कथासरित्सागर' मे समाज तथा अर्थ-व्यवस्था-अन्वेषण महत् दुष्कर प्रतीत होने लगा। अन्तत मेरे अध्ययन को गति तब मिली जब गुरुवर्य डॉ0 ए0पी0 ओझा जी ने अभिप्रेरित किया और परमादरणीयद्वय डॉ0 आर0 पी0 त्रिपाठी रीडर प्राचीन इतिहास सस्कृति एव पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद एव डॉ0 विमल चन्द्र शुक्ल रीडर इव्गि क्रिश्चियन कालेज इलाहाबाद ने साहस बधाया डॉ0 सी0 डी0 पाण्डेय जी एव डॉ0 वी0पी0 दुबे जी के प्रति आभारी हूँ जिनसे शोध कार्य के प्रति निरन्तर सहयोग मिलता रहा।

शोध-प्रबध-'कथासरित्सागर' मे प्रतिबिम्बित 'सामाजिक, आर्थिक स्थिति' मे उपस्थापित सामाजिक आर्थिक स्थिति का विश्लेषण ग्रन्थ मे सकलित आख्यानान्तर्गत घटनानुक्रमोद्भावित, तत्परिवेश एव तदानुसगमित पात्र-चरित्र और उनके क्रिया-कलापाभासित तथ्यो पर आधारित है। साथ ही विश्लेषण समग्र मेरी निज की गति-मति-साधित है।

अन्त मे अपने पूज्य ! पितृ चरण श्री कमला प्रसाद तिवारी एव माता के प्रति जो मुझे अहर्निशि प्रेरणा देते रहे, के प्रति नत शिर आशीर्वादाकाक्षी एव पितृ तुल्य अग्रज श्री के0 के0 तिवारी जी एव भाभी के पुत्रवत् स्नेह का पात्र का बनकर ही मै आज इस योग्य हुआ। शोधकार्योद्भूत कठिनाईयो के कारण, विश्रान्ति के क्षणो मे पत्नी ज्योति एव पुत्री अनन्या के बीच स्वय को हर्षित पाता था। शीध्रता पूर्वक टकण कार्य हेतु श्री सजय जायसवाल जी के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करना मै अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध सूधीजनो के लिए किञ्चिद् मात्र भी उपादेय सिद्ध हो सकेगा, तो मै अपने प्रयास एव स्वय को धन्य समझूँगा।

24/5/02

तिथि

सूर्य कान्त

शोध छात्र

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

प्राचीन कथा साहित्य का विकास
एवं
उसके अन्तर्गत कथासरित्सागर का स्थान

प्राचीन कथा साहित्य का विकास एवं उसके अन्तर्गत कथासरित्सागर का स्थान

समस्त ज्ञान के स्रोत वेद ही कथा-साहित्य का उत्स है। पुरातन सर्वस्व ग्रन्थ ऋग्वेद मे कथा साहित्य के तत्व हम विविध सूक्तो मे सहजत उपलब्ध कर सकते है। विश्व साहित्य ने भी वस्तुत· भारतीय वाङ्मय के आदि ग्रन्थ वेद से ही जीवन्तता ग्रहण की है। वेद का अर्थ ही ज्ञान होता है। कथा साहित्य मे जीवन के सभी तत्व गुम्फित रहते है। वेद मे जीवन जीने की समस्त प्रक्रिया स्तुतियो, प्रकृति वर्णनो, विविध सवादो मे, विश्लेषित किये गये है। जीवन की नैतिकता, सौहार्दता, सौमनस्यता, उदात्तता सहिष्णुता त्याग आदि गुणो की मनोरम रसमयता वस्तुत कथात्मक साहित्य के ही विषय है, इसलिए कि कथा मे सरलता, माधुर्य, रोचकता, भावो की सहज अभिव्यक्ति, प्रकृति और प्रवृत्ति-वृत्ति की सूक्ष्म विवेचना कथा पात्रो के घटनागत संवादो के माध्यम से की जाती है। सबसे बडा वैशिष्ट्य यह है कि कथा मे नीति, सदाचार सद्व्यवहार, सहयोगिता, सहचर्या आदि का कथन सिद्धान्त रुप मे नही बल्कि व्यवहारिक रूप मे किये जाते है। कथागत पात्र इन सभी भावो

के प्रतिमान बनकर पाठक के अन्तर्मन को प्रभावित करते है। भले ही कथा पात्र मनुष्य न होकर पशु-पक्षी ही क्यो न हो। पशु-पक्षियो मे जीवन के उदात्त भावो का समावेश, पाठक को कौतुहल-प्रक्रिया मे प्रभावित करता है। यदि देखा जाय तो सृष्टि का प्रारम्भ ही कथा रूप है। प्रलय, जल-प्लावन अक्षयवट, शेषशय्या, विष्णु-नाभि-कमल से परमेष्ठिन् ब्रह्म का अवतार, फिर उनके द्वारा सृष्टि-रचना की प्रक्रिया रीति। यह क्या कथात्मक विधा नही है? क्या यह कथा नही है? तात्पर्य यह है कि कथा का उद्भव, सृष्टि एवं मानवोत्पत्ति के समानान्तर हुआ। साहित्य का स्वरूप उसे वेद के सूक्तो मे, ऋचाओ के माध्यम से प्राप्त हुआ। ऋग्वेद के कई संवादात्मक सूक्तो मे विद्वानो ने कथातत्वो का अभिनिवेश स्वीकारा है। हॉ यह भी एक उल्लेखनीय तथ्य है कि इन सूक्तो मे कथा-संवाहक मानव प्राणी कम मानवेतर प्राणी प्रमुख है। अनुमान है, यह इसलिए कि मानवेतर प्राणी मे सौमनस्यता, सहिष्णुता, त्याग तथा उदात्तता आदि गुणो का अभिनिवेश पाठक के लिए सद्य-प्रभावी है। अधिकतर विद्वानो का मत है कि प्रारम्भत. यह कथाएँ मात्र कौतूहल-तत्वधारक बन मात्र कथा रूप ही रही, शनै-शनै साहित्य अन्वीक्षको ने उनमे सन्निविष्ट घटनाओ और कथापात्रो के चारित्रिक-परिवीक्षण मे जीवन-तत्वो के दर्शन किये और उन्हे ज्ञान-भूमि अनुमिति किया 'वैदिक युग की कथाओ मे मानवेतर तत्व एवं कल्पना की सुखद उडान का दिग्दर्शन सहज मे ही हो जाता है। प्रारम्भ मे सम्भवत· कथा का उद्देश्य केवल कथा ही रहा होगा। कालान्तर मे कथा, कहानी के अभिप्राय से हटकर ज्ञान के क्षेत्र से सम्बन्धित होने

लगी। यह नि·सन्देह कहानी लेखन के इतिहास मे महत्वपूर्ण सोपान था।'[१] यह अभिमत वस्तुत पाश्चात्य विद्वानो की अवधारणा से अभिप्रेरित है। तथ्यत वैदिक सूक्तो के सवादो मे कथात्मक-तत्व-अभिपोषित सवाद अत्यन्त ही सारगर्भित एव ज्ञानबोधक है, वह कथमपि मात्र कथा नही कहे जा सकते।

ऋग्वेद के कई सूक्तो मे कथा-तत्व प्रतिष्ठित करने का जो प्रयास विद्वानो ने किया है, और जिनमे मानवेतर प्राणियो का ही प्रतिनिधित्व होने से मात्र कौतूहल-वर्धक शुद्ध कथा रूप ही स्वीकारा है, यह सगत नही है। ऋग्वेद मण्डल १०/सूक्त १०८ पूरा का पूरा कथात्मक तत्व सनाथ है। उसमे सरमा ने इन्द्र की दूतिका बनकर पणियो को, गुरु वृहस्पति की गाय लौटाने की मंत्रणा देती है, गायो को वह राष्ट्र की सम्पत्ति कहती है। राष्ट्र की सम्पत्ति राष्ट्र की है, किसी एक की नही। पणि उसे धन, अधिकार का प्रलोभन देकर अपनी सहभागिता के लिए अभिप्रेरित करते है। उसे भगिनी संबोधन देते है पर उसे पणियो का प्रस्ताव स्वीकार नही होता। क्या हम इसे मात्र कथा कह सकते है? इसमे ज्ञान उस ज्ञान को अधिष्ठित करने का प्रयास है, जिसके आधार पर भारतीय महनीयता की प्रतिष्ठा आज तक अक्षुण्ण है और यह है सार्वभौम मंगल कामना, राष्ट्रीय-भावो की उदात्तत·, राष्ट्र की वस्तु पर किसी भी व्यक्ति समुदाय का अधिकार कथमपि नही हो सकता। इतना ही नही सरमा के व्यवहार और चरित्र से हम एक राजदूत के सत्य स्वरूप का ज्ञान करते है। उक्त सूक्त का विवेचन

हमे बीसवी शती के एक काव्येतिहास अथ-अनुक्रम[२] मे स्पष्टत साक्षात होता है। इसी प्रकार एक अन्य सूक्त मे ऋषि विश्वामित्र एव नदियो का सवाद बडा ही विस्मयकारक है। विश्वामित्र नदियो को भगिनी सवोधित करते है और नदियो ने उन्हे भाई का सम्मान दिया। विश्वामित्र नृपति सुदास पैजवन का पुरोहित/नदियो को पारकर नृप के यहॉ यज्ञ सम्पन्न कराने गया, विडम्बना उसके जाने के पश्चात् ही नदियॉ उफना उठी। उन्हे लॉघना दूभर ही नही असम्भव था उसको तो आभास भी न था उस ऋषि ने वहॉ से पर्याप्त सम्पत्ति प्राप्त कर प्रत्यावर्तित हुआ, उसे क्या मालूम था कि नदिया उफना जायेगी। गाडियो पर लदा धन-धान्य, अनेक साथी, नदियो का पुलिन, सामने अपार जलराशि का उफान, वह विस्मय पूर्ण नेत्रो से देखता ठगा रह गया। विश्वामित्र ने नदियो की स्तुति किया, मातृतया सिन्धु की शरण मे आया हूँ, रक्षा का इच्छुक मै कौशिक पुत्र बड़े मनोयोग से सिन्धु की ओर मुख करके विनती कर रहा हूँ [३/३३-४] अन्त मे ऋषि ने नदियो को भगिनी का संवोधन देकर प्रार्थना किया- हे भागिनियो, मुझ भाई की प्रार्थना अस्वीकार न करो। रथ पर बैठकर और ठेले पर सामान लादकर मै बड़ी दूर से आ रहा हूॅ। मेरा कहना मानकर थोडी नीची हो जाओ, अपनी धार को मेरे पहियो की कीली से नीचा कर लो, मेरे लिए सुगमता से पार करने योग्य हो जाओ।

अन्तत. 'स्वसा', सम्बोधन सुनकर नदियो का हृदय द्रवित हो उठा और

उन्होने विश्वामित्र को पार जाने का मार्ग दे दिया। क्या इस कथा को हम मात्र कथा का ही रूप माने? कथमपि नही। इसमे जीवन के वह उदात्त भाव समाविष्ट है जो जीवन को दिव्यता प्रदान करते है। क्या इस कथा मे ज्ञानोपदेश नही है? इसी प्रकार कथा के दिव्य तत्वो से पूर्ण सूक्त है- यम-यमी सवाद (ऋग्वेद १०/१०) और पुरुरवा-उर्वशी सवाद (ऋग्वेद १०/९५) इनको उपजीव्य रूप मे ग्रहण करके कालान्तर मे काव्य एव कथा काव्य प्रणीत हुए। ऋग्वेद के मण्डल ७/१०३ सूक्त मे तपस्यारत व्रती द्विजों के रूप मे मण्डूको का समूह चित्रित किया गया है।[३] वेद मे प्रकृति एव मानवेतर प्राणियो के साथ सहयोग, सद्भावना, सहृदयता और आत्मीयता का अकुर प्रकटाया गया है। वस्तुत कथा साहित्य का सर्वाधिक महत्व पूर्ण केन्द्रीय तत्व यही है। एवमेव जीवात्मा-परमात्मा के सम्बन्धो और प्रकृति-सग उनकी तादात्मयता का विश्लेषण अथर्ववेद मे मिलता है, जिसे एक ही वृक्ष पर बैठे दो पक्षियो के माध्यम से ही प्रस्तुत किया है। इस कथानक मे वृक्ष **जगतप्रपंच** अथवा **मानव शरीर** है। उस पर बैठे दो पक्षी-जीवात्मा तथा परमात्मा है। जीवात्मा वृक्ष के फल खाता है, अर्थ यह है कि सांसारिक भोगों को, कर्मफलो को भोगता है। परन्तु परमात्मा वही बैठे बैठे दृष्टा है। यह कथा ऋग्वेद मे भी आयी है। ऋचा का अभिप्राय है- सुन्दर पंखो वाले दो पक्षी है, जो संग-संग निवसते है, परस्पर सखा रुप है, समान वृक्ष पर अवस्थित है। उममे से एक स्वादु फलो का भक्षण करता है, दूसरा भक्षण नही

करता।[४] क्या इस कथा का विषय मात्र कथात्मक प्रस्तुति है? इसमे जीवन के मूल तत्व प्रकृति-पुरुष, जीवात्मा-परमात्मा की स्थिति, अस्तित्व का सत्य ज्ञान दिया है। परुरवा-उर्वशी का मूल वैदिक कथानक का ही विस्तार कालान्तर मे पुराणो एव ललित साहित्य मे किया गया है।

एक महत्वपूर्ण तथ्य विचारणीय अवश्य है कि न केवल वेद अपितु पुराणो मे भी कथा तत्व के सवाहक पात्र मानवेतर प्राणी पशु-पक्षी ही है क्यो? इसका रहस्योद्घाटन प्रारम्भ की पक्तियो मे किया जा चुका है, वह यह कि पशु-पक्षियो मे जीवन के दिव्य तत्वो का समावेश उनकी व्यहृत पाठक को कौतूहल पूर्ण रीति से आत्मसात करने मे अधिक सहज है। ब्राह्मण ग्रन्थो एव उपनिषदो मे भी मानवेतर प्राणियो की कथाएँ है, वह प्राय नीति परक और उपदेशात्मक है। जो सद्य प्रभावक है। उपनिषदो मे जो कथाएं प्राप्त होती हैं उनका स्वरुप पर्याप्त सीमा तक विकसित है। छान्दोग्योपनिषद की दो कथाएँ इस तथ्य का प्रमाण है। एक जिसमे भोजन के लिए कुत्ते अपना एक मुखिया निर्वाचित करते है और दूसरी मे हसो के सवाद मे रैक्व का ध्यान आकर्षित करने की चर्चा है।[५] इस उपनिषद् मे सत्य ज्ञान को बैल हंस तथा एक जलचर पक्षी के माध्यम से ब्रह्म विद्या का उपदेश दिलाया गया है।[६]

पंचतंत्र की कथाओ का विकसित रूप का उपजीव्य महाभारत का शान्तिपर्व

ही प्रतीत होता है। कथाएँ नीति परक जीवन मे नैतिकता, विवेकशीलता, चातुर्य, कूटनीतिज्ञता के महत्व, से परिपूर्ण है। सोने के अण्डे देने वाली चिडिया, धार्मिक मार्जार का अपने बुद्धिबल से मूषको को विश्वस्त, आश्वस्त करना अपनी कूटनीतिज्ञता द्वारा शृगाल द्वारा अपने अन्य साथियो को छल प्रक्रिया से ठग कर लूट की सारी सम्पत्ति हस्तगत किये जाने की कथाएँ मानव जीवन को भी व्यवहृतिमूलक है। शान्तिपर्व के अतिरिक्त आहिपर्व मे भी कुत्ता, गजकच्छप कथा, वनपर्व मनु-मत्स्य कथा आदि विविध कथा-सन्दर्भ, कथा-विकास के ही सोपान है। पाणिनि के २-१-३,२-४-९, ५-३-१०६ सख्यक सूत्रो पर किये गये पतजलि के भाष्य मे अजाकृपाणीय, काकतालीय, लोकोक्तियॉ, अहिनकुलम्, काकोलूकीयम् आदि नीति कथाए भी कथा साहित्य को विकसित करने मे सोपान ही है। पालि साहित्य की जातक कथाए जिसमे बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाएँ संकलित है, भारतीय कथा साहित्य की अक्षय निधि है। उपनिषद् आदि मे सदर्भित मानवेतर-प्राणियो पशु-पक्षियो एवं अन्यान्य जीव जन्तुओ की कथाओ से विशिष्ट है। इसमे कुछ कथाएँ ऐसी भी जिनमे बुद्ध मनुष्य योनि मे उपस्थित है। जातक ईसापूर्व-तीन सौ मे संकलित हो चुके थे। यह अतिविशाल संग्रह है। पॉच सौ कथाओ का संकलन इसे सभी विद्वान स्वीकारते है। वेद से लेकर बौद्ध जातक कथाओ मे अद्‌भुत कथा, लोक कथा, कल्पित कथा, एवं पशु कथा सभी के रूप उपलब्ध है।

द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व मे रचित पतजलि के महाभाष्य मे सदर्भित लोकोक्तियो एव न्याय उक्तियो से आभास मिलता है, कि मानवेतर प्राणी पशु-पक्षियो की कथाए, तत्कालीन सामाजिक जीवन मे अतिशय लोकप्रिय रही, ये कथाएँ प्राय कल्पना-प्रसूत और चमत्कार पूर्ण रही, सम्भव है साहित्यिक रूप का आधार यही रही हो। प्रमाणाभाव मे अधिकारिक रूप से कथा-साहित्य का उद्‌गम मानना असंगत प्रतीत होता है। तथापि महाभारत, रामायण, आदि मे सदर्भित नीति परक पशु पक्षी की पारस्परिक व्यवहृति एव आचार विषयक कथाएँ साहित्यिक कथाओ के अभिप्रेरणा रूप मे अवश्य स्वीकारणीय है। क्योकि भरहुत[७] के स्तूप पर भी बौद्ध जातको की ऐसी कथाएँ उट्‌टकित रही है। उन्ही 'प्रकृति', 'प्रवृत्ति' एवं 'वृत्ति' के समानान्तर कथाएँ पल्लवित कथाएँ कलात्मक ढंग से विकसित होकर साहित्यिक भाव-भाषा-सवलित पचतंत्र मे प्राप्त है, भले ही उनमे पूर्णत साहित्य-तत्व का अभाव है। परन्तु ये कथाएँ साहित्य-प्रवृत्तात्मकतोन्मुख नही है, यह कहना अनुचित है। पंचतत्र का गद्य और पद्य दोनो भाषा-भाव के साथ ही अलकृति का प्रतिविम्ब उपस्थित करते है। विद्वान् इस सम्बंध मे मतैक्य नही है- 'नि.संदेह पंचतंत्र मे कल्पित कथाओ का विस्तार मिलता है, किन्तु उसमे कलात्मक एवं साहित्यिक तत्वो का अभाव पाया जाता है। पंचतंत्र पूर्णरूपेण कल्पित कथाओ का वृहत् संकलन है। कथाओ का विभाजन भारतीय दृष्टिकोण के आधार पर नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र के रूप मे हो सकता है।[८]

इतिहास गद्य साहित्य मे परिगणित होता है, परन्तु राजतरगिणी, नवसाहसाकचरित, पृथिवीराजविजय आदि भी इतिहास कोटिक रचनाएँ है जिन्हे **'काव्येतिहास'** की सज्ञा से अभिहित किया जाता है। तथैव कथा साहित्य की भी रचना दोनो विधाओ मे होती है। मुख्यत कथासाहित्य गद्यात्मक ही होता है। प्रकृत्यानुसार कथा मे घटनादि क्रम को वर्णनात्मक गद्य मे और कथा का निहितार्थ पद्य मे विश्लेषित होता है। कथा की इस प्रकृति का दिग्दर्शन पंचतंत्र, हितोपदेश और ई०पू० तृतीय शती के सकलन, बौद्ध जातक कथाओ मे प्राप्त होती है। जातको मे तो कथा का समाहार ही एक या दो गाथाओ मे धार्मिक एव नैतिक भावो की विवृत्ति द्वारा किया गया है। कथा की विधा गद्य ही है। गद्य-पद्य मयी कथा प्रकृति का प्रथम दर्शन हमे ऐतरेय[९] ब्राह्मण मे प्राप्त होता है। ऐसी कथाओ मे पद्य भाग विशिष्टता रखता है। क्योकि उसमे कथा का कथ्य अपनी प्रकृति मे उजागर होता है। साधारणतया कथा के ग्रन्थ गद्य मे पाये जाते है। इस प्रकार कथा का गद्य के साथ सम्बन्ध प्रारम्भ से ही पाया जाता है। इस प्रवृत्ति का प्रारम्भिक स्वरूप ऐतरेय ब्राह्मण के कथात्मक पद्यो मे देखा जा सकता है। कथा ग्रन्थो की रचना के लिए श्लोक संग्रह की पद्धति का प्रार्दुभाव इसी समय हुआ इसमे कथा के स्वरूप को ग्रहण करने की पूर्ण क्षमता है।[१०] बाद मे कथा ग्रन्थ इन्ही श्लोको के आधार पर काव्य की शैली मे लिखे जाने लगे।

शनैः-शनै कथा विकास क्रम मे कथा प्रकृति को अधिकाधिक प्रभावोत्पादक सहज, सारगर्भित बनाने के लिए इसे विस्तृत स्वरूप प्रदान किया। इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत कथा-मूल मे उसकी प्रकृति के अनुकूल निहितार्थ के उद्भावनार्थ कतिपय कल्पनात्मक एव घटना परक, संदर्भ समायोजित करने की परम्परा प्रारम्भ हुयी। इस परम्परा से 'कथा लेखकों' को प्रकारान्तर से स्वप्रतिभा एवं कल्पना-विस्तार का अवसर तथा, कथा मे विविध कथा-संवाद-सन्निवेश की स्वच्छन्दता भी प्राप्त हुयी। यह स्वच्छन्दता काव्य कथा के लिए संजीवनी बनी जिसके सुष्ठु दर्शन, काव्येतिहास, के कथात्मक अंशो मे, अतिशयता से उपलब्ध होता है। कथा प्रकृति-अनुकूल लघुकथानको का समायोजन, घटनाक्रम का सातत्य, एवं अग्रान्त्य, तारतम्य, समीचीन होने लगा। कथानक के असाधारण विस्तृति के लिए कवियो ने मूलकथा के अन्तर्गत अनेक लघुकथाओ को इस प्रकार पिरो दिया है कि कथा के विस्तार के साथ-साथ उनमे तारतम्य स्थापित हो जाता है, और इस प्रकार अनेक कथाओ के साम्राज्य का ताना-बाना बुनना कोई सरलकार्य नही था, यह निश्चय ही किसी अज्ञात पुरुष या वर्ग की कल्पना रही होगी। कथा की इस प्रवृत्ति से नि सन्देह अनेको नयी कथाओ का सम्मिश्रण हुआ होगा। यद्यपि ऐसी कथाओ का मूल प्रचलित कहानी ही रही होगी। परन्तु कथा-साहित्य मे उसे सदर्भित करने के लिए कथाओ मे अनेको मूलभूत परिवर्तन अवश्य किये गये होगे। इस मत की पुष्टि का सबसे सुन्दर उदाहरण बौद्धजातक ग्रन्थ

है।[११] यह सर्वविदित तथ्य है कि जातक कथाओ का मूल तत्कालीन, मध्यदेशीय लोक कथाओ मे ही सन्निहित मानना पडेगा। उन्ही लोकप्रिय परम्परा से चली आ रही, कथाओ को निज धर्म एव परिवेश के अनुकूल रुपान्तरित कर लिये गये होगे। इसप्रकार जातक कथाएँ विश्व कथा साहित्य की अक्षय निधि बन गयी।

वर्ण्य विषय

भारतीय वाङ्मय समग्र कथा साहित्य की भूमि है। ज्ञान के उत्स आदि ग्रन्थ वेद अपने सूक्तो मे सृष्टि-रचना की कथा नद-नदी, वन-पर्वत के आख्यान, ब्राह्मण ग्रन्थो मानवीय चरित दिव्य जीवनकी कथा, और पुराणो मे तो जीवन के उदात्त, अनौदात्त, ऊर्ध्व एवं अधोमुखी पद्धति के, विश्लेषक संदर्भो को, कथायित किया गया है। महाभारत तो पूरा का पूरा जीवन की दिव्यता-अदिव्यता को, सांस्कृतिक मूल्यो के साक्षात्कार-क्रम मे धर्म, समाज संग, राष्ट्रीयअस्तित्व और राष्ट्रधर्म, की कथा प्रस्तुत करता है। कथा आख्यायिका के माध्यम से जीवन-तत्वो का सुगम विवेचन करने की यह परम्परा भारतीय मनीषा की है। इसीलिए भारतीय वाङ्मय कथात्मक साहित्य का अक्षय भण्डार बन गया। भारतीय कथा साहित्य मे दिव्य कल्पना एवं कौतूहलदायिनीवर्णना का अभूतपूर्व संगम हुआ है। वर्णनात्मक साहित्य की दृष्टि से संस्कृत साहित्य अक्षय भण्डार स्वरूप है। संस्कृत के वर्णनाप्रधान साहित्य के अनुशीलन करने पर निष्कर्षत.

यह अवधारणा पाश्चात्य साहित्यानुशीलको ने स्थापित की है कि 'यह साहित्य न केवल धर्मप्रतिष्ठा हेतु जनमनरजन की वस्तु है वरन् इसमे एक सौष्ठवपूर्ण काव्य दृष्टि का सम्यक् निदर्शन भी प्राप्त होता है।' इसी कारण पाश्चात्य विद्वान् और इतिहासान्वेषी विण्टरनित्स ने भारतीय वाड्मय के कथा साहित्य को उत्कृष्ट बौद्धिक मस्तिष्क की उपज अभिहित किया है।[१२]

भारतीय वाड्मय मे दो शब्द युग्म पुराकथा साहित्य और प्राचीन कथा साहित्य सामान्यत समानार्थ-बोधक प्रतीत होते है। परन्तु समानार्थ स्वीकार लेने पर कथा साहित्य के विकास उत्स को वेद अथवा पुराणो से असम्बद्ध करना पडता है। पुरा आख्यान का उत्स मानव जीवन के उदयकाल से संयोजित करना पड़ेगा, जिसमे विस्मयता, दैवकृपा, अज्ञातपुरुष, छद्मवेशी प्राणी आदि के अत्यधिक कौतूहलपूर्ण क्रिया-कलाप के अतिशयता से दर्शन होते है जो यदा-कदा विश्वास भूमि पर निकषायित होने की क्षमता से दूर हो जाते है, पर हम उन्हे कथा-साहित्य से पृथक नही कर सकते क्योकि वह आख्यान भी वर्णनात्मकता की कोटि है। कथा साहित्य मे वर्णन उसका प्राण है वह गद्य अथवा पद्य किसी भी विधा मे हो। उन कथात्मक वर्णनो का अभिधान, गाथा, एवं पुरा-आख्यान अथवा पौराणिक आख्यान के रुप मे होता है। वस्तुत. इन्हे इतिवृत्तात्मक, भावभूमि पर संकलित मानवीय भावो की सुष्ठु अभिव्यक्ति कहना ही अधिक तर्क संगत प्रतीत होता है। इनमे घटनाक्रम की संयोजन-प्रक्रिया

कल्पनातिशयी एव अतिरजनामयी हो उठती है। कथा साहित्य के विकास-क्रम मे ऐसे पुरा अख्यानो को सर्वथा रूप मे अस्वीकारना अदूरदर्शिता ही कही जायेगी। इस प्रकार हम कह सकते है कि प्राचीन कथा-साहित्य का इतिहास मानवीय-इयत्ता से सम्बद्ध है।[१३] सस्कृत कथा-साहित्य सर्वत मौलिक है और उसकी वर्णना शैली किसी भी परम्परा की ऋणी नही है।

पाश्चात्य विद्वान विण्टर नित्स के अनुशीलन का निष्कर्ष है कि संस्कृत भाषा का वर्णनात्मक अर्थात् अख्यान साहित्य, विषय वस्तु एव घटना-क्रम के साथ-साथ छन्द आदि की दृष्टि से भी मौलिक है। कथा वर्णन मे धीरोदात्त नृपति, सामन्ती प्रवृत्ति पूर्ण पुरुष, धीरवीरो, सुन्दरियो, राजकुमारियो, सन्तो, तंत्र-मत्र एवं उनके प्रयोग कर्ताओ, जादूगरो, आडम्बरी जनो, देवदासियो, गणिकाओ के विविधपक्षीय चरितो का आकलन प्राप्त होता है। प्रकारान्तर से देशकाल तथा संस्कृति की झलक प्रतिविम्बित होती है। विश्वसाहित्य मे सस्कृत साहित्य के इस वर्णनात्मक कथा साहित्य का सर्वाधिक योगदान है।[१४]

संस्कृत का प्राचीन कथा-साहित्य मूलत जीवजन्तुओ के चारित्रिक औदात्य के साथ तादात्म्य स्थापनार्थ मानव-जीवन के दिव्य गुणारोपण-निमित्त प्रादूर्भूत हुआ, यह स्वीकारना असंगत है। एसी कथाओ का पूर्ण उन्मीलन प्राकृत कथा साहित्यमे विकास-क्रम के निरन्तर हुआ। संस्कृत का कथा साहित्य स्वप्रार्दूभूत है। भारतीय पौराणिक काव्य एवं पौराणिक कथा साहित्य की प्राचीनता समानान्तर और असंदिग्ध है। यह भी
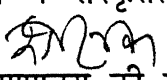
तथ्य है कि पौराणिक कथाओ मे निहितार्थ धर्म सस्कृति को उन्मेषित करने के लिए काल्पनिक घटनाओ के संयोजन द्वारा विस्तृति को प्राप्त हुआ। यह उल्लेखनीय है कि पौराणिक कथा साहित्य पहले गद्य-पद्यात्मक ही रहा किन्तु कालान्तर मे यह पूर्णतया पद्यात्मक ही हो गया। भारतीय वाड्मय का वर्णनात्मक एव आख्यानात्मक साहित्य लोकप्रिय तथा ऐतिहासिक कथाओ, धर्मानुप्राणित कथा, बौद्ध एवं जैन सिद्धान्तमूलक कथा, राजनीतिक रीति-नीति प्रतिवादक कथाओ और कौतूहल प्रद मनोभावाभिभूत कथाओ का, सग्रह स्वरुप स्वीकारा हुआ। इनमे से अधिकांशत कथाओ का प्रारम्भिक रूप प्राकृत अथवा तत्कालीन अन्यान्य भाषाओ मे लिखा गया और कालो परान्त उनका रूप सस्कृत भाषा मे अवतरित होता गया।

निष्कर्षत यह अवधारणा स्थापित करना अनुचित होगा कि सस्कृत का विशाल कथा साहित्य अवतरित न होकर अवतारित अथवा अवान्तरित है, जिसका उपजीव्य वेद के संवादात्मक सूक्त, ब्राह्मणो मे संदर्भित ज्ञान बोधक आख्यान एव इतिहासोन्मीलक गाथाएँ स्वीकार्य है। संवादात्मक सूक्तो की विस्तृति का प्ररिप्रेक्ष्य तथा लोकप्रिय जन समाज मे अनुश्रुत कथाओ के परिवेश ने वृहत्कथा, वेतालपंचविंशति, वृहत्कथा मंजरी, एवं अन्तत कथासरित्सागर जैसी, कथाकृतियो को जन्मदिया। सस्कृत कथा साहित्य का नीति, उपदेश, कौतूहल, मनोरंजन, हास-विलास, इतिहास-विकास, विश्वास, जीवन-आभास, समाज, धर्म, संस्कृति, धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष की दिव्य

अवधारणाओ का उन्मीलन करती प्रथम विकास प्राप्त कृति है।

'वृहतकथा (बड्ढकहा)'

इस कृति मे वर्णित आन्तरिक साक्ष्यो के आधार पर इस कथा काव्य का कवि गुणाढ्य है। पूर्व जन्म मे यह भगवान शिव का माल्यवान नामक गण था। शाप वशात् धरती पर अवतरित हुआ। जन्म सातवाहन नृप के प्रतिष्ठित नगर जनपद प्रतिष्ठान मे हुआ। ब्राह्मण कुल पिता कीर्तिसेन और माता श्रुतार्था थी। इनकी शिक्षा-दीक्षा दक्षिणापक्ष मे पूर्ण हुई। इस कृति का सर्वप्रथम उल्लेख दण्डी, सबन्धु तथा बाणभट्ट द्वारा हुआ।[१५]

८७५ ई० के कम्बोडिया मे प्राप्त एक अभिलेख मे गुणाढ्य भी चर्चा है।[१६] कृति के कश्मीरी वाचना मे गुणाढ्य का सम्बन्ध सातवाहन नृप के राजत्वकाल से बताया गया है। यह सातवाहन नृप ७८ ई० मे था। अत: गुणाढ्य की स्थिति ७८ ई० मे स्वीकार्य की गयी है। सात वाहन राजवश के युग मे गुणाढ्य ने कथा-काव्य का प्रणयन किया, यह विक्रम की पहली शती रही। नृप सातवाहन साहित्य के रक्षक एवं रचनाकार दोनो थे। वे संस्कृतेतर प्राकृत, अपभ्रंश और पैशाची भाषा-साहित्य मे विशेष रुचि रखते थे। गुणाढ्य की रुचि देखकर कवि ने कृति की भाषा पैशाची रखी। लोक भाषा की प्रभावी कथाएं जो जन मानस मे सहजत. गहरे पैठ चुकी थी उसे ही गुणाठ्य ने अपनी भाषा मे छन्द बद्ध किया। इसमे संकलित काव्यकथाए मध्यदेश

की जनपदीय बोली के ठेठ कविजनो के उद्‌गार रहे, जो कवि वाणी पर अवतरित हुयी। इन कथाओ को सकलित करने मे कवि गुणाढ्य ने निश्चित ही घोरश्रम किया होगा। इसीलिए बड्‌ढकहा (वृहत्कथा) को सस्कृत भाषा मे न लिखकर, कथा के मूल गायको को ही भाषा पैशाची मे प्रणीत किया। प्रसिद्धि है कि वृहत्‌कथा एक विशाकाय रचना थी। सम्पूर्ण रचना लगभग सात लाख श्लोको मे निबद्ध थी। सातवाहन की राजसभा मे कवि द्वारा अपने शिष्य के माध्यम से भेट रूप मे प्रेषित कराने पर नृप द्वारा तिरस्कृत होने के कारण काव्य के अधिकांश भाग को लगभग छह लाख श्लोको की कथा पशुपक्षियों को पढकर सुनाया और शेष को अग्नि मे हवन कर दिया। ज्ञात होने पर नृप, गुणाढ्य के पास पहुँचा जहॉ वह बैठकर अपनी सरसकथा के सुधा विन्दु से पशुपक्षियो को तृप्त कर रहा था। नम्र अनुरोध से द्रवित होकर गुणाढ्य ने अवशेष एक लाख श्लोको का कथा भाग नृप को दे दिया।

वृहतकथा रूप यह संस्कृत कथा साहित्य का रत्न बना। प्रशसित हुआ। महाकवि बाणभट्ट ने अपनी रचना हर्षचरित मे इसे शिवप्रार्वती संवाद और कामरस का आकर एवं विस्मय कौतुहल से परिपूर्ण रचना की संज्ञा से अभिहित किया।[१७]

प्राकृत भाषा की रचना कुवलय माला के रचनाकार उद्योत्तसूरि ने इस बड्‌ढकहा (वृहत्कथा) को सभी कथाओ की आकर, कविजन के लिए शिक्षा ग्रन्थ एव रचनाकार का ब्रह्म कहा है।[१८] ग्यारहवी शती के रचनाकार अपनी काव्य कृति तिलक

मजरी की प्रस्तावना मे वृहत्कथा कथा को कथा-समुद्र नामित किया है, जिसकी एक बूद ग्रहण कर कोई भी कवि कथा-सरित् को प्रवहमान कर सकता है।[१९]

यह वृहत्कथा वस्तुत तत्समय प्रचलित लोककथाओ का सग्रह है। कवि गुणाढ्य ने इसे साहित्य का रूप दे दिया। राजशेखर ने लोक कथा गायको को ठेठ भाषी कवि की सज्ञा से अभिहित किया है। कथा सुनाने वाले लोक भाषा (उस काल मे बोली जाने वाली प्राकृति अथवा पैशाची प्राकृति भाषा) के सहज रसिक कवि थे। इन कथाओ को उन्होने अपनी देशीय परम्परा, देश-देशान्तर और द्वीप-दीपान्तर से सम्प्राप्त कथाओ को निजभाषा मे छन्दोवद्ध किया था। ये भाषा के ठेठ कवि प्राय सार्थवाहो एवं श्रमिको के सहयोगी रहे। उस समय भाषा प्राकृत या पैशाची प्राकृत ही थी। यह पैशाची भाषा तत्समय मध्य देश के जनपदो की आम भाषा रही। गुणाढ्य का कवि मन भाषा की सरसता से आकृष्ट हुआ, अत उसी भाषा मे सग्रहीत कर डाला।[२०] इसी वृहत्कथा का प्रकारान्तर से सस्कृत रूपान्तर है- यह कथा 'कथासरित्सागर'।

वृहतकथा (बड्ढकहा) पर आधारित अथवा साररूप रूपान्तरित संस्कृत के कतिपय अन्य कथा काव्यो की चर्चा भी 'कथासरित्सागर' पर विवेचन प्रस्तुत करने से पूर्व करना असंगत न होगा। वृहत्कथा का मूल तो अप्राप्त है। जो कुछ भी सातवाहन नृप के निवेदनोपरान्त कवि ने उन्हे सौपा, जो एक लाख श्लोको का समुच्चय माना जाता है, कालान्तर मे विद्वानो ने उसी को 'वृहत्कथा' अभिहित किया। उसे ही आधार

स्वीकार करके दो कश्मीरी कवियो - क्षेमेन्द्र एव सोमदेव ने 'वृहत्कथामंजरी' तथा 'कथासरित्सागर' की रचना की। इन्हे कश्मीरी वाचना के नाम से साहित्य मे उल्लिखित किया गया है। इस कश्मीरी वाचना से पूर्व भी 'वृहत्कथा' के आधार पर रचनाएँ हुई- नेपाली वाचना, और प्राकृत वाचना। प्रथम नेपाली वाचना है- 'वृहतकथाश्लोकसग्रह'। इसके संग्रहकर्ता का नाम बुधस्वामी है। यह पॉचवी शती ई० की रचना है। दुर्भाग्य यह है कि इसका मूल भी वृहत्कथा की ही भॉति यह भी अधूरा ही प्राप्त है। प्राप्त कथा सग्रह का कलेवर अट्ठाइस सर्गात्मक है। इसमे कुल चार हजार पांच सौ उन्तालिस श्लोक है। वृहत्कथा के प्राप्त रूप मे नरवाहन के विवाहो की कथाये है और इस कृति का भी वर्ण्य विषय नरवाहन के अट्ठाइस विवाहो मे से मात्र छह विवाहो की ही कथा है। पर्याप्त सीमा तक इसका स्वरूप वृहत्कथा के मूल का स्पर्श करता है। दूसरी प्राकृत वाचना–कृति है- 'वसुदेव हिण्डी'। यह महाराष्ट्री प्राकृत भाषा मे है। इसमे नरवाहन के स्थान पर श्रीकृष्ण के विवाहो का वर्णन है। श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव ने इसमे अपने पौत्र प्रद्युम्न के उन्तीस विवाहो की कथाएँ कही है। यह इस कृति का प्रथम खण्ड है, रचनाकार जैन कवि संघदास मणी है। इस कथाकाव्य के दूसरे खण्ड के प्रणेता धर्मदास मणी है। इस खण्ड मे वसुदेव के इकहत्तर विवाह वर्णित है। इस अंश को मध्यम खण्ड भी अभिहित किया जाता है। सकेतत· इसका अन्तिम खण्ड भी होना चाहिए। मध्यम खण्ड मे धर्मदास मणी ने कवि संघदास मणी ने जिस कथा की विस्तृति से विराम लिया था, वही से अपनी कथा को विस्तार दिया है।[२१]

वृहत्कथा (बड्ढकहा) की कश्मीरी वाचना मे प्रथम स्थान 'वृहत्कथामंजरी ' का है। इसके प्रणयनकर्ता कवि क्षेमेन्द्र है। नाम ही स्पष्टत संकेतित करता है कि यह कृति गुणाढ्य की अमर रचनारूप अमृत रसाल बाल रसाल की मंजरिका का परागगध मात्र है। अर्थात् यह वृहत्कथामजरी, मूल गुणाढ्य कृति का संक्षिप्त रूप है। कवि क्षेमेन्द्र कश्मीर नृप अनन्त के आश्रित रहे। अनन्त का राज्यकाल १०३९-१०६४ ई० माना जाता है। 'वृहत्कथामंजरी का प्रणयन इसी कालावधि मे हुआ होगा। इसमे बुद्ध स्वामी के 'वृहत्कथाश्लोकसंग्रह' की अपेक्षा अधिक कथाएँ समायोजित है। वृहत्कथामजरी एव कथासरित्सागर मे प्रबंध समता है। इसमे भी कथा-वर्णना लम्बको मे विभाजित है- कथा पीठ, कथामुख, लावाणक, नरवाहनदत्तजन्म, चतुर्दारिका, सूर्यप्रभ, मदनमञ्चुका, बेला, शशाकवती, विषमशील, मदिरावती, पद्मावती, पचलम्बक, रत्नप्रभा, अलकारवती, शक्तियशस्, महाभिषेक, सूरतमंजरी आदि अठारह लम्बक है। प्रबंध योजना समान है, परन्तु कथासरित्सागर और वृहत्कथामंजरी की कथा- विस्तृति मे अत्यधिक वैभिन्न है। यहॉ कथा भाग सक्षिप्त है। किन्तु शृगार-प्रसंगो एव विलास-क्रीडा-सम्बन्धी स्थलो के चित्रण मे कवि पूरी मनोज्ञता से रमा दृष्टिगोचर होता है। क्षेमेन्द्र स्वभाव से ही बातूनी प्रवृत्ति का कवि था। उसने धार्मिक स्थलो का अनावश्यक रूप से विस्तार किया है।[२२]

कश्मीरी वाचनाओ की कृतियो वृहत्कथा मंजरी और कथासरित्सागर दोनो के लिए उपजीव्य हम कह सकते है। इसका पूर्णत आधार गुणाढ्य की वृहत्कथा ही है।

दोनो मे से कौन-सा कवि अधिक सीमा तक मूलकथा के सन्निकट पहुँच सका है, कहना अति कठनि ही नही असभव सा है।[२३] दोनो ही कश्मीरी वाचनाओ के अध्ययनोपरान्त निष्कर्ष अवधारणा दृढ होती है कि मूलग्रन्थ की प्रकृति और कथा निहितार्थ किसमे एव किस सीमा तक सुरक्षित रह सका, सशयग्रस्त ही है। 'कश्मीरी लेखको के सामने वृहत्कथा का हाड-पजर मात्र था। किन्तु वसुदेव हिण्डी और वृहत्कथा श्लोक सग्रह इन दो रूपातरो के रचयिताओ के सामने मूल वृहत्कथा का एक अत्यन्त रस पूर्ण जीवन्त और अतीत की सामग्री से भरा हुआ स्वरूप था।

कश्मीरी रूपान्तरो की त्रुटियो के कारण अब इसकी छानबीन होना कठिन है कि बुध स्वामी मे गुणाढ्य के मूलग्रन्थ की वस्तु-सघटना और उसकी प्राणवत्ता का किस हद तक उत्तराधिकार सुरक्षित है। यहॉ बुध स्वामी के विषय मे अपना विश्वास बहुत अंश मे दृढ, होता है।[२४] बुध स्वामी की कृति 'वृहत्कथाश्लोकसग्रह' कवि सघदास मणि, धर्मदास मणि द्वय की कृति 'वसुदेव हिण्डी' एवं महाकवि क्षेमेन्द्र विरचित 'वृहत्कथा मंजरी' मे से कौन वृहत्कथा के मूल को सुरक्षित रख सकी है, यह विवाद का विषय है किन्तु यह अस्वीकार्य कथमपि नही कि इन रचनाकारो ने सस्कृत कथा साहित्य के विकास-क्रम मे वह सुदृढ सोपान प्रस्तुत किया है जिस पर अवस्थित हुए बिना कथा साहित्य के अक्षयकोष के मणिरत्नो की आभा को साक्षात् करने मे सफलता प्राप्त नही हो सकी।

इस तारतम्य मे पचतत्र (तत्राख्यायिका), वेतालपचविशतिका, सिहासनद्वात्रिंशतिका और शुक सप्तति का उल्लेख होना अनिवार्य है। इन रचनाओ का उपजीव्य वृहत्कथा है अथवा उससे ये अभिप्रेरित है, अथवा वृहत्कथा और इन चारो का ही स्रोत एक ही है? कुछ भी प्रकृति, कथा-निहितार्थ, परिवेश आदि की दृष्टि से कतिपय अशो तक समान प्रतीत होती है। पैशाची प्राकृत मूल सेवित वृहत्कथा की रचना प्रथम ई० अथवा उससे पूर्व हुई। पचतत्र गुप्तकाल की रचना मानी जाती है, जिसका उल्लेख पूर्ववत् किया जा चुका है। शेष तीन का परिचय कथा-विकास-क्रम की दृष्टि से प्रस्तुत करना अपेक्षित है-

वेतालपंचविंशतिका

इस कृति मे वेताल द्वारा नृप विक्रम को सुनायी गयी पच्चीस कथाएं है। यह अद्भुत, कौतूहलमयी एव अत्यन्त रोचक है। कथा-क्रम यह है- विक्रमसेन अपने पूज्य सिद्ध पुरुष के सिद्धि-हेतु प्रारम्भ अनुष्ठान की सफलता चाहता है। तदर्थ विक्रम पराक्रम बल से सिंसपा वृक्ष से वेताल को उतार कर अपने कधे पर रखकर ले जाता है। वेताल सशर्त चलने की स्वीकृति देता है- नृप मार्ग मे मौन रहेगा। मार्ग मे वेताल नृप को ऐसी कथा सुनाता है, साथ ही प्रश्न करता है, जिससे न्यायप्रिय विक्रम नृपति मौन भंग कर बैठते है। वेताल पुन· वृक्ष पर लौट जाता है। नृप पुन. लेकर चलते है। वेताल अन्तत पचीसवी कथा सुनाकर ऐसा प्रश्न करता है कि नृप

को उत्तर स्वरूप न्याय की कोई सूझ मिलती ही नही, मौन हो जाता है। परिणामत नृप को वेताल को कधे पर लादे हुए सिद्ध–साधना की भूमि श्मशान तक पहुॅचने मे सफलता प्राप्त हो जाती है। वेताल द्वारा सुनायी गयी पच्चीस कथाएॅ नीति, न्याय, व्यवहार मे अद्भुत एव अनुपम है। दिव्य जीवन के तत्वो को उजागर करने वाली मगलायतन है। ये कथाएॅ वृहत्कथा से ही उद्गमित प्रतीत होती है। वृहत्कथा के द्वितीय कश्मीरी वाचना 'सरित्सागर' के लम्बतरग के वेताल प्रकरण मे समायोजित है।

सिंहासनद्वात्रिंशतिका

बत्तीस कथाओ के इस सकलन का अपरनाम विक्रम चरित भी है। इसके प्रणेता जैन लेखक क्षेमकर मुनि है। इसकी भी दो वाचनाएॅ है- उत्तर की तथा दक्षिण की। विक्रम चरित नाम दक्षिण की वाचनिका है। इसका समय तेरहवी शती अनुमानित हो सकती है। कथा-क्रम इस प्रकार है- बत्तीस पुत्तलिकाओ से जटिल विक्रमादित्य का प्राचीन सिंहासन राजा भोज को मिल जाता है, भोज उस सिहासन पर बैठना चाहता है। उसके उपक्रम करते ही पुत्तलिकाएं क्रमश एक-एक करके भोज को उस पर बैठने के अयोग्य बताते हुए नृप विक्रमादित्य के न्याय एवं पराक्रम का कथन करती है। अर्थ यह है कि नृप विक्रमादित्य के समान न्यायशील एवं पराक्रमशील हो तभी बैठ सकते है, अथवा नही। प्रकारान्तर से इस कृति मे पुत्तलिकाओ के माध्यम से पराक्रमी विक्रमादित्य का यशगान किया गया है। इस कृति की कथाएॅ भी मनोरंजक, अद्भुत,

कौतूहलप्रद और जीवन मे उदात्त भावो के सौष्ठव का व्याख्यान है। सस्कृत कथा-साहित्य मे यही निहितार्थ समाविष्ट रहता है।

शुकसप्तति

इसके सामान्य और परिष्कृत दो सस्करण प्राप्त है। समान्य सस्करण के रचयिता अज्ञातनामा श्वेताम्बर जैन है, परिष्कृतरूप के कर्ता चिन्तामणि भट्ट है। चौदहवी शती मे सम्पन्न इसका एक फारसी अनुवाद भी कहा जाता है। जिसे हम सामान्य एव परिष्कृत संस्करण के नाम से उल्लेख करते है। उनको संक्षिप्त और विस्तृत वाचनिका भी अभिहित करते है। विस्तृत वाचनिका के रचनाकार है चिन्तामणि भट्ट। इनका समय बारहवी शती है। इस कृति की कथा वस्तु इस प्रकार है- कुल सत्तर कथाए है। विषय है कुलवधू को चारित्रिक शिक्षा देने के निमित्त उस समय की कुलटाओ एव कुट्टनियो के अनेकश छल -प्रपंचो से पूर्ण कार्य-कलापो का वर्णन है। मदन सेन नामक मूर्ख पुत्र को उसके पिता ने दो गन्धर्व रूप धारी पक्षी भेट करता है। एक शुक और एक कौवा। मदन सेन विदेश-प्रस्थान के समय अपनी पत्नी को दोनो पक्षियो के सरक्षण मे देता है। पति-प्रवास काल मे पत्नी व्यभिचारोन्मुखी होने लगती है। तोता उसे निष्ठ वचनो द्वारा अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। फिर प्रतिदिन उसे चरित्र सकट की एक कथा सुनाता है। इस प्रकार सत्तर कथाएं सुनाता है और इसी समय उसका पति विदेश से वापस आ जाता है और पत्नी का चरित्र सुरक्षित रह जाता है। इसलिए

इसका नाम शुकसप्तति है। शुकसप्तति की कथाए संस्कृत एव प्राकृत के उपदेश प्रद छदो से सवलित है, तथा रोचकता से परिपूर्ण है।

कथा साहित्य के अक्षयकोष के मणि समूह को दीप्ति प्रदान कराने वाले रत्नो मे कतिपय ऐतिहासिक कथाकाव्य और बौद्ध कथा कृतियॉ भी है। ऐतिहासिक कथा कृतियो मे हरिषेणाचार्य रचित वृहत्कथा कोष १५७ कथाओ का सकलन है। इसका रचना समय १०वी शती है। कथाओ का केन्द्रस्थल गुजरात का वर्धमान नगर है। इसमे प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध इतिहास पुरुषो की कथाएं सस्कृत छन्दो मे निबद्ध है। १३०५ ई० मे प्रणित मेरूतुंगाचार्य का प्रबंध चिन्तामणि इस क्रम की दूसरी रचना है। इसमे संकलित कथाओ का केन्द्र भी वही नगर वर्धमान है। यह रचना पद्यमय किन्तु ललित गद्य से सवलित है। इस कृति मे विक्रमार्क, सातवाहन, मूलराज, मूंज, भोज, सिद्धराज, जयसिह, कुमारपाल, वस्तुपाल, तेजपाल, धनपाल, लक्ष्मणसेन, जयचन्द्र, वाराहमिहिर, एवं भर्तृहरि आदि इतिहास पुरुषो तथा कवियो की चारित्रिक औदात्य का वर्णन है। तीसरी कृति है, 'प्रबन्धकोश'। इसका रचनाकाल १३४८ ई० और रचनाकार है राजशेखर सूरि। चौबीस प्रख्यात पुरुषो के उपाख्यान सवलित इस रचना का अपर नाम 'चतुर्विंशतिप्रबन्ध' भी है। कथाएं इतिहास एवं लोक वृतान्तो के समन्वित रूप से संघटित की गयी है। इन चौबीस चरित्रो मे चार कवि, सात राजा, और तेरह जैनधर्म के आचार्य और एक सद् गृहस्थ है। हर्ष, हरिहर, अमरचन्द्र तथा मदनकीर्ति, नामधेय

चार कवियो का वर्णन प्रथमवार राजशेखर सूरि ने सम्मिलित किया था। चौथी रचना है- 'विविधतीर्थकल्प'। इसका रचनाकाल १३३२ ई० एव रचनाकार है जिन प्रभूसूरि। यह कृति राजशेखर सूरि के प्रबंधकोश से अनुप्राणित है। इसमे महनीय पुरुषो का ऐतिहासिक चरित उजागर किया गया है। इनके अतिरिक्त कतिपय बौद्ध ग्रन्थ भी है। जिन्हे इस तारतम्य की शृंखला मे समायोजित किया जा सकता है।

संस्कृत कथा साहित्य के विकासयुग मे कतिपय बौद्ध ग्रन्थो का भी उल्लेख आवश्यक है। इनमे प्रथम स्थान-'अवदान शतक' का है। अवदान का अर्थ है-महनीय कार्यो की कथा। इस कृति मे सौवीर पुरुषो के महनीय कार्य वर्णित है। उनके कार्यो की महनीयता बौद्धधर्म के सिद्धान्त, उनके आचार-व्यवहार से अभिप्रेरित है। वस्तुत इस ग्रन्थ मे इन पुरुषो की वीरगाथाओ का सम्यक् आकलन किया गया है। इस कृति का उद्देश्य कदाचित नैतिकता का विवेचन रहा। इस कारण कार्यो की प्रकृति मे नैतिकभाव अतिशयता से अभिव्यक्त एवं प्रतिविम्बित दृष्टिगत होते है, नैतिकभावातिशयता के कारण कृति का साहित्यिक महत्व न्यून हो जाता है। दूसरी कृति है दिव्यावदान। यह कृति अवदान शतक की ही भावभूमि पर अवलम्बित एवं वर्णना उसी से अनुप्रेरित है। अवदान शतक मे प्रबन्धात्मकता है किन्तु इसमे कथाएं अव्यवस्थित है। दोनो ही कृतियां शतक है। दिव्यावदान शतक का एक भाग महायान-सूत्र के नाम से अभिहित होता है। तीसरी एव महत्वपूर्ण कृति है जातकमाला। इसके रचनाकार आर्यशूर है। यह जातक कथाओ का सकलन है यह

परिष्कृत सस्कृत मे है। बौद्ध जातक जिनकी सख्या पांच सौ स्वीकार की जाती है, उनका पालि सग्रह 'जातक पालि' नाम से सुविख्यात है। सम्भवत. यह उसी अनुप्रेरणा पर आधारित संस्कृत सस्करण है। जातकपालि की ही परम्परा मे कथाश गद्य मे और निहितार्थ पद्य मे है। बोधिसत्व के पूर्वजन्म की कथाए पालिजातक की ही शैली मे ग्रन्थित है। इसका रचना काल ई०पू० ४०० माना जा सकता है। एक अन्य ग्रन्थ का भी नामोल्लेख समीचीन है- कल्पनामण्डितक अथवा सूत्रालंकार। यह कोई स्वतंत्र रचना नही कही जा सकती। यह वस्तुत जातको तथा अवदानो का ही गद्य-पद्य मय एक स्वतंत्र रूप से सकलित रूप है। जैन कथा ग्रन्थो की चर्चा इससे पूर्व हो चुकी है। जैन साधुओ से सम्बद्ध उपदेश परक कथाओ का एक संकलन परिशिष्ट पर्व भी है, इसके रचनाकार प्रख्यात जैनाचार्य हेमचन्द्र है। इसका रचना समय ग्यारवी शती है। इसकी भाषा सरल सस्कृत है। इन सब ग्रन्थो का समुच्चय स्वरूप हमारा सस्कृत-कथा साहित्य विश्व वाङ्मय का प्रदीप्त प्रभाकर है। जिसकी किरणो से ज्योतित मेघा-शक्ति ने विभिन्न कवि-कथाकारो को रचनात्मक अभिप्रेरणा दी है।

कथासरित्सागर

गुणाढ्य की रचना 'वृहत्कथा' (बड्ढकहा) की प्रशस्ति मे उद्गीरित, 'तिलकमंजरी' के रचनाकार धनपाल के शब्द 'सत्यंवृहत्कथाम्बोधे बिदुमादाय संस्कृत तेनेतर कथा कन्था प्रतिभान्ति तदग्रत:' का अर्थरूप है यह 'कथासरित्सागर' अर्थ-

आभाषक है सोमदेव। गुणाढ्य की पैशाची प्राकृत-निबद्ध ग्रन्थ 'वृहत्कथा' का मूलरूप सम्भवत ग्यारहवी शती पर्यन्त विद्यमान रहा है। जिसे पढकर ही कवि क्षेमेन्द्र ने 'वृहत्कथा मंजरी' का प्रणयन किया। दूसरे कश्मीरी कवि सोमदेव ने इस वृहत्कथा को सारस्वरूप समग्रत संस्कृत रूपान्तर 'कथासरित्सागर' नाम से अभिहित किया। वृहत्कथा के इस सस्कृत रूपान्तर का प्रणयन समय सन् १०६३-१०८९ ई० की कालावधि है। यह काल कश्मीर मे नृप अनन्त का राज्य-काल रहा। कवि ने यह रूपान्तर उनकी रानी, त्रिगर्त राजकुमारी सूर्यमती की आज्ञा पर उनके पठनार्थ किया था। यह कृति सार-सग्रह होकर भी क्षेमेन्द्र की वृहत्कथा मजरी से विशाल कलेवरा है। कथा प्रबध का यह स्वरूप पार्वती द्वारा किये गये प्रश्नो के प्रदत्त शिव के उत्तर रूप मे सकलित रूप है। कवि प्रत्येक लम्बकारम्भ मे पार्वती के प्रणयरूप मदराचल ने शिव के मुखरूपी समुद्र का जो मंथन किया था उससे यह कथा-रूप अमृत प्राप्त हुआ है। जो भी इसका हठात पान करते है, शिव की अनुकम्पा से विघ्नरहित, होकर सिद्धियो तथा दिव्य पद के वे अधिकार-भाजन बनते है-

इद गुरुगिरीन्द्रजाप्रणयमन्दरान्दोलना-

त्पुरा किल कथामृतं हरमुखाम्बुधेरुद्गतम्।

प्रसहय सरयन्ति ये विगतविघ्नलब्धर्द्धयो

धुरं दधति वैबुधी भुवि भवप्रसादेन ते।।

यह कथासरित्सागर मूल वृहत्कथा (बड्ढकहा) का सार, समुच्चय रुप सस्कृत रुपान्तर है। तथापि मूलग्रन्थ मे समाविष्ट सभी कथाएँ, इसमे समग्रत संदर्भित है। वत्सराज उदयन और उसके पुत्र नरवाहनदत्त के नूतन विवाहो के एक-एक सदर्भ यहाँ भी परस्पर सयोजित है। समस्त भारत, जम्बूद्वीप और सागर पार अवस्थित मनुष्य, पशु, पक्षी, तथा उनके जीवन को प्रत्यक्ष करने वाले अवान्तर सन्दर्भ भी पूर्णत आकलित है। अतीत काल मे सत्य रहे, वर्तमान मे विस्मय बोध कराने वाले, पृथिवी, समुद्र एव द्वीपो के देश, काल, इतिहास, भूगोल, से सम्बन्धित सदर्भ जो अद्भुत प्रतीत होते है, कथा सन्दर्भ मे शृंखला बद्ध किये गये है। कथा-क्रम मे हमे यहा अनेकश कुत्सित, निन्दित, व्यहृतिसूत्र, कठोराति कठोर, साधना-स्थल और विचित्र लोक के सुघर सदर्भ उपलब्ध होते है। अन्तिम लम्बक मालवा के सम्राट विशमशील का आख्यान तो कथाकार गुणाढ्य के समय का आख्यान है।

यह 'कथासरित्सागर' भारतीय कथा साहित्य-कोष का मणिद्युति प्रभा स्वरूप है। जिसकी दीप्ति से न केवल भारतीय वर्णनासाहित्य अपितु विश्व कथा-साहित्य मे अनुपम है। इस ग्रन्थ की विशिष्टता यह है कि- यह वृहत्कथा का सार-सकलन होकर भी ग्रन्थ के विषय को समग्र को समाहित किये हुए है। साररूप होकर भी वृहत्कथा मजरी की अपेक्षा विशाल कलेवरा है। सार-संग्रह है परन्तु मूलग्रन्थ मे संदर्भित कथा यहा यथाक्रम, यथारूप, पूरे भावोदीपना संग समायोजित है। कथा सदर्भ कही से भी

विशृखलित नही होने पाये है। कालान्तर मे सस्कृत कथा-कवियो ने अनुप्रेरणा ग्रहण कर कथा-कृतियो का प्रणयन किया- इसी का 'वेताल प्रकरण' 'वेताल पचविशंतिका' का उपजीव्य है। अतीत का समग्र इतिहास, भूगोल, देश-काल, परिवेश, नद-नदी, पर्वत-कान्तार यहां कथा-सदर्भ मे देखा जा सकता है। इस ग्रन्थ के भाषा-प्रयोग एव कवित्व-सौष्ठव, प्राञ्जल तथा उत्कृष्ट है। चोर, 'जुआरी' धूर्त, वेश्यागामी, हसोड कपटी, ठग, लुच्चे, लफगे, रगीले, भिक्षु आदि की कहानियो की तह जमाने मे सोमदेव को अद्‌भुत सफलता मिली है। सोमदेव का गुण इतना ही है कि वे कुछ भी कहने मे सकोच का अनुभव नही करते। जैसे-बरसाती नदियो की मटमैली धाराओ के ऊपर चारो ओर का खर-पतवार आकर बहने लगता है, वैसे ही सोमदेव की कथाओ की शैली बुराईयो को समेटकर सामने ले आती है। मानव स्वभाव जैसा है, वैसा ही उसे दिखाना यह महान लेखक की विशेषता होती है, और सोमदेव इसमे पिछडे हुए नही है।[२५] 'कथासरित्सागर' भारतीय मेधा और सुष्ठु कल्पना का एक ऐसा दर्पण कवि सोमदेव ने निर्मित किया जिसमे अतीत कालीन समाज का पूर्ण प्रतिबिम्ब दिखाई पडता है। जिसमे पाठक, प्रेमी-प्रेमिकाओ के साहस, कार्यकलाप, नृप, सामन्त, राजनगर, राजतंत्र, षडयंत्र, छल-प्रपंच, आडम्बर, तत्र-मत्र, जादू, टोटका, युद्ध रक्तपायी वेताल, गणिकाएँ पिशाच, यक्ष, प्रेत, पशु-पक्षी, सन्त-असन्त मदपायी, द्यूत कर्मी विट, कुट्टनी को सहज ही साक्षात करता है। अतीत हमारे सामने वर्तमान होकर समुपस्थित हो जाता है। यह कथासरित्सागर पाठक को लोल-तरंग रूप कथा-क्रम की प्रक्रिया मे इस प्रकार

रसायित करती उसे कुतूहल-विस्मायित भाव मे तिरोहित करके आनन्द सागर मे निमग्न करके ही विरमती है। यह ग्रन्थ वस्तुत कथासरित्सागर नही अपितु-कथामिण जटित रत्नहार है। जिसकी दीप्ति-रेख से खचित समस्त वाड्मय ज्योतित है। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का आकलन 'सोमदेव का ग्रन्थ वसुधान-कोषो का समूह है, अर्थात् उसमे रत्नो से परिपूर्ण अनेक डिब्बे भरे हुए है, चाहे जहॉ से अपनी रुचि के अनुसार हम उन्हे चुन सकते है। कितना समीचीन है।[२६]

संदर्भ एवं पाद-टिप्पणी

१ कथासरित्सागर तथा भारतीय सस्कृति डा० एस०एन० प्रसाद/पृष्ठ २१

It may be to discriminate them as fairy tales, Marchen, or myths or fables in the earlier stages of their development It was, hwoever, a distinct and important step when the mere story became used for a definite purpose, and when the didactic fable became a definite mode of inculcating useful knowledge

– History of Sanskrit Literature Kieth/Page 242

२ एकाकी राष्ट्रनिधि का उपयोग दुस्साहसपूर्ण उपयोग।
अनौचित्य भूमि से उठो हे पणिराट्।
अनाचार, अत्याचार, यह दुर्व्यवहार,
और कलुषित विचार।
राष्ट्र-सम्पत्ति, सार्वजनीन शक्ति
व्यक्ति यदि उठा सका लाभ,
हो गया सम्भव,
निश्चित ही सर्वांगीण पराभव
प्रकट किया सरमा ने था अभिमत-
'स्व' का नही उपभोग्य
समष्टि का हित।

-त्रिपाठी अथ-अनुक्रम डॉ० शिवशङ्कर त्रिपाठी/पृष्ठ-१०

३ सवत्सर मण्डूका अवादिषु।। - ऋग्वेद ७/१०३-१

४ द्वा सुपर्णा अभिचाकृशीति।। - ऋग्वेद १/१६४/२० अथर्व० ९/९/२०

५ तस्मै श्वाश्वेत शनायाम वा इति।। - वही/१/१२/२

६ यथाकृताम् विजिता भषैतदुप्त इति।। - वही/१/१२/४

७ इण्डिया पास्ट मैकडानल/पृष्ठ ११७

८ नि सदेह पचतत्र मे कल्पित कथाओ का विस्तार नीति-शास्त्रो तथा धर्मशास्त्रो मे प्रतिपादित जीवन के उदात्त विचारो के सकलन का उद्देश्य अर्थशास्त्र का रहा है।

कथासरित्सागर तथा भारतीय सस्कृति डॉ एस० एन० प्रसाद पृष्ठ/२२

but of the naughty cat which deceived the little mice by an appearance of virtue so that they delivered themselves into her power, and we have a *motif*

which certaınly ıs strongly suggestıve of the materıal whence developed the *Pancatantra*

–Hıstory of Sunskrıt Lıterature Kıeth/Page 242/243

९ ऐतरेय ब्राह्मण ७-१३

१० The maxın embodyıng the tale

-Hıstory of Sanskrıt Lıterature Kıeth/Page

११ If was a dıstınctly Persons – Ibıd/page 244

१२ Hıstory of Indıan Lıterature Wınter nıtz/Page 301

१३ कथासरित्सागर तथा भारतीय सस्कृति डॉ० एस० एन० प्रसाद/ पृष्ठ २९

१४ Hıstory of Indıan Lıterature Wınternıtz/Page 302

१५ भूतभाषामयी प्राहुरद्भुतार्था वृहत्कथाम् - काव्यादर्श/१/२१
वृहत्कथा लम्बैरिव सालभजिकानिबहै । - वासवदत्ता

समुद्दीपित कन्दर्पा कृतगौरी प्रसाधना।
हरलीलेव नो कस्य विस्माय वृहत्कथा।। - हर्षचरित/पृष्ठ १०

१६ Hıstory of Sanskrıt Lıterature Kıeth/Page 316

१७ हर्षचरित। श्लोक १७

१८ सकल कलागम णिलया सिक्खि विय कइयणस्य मुहयदा।

कमलसणो गुणड्ढो सरस्सई जस्स बड्ढकहा।।

१९ सत्य वृहत्कथम्मोधे र्विदुमादाय सस्कृता ।
तेनेतर कथा कन्था प्रतिभान्ति तदग्रत ।। -तिलकमजरी/प्रस्तावना

२० देश विशेष वशेन च भाषाश्रयण दृश्यते/तदुक्तम -
गौडाद्या सस्कृस्था परिचितरुचय प्राकृतेल्लाटदेश्या
सापभ्रश प्रयोग सकल मरुभुवष्ढक्क भादानकाश्च।
आवन्त्या पारियात्रा सह दशपुरजै र्भूतभाषा भजन्ते
यो मध्येमध्यदेश निवसति स कवि सर्वभाषानिषण्ण ।।

-काव्यमीमासा राजशेखर/अध्याय १०

२१ सुव्वह य किस वसुदेवेण वाससत परिभमतेण हमम्मि भरहे विज्जाहरिंवणखतिवाण-रकुलवससभवाण कण्णाण सत परिणीत, तत्यय सामावियमादियाण रोहिणीपज्जवसाणाम एगुणतीस लमता सघदासवायएण उवणिवद्धा। एगसत्ररिं च विल्यारभीरूणा कहामज्झे छड्डिता, ततो ह भो लोइयसिगारकहापससण अह्माणो आयरियाया से अवधारेऊण पक्यणाणुराग्रेण आयरियनिओएण य तेसिह मज्झिल् ललभआण गथणत्थ अब्यमुज्जजो हे त सुणह इतो पुव्वकहाणुसारेण चेव। -वसुदेव हिण्डी, मध्यम खण्ड।

२२ मिथिक जनरल/जिल्द ५/ पृष्ठ ६ से
कथासरित्सागर तथा भारतीय सस्कृति डॉ० एस० एन० प्रसाद/ पृष्ठ ५१/पाद-टिप्पणी

२३ कथासरित्सागर तथ्य भारतीय सस्कृति डॉ० एस० एन० प्रसाद/ पृष्ठ ५१/ की पाद-टिप्पणी ४ (मिथिक जनरल/जिल्द ४/पृष्ठ ८५ के अनुसार कश्मीरी वाचनाओ ने सीधे गुणाढ्य की मूल वृहत्कथा से अपने स्रोत ग्रहण किया है।)

२४ वासुदेवशरण अग्रवाल कथासरित्सागर/भूमिका/पृष्ठ १७

२५ वासुदेवशरण अग्रवाल कथासरित्सागर/भूमिका/पृष्ठ २४-२५

२६ वासुदेवशरण अग्रवाल कथासरित्सागर (भूमिका)/पृष्ठ २६

द्वितीय अध्याय

सोमदेव
एवं
उनके ग्रन्थ का परिचय

सोमदेव एवं उनके ग्रन्थ का परिचय

विश्वकथा धारा से उच्छरित सुधा-बूदो द्वारा सहृदय-रसिको को रसायित एव सतृप्त करने वाले सोमदेव कश्मीरी पण्डित राम के पुत्र, नृपति अनन्त के आश्रय मे रहने वाले कवि रहे। क्षेमेन्द्र भी इसी राज्य सभा के कवि थे। जिस पैशाची मे महाकवि गुणाढ्य द्वारा निबद्ध (बड्ढकहा) वृहत्कथा का कवि क्षेमेन्द्र ने वृहत्कथा मजरी नाम से सस्कृत मे सार प्रस्तुत किया, उसी बड्ढकहा का कश्मीरी वाचना कहकर अभिहित किया जाता है। प्राचीन भारतीय राजकुलो के रनिवास विलास भूमि होते रहे है। राज सभाओ मे रसवर्णी कवियो की प्रतिष्ठा थी। अमरूक शतक जैसी श्रृगार रचनाएँ राजकुलो के अन्त पुरो मे अत्यन्त प्रिय रही। अमरूक शतक जैसी सस्कृत रचनाओ के साथ-साथ प्राकृत आदि भाषा निबद्ध कृतियो मे गाहा कोष अर्थात् गाथा सप्त शती तो राजकुमारियो और रानियो के मनोरजनार्थ अतिशय प्रमुख साधन रहे। तात्पर्य यह है कि नृप अनन्त के राज सभा मे भी श्रृंगार के रस धार वाही कवि एव कथा कार रहे। उनका अन्त पुर भी ऐसी रचनाओ से रसायित

होने का अभ्यस्त रहा। शृगारपूर्ण प्रणय कथाएँ प्राय उनके अन्तस को रसासिक्त करती थी। बड्ढकहा (वृहत्कथा) मे निबद्ध विविध प्रणयाख्यान लोकविश्रुत हो चुके थे और कवि क्षेमेद्र की वृहत्कथा मजरी के सौरभ से रनिवास सुवासित हो रहा था। कालान्तर मे कवि सोमदेव को अवसर प्राप्त हुआ, और इस प्रकार उन्होने कश्मीर राजकुल के अन्त पुर मे सरस-काम-रसाद्रेक के निमित्त अमर रचना कथासरित्सागर का प्रणयन किया कवि सोमदेव ने नृपति अनन्त की रानी सूर्यमती के आदेशानुसार 'कथासरित्सागर' की रचना की थी। यह सूर्यमती कुल्लुघाटी अर्थात त्रिगर्त नरेश की राजकुमारी थी। 'कथासरित्सागर' की रचना १०६३-१०८९ के मध्य किसी काल मे हुई। इससे पूर्व कवि क्षेमेन्द्र 'वृहत्कथा मजरी' का प्रणयन कर चुके थे। नाम से ही स्पष्ट है कि परवर्ती काल मे रचित सोमदेव की कृति क्षेमेन्द्र की पूर्वकृति से विशाल है- एक कथामंजरी और दूसरी 'कथा सरित्सागर'।

'वृहत्कथा मंजरी' एवं 'कथासरित्सागर' दोनो ही कृतियो के लिए प्रेरणासूत्र कवि गुणाढ्य की कृति 'वृहत्‌कथा' ही है। दोनो ही कवि निज-निज मति और कल्पना-गति एवं ग्रहण-सामर्थ्यानुकूल इन्हे आत्मसात कर अपनी-अपनी कृतियो को प्रस्तुत किया। विश्वकथा धारा 'वृहत्कथा' मूलत. प्रेमाख्यानो की छोटी-बडी ऋजु एव तिर्यक गति से, प्रवाहित होने वाली सरित धारो का संगम है। इन कथारूप सरिताओ का उद्‌गम भारतेतर द्वीप-उपद्वीप भी है, और इन आख्यानो मे तद्देशीय भूगोल,

इतिहास, समाज, सस्कृति तथा धर्म को भी संदर्भित करती प्रतीत होती है, इसमे अतीतकालीन भूप्रदेशो, वहाॅ की बस्तियो, निवासियो, का अद्‌भुत आख्यान-समाहित है। तात्पर्य यह कि विश्व की कथा धारा अनायास ही इसमे सगमित हो उठी है। मूल केन्द्र विन्दु भारत भूखण्ड है और यही का आख्यान, विभिन्न आख्यानो के आगमन का उत्प्रेरक है। और वह उत्प्रेरक तत्व है, वत्सदेशीय लोक रजक सम्राट् वत्सराज उदयन, फिर उसके पुत्र नरवाहन दत्त के विविध विवाहो के आख्यान जिनमे से क्रमश आख्यान निकलते तथा समागमित होते गये है। इन्ही कौतुकोत्पादक आख्यानो की भूमि वृहत्‌कथा ही सोमदेव के कथा सरितसागर का उपजीव्य है। कवि सोमदेव ने स्वय घोषित किया है कि 'समस्त पदार्थो को प्रकाशित करने वाली सरस्वती की प्रणामकर 'वृहत्कथा के सार का सग्रह कर रहा हूॅ [१]। वृहत्‌कथा को गुणाढ्‌य ने सात लाख श्लोको मे निबद्ध किया था। छह लाख श्लोक की कथाएॅ कवि ने पशु पक्षियो को सुनाकर अग्नि मे हवन कर दिया, और शेष एक लाख श्लोको की एक कथा जो अवशिष्ट रही, उसे नृप सातवाहन को सौप दिया। यही एक लक्षीय श्लोक निबद्ध आख्यान ही कवि क्षेमेन्द्र और उसके पश्चातकवि सोमदेव के लिए उपजीव्य बना[२]। इसी का साररूप है यह 'कथासरित्सागर' जैसा एक विशाल आख्यान ग्रन्थ। 'कथासरित्सागर' जैसा कि कवि सोमदेव ने स्वय उसको वृहत्‌कथा का सार संग्रह स्वीकारा है। वह स्वयं कवि (गुणाढ्‌य अथवा सोमदेव) की कल्पित

कथा नही, अपितु पूरी की पूरी कथा शिव द्वारा प्रणयानुराग के वशीभूत होकर पार्वती को सुनायी गयी है। और वृहत्कथा के अनुसार गुणाढ्य शिव का माल्यवान् नाम का गण रह। शापवश वह मनुष्य योनि मे अवतरित हुआ। 'वृहत्कथा' का निबन्धन उसी ने किया। स्पष्ट है कि यह कथा मानवीय नही दैवीय रचना है। आख्यान के पात्रो मे इसीलिए मनुष्य से इतर विद्याधर तथा गन्धर्व भी है। नरवाहन दत्त जिसके विवाह के रुचिकर आख्यान गुच्छ इस ग्रन्थ मे सगुम्फित है वह भी तो 'विद्याधर' का अवतार रहा। उसी विद्याधर चक्रवर्ती नरवाहनदत्त को केन्द्र बनाकर नारी विषयक, रागानुराग-रससिक्त शतश· आख्यान गुणाढ्य ने निबद्ध किया। उसी का सस्कृत रूपान्तर है- यह सोमदेव कृत 'कथासरित्सागर'। सत्यत कथासरित्सागर शिवपार्वती के पावन प्रणायाख्यान के ही विविध भावभूमि का विस्तार है, जिसमे कही सृष्टि का शिव, कही अशिव तो कही, शिव-अशिव की उभयपक्षीय भावधारा और इसके अतिरिक्त विस्तृत मानवीय संस्कृति, का विस्तार भी समाहित है। कथासरित्सागर के प्रत्येक लम्बक का प्रारम्भ एतद्विषयक कथा से ही होता है। नगेन्द्र नन्दिनी पार्वती के प्रबल प्रणय-मन्दराचल के मन्थन द्वारा शिव जी के मुखरुपी समुद्र से निकले हुए इस कथारूपी अमृत का जो लोग आदर और आग्रहपूर्वक पान करते है, वे शिव जी की कृपा से निर्विघ्न सिद्धियो को प्राप्त कर, दिव्य पद लाभ करते है।[3] (लम्बक २/तरंग १/५७-६५) के अनुसार शिव का माल्यवान् नामक

गण ही गुणाढ्य के रूप मे अवतरित हुआ था। उसी ने इस विश्व कथा धारा को प्रथमत प्रवहमान होने का उपक्रम किया। सोमदेव के कथासरित्सागर के लम्बकारम्भ मे 'इद गुरु------भव प्रसादेन तेन' से निश्चयत वर्तमान मे उपलब्ध यह वृहत्कथा का ही रूपान्तर मान्य है।

पैशाची भी कभी साहित्य-भाषा रही, इसका प्रमाण है 'वृहत्कथा'। आज पैशाची भाषा का कोई भी साहित्य प्राप्त नही है। 'मृच्छकटिकम्' मे एक छन्द अवश्य उपलब्ध है। हॉ यह निर्विवाद है कि ग्यारहवी शती तक गुणाढ्य द्वारा पैशाची भाषा निबद्ध कथा कृति अस्तित्व मे थी, तभी तो ये दो कश्मीरी वाचनाएँ आज संस्कृत मे न केवल प्राप्त है अपितु लोकप्रिय भी हुई। वृहत्कथा मंजरी एव कथासरित्सागर के रचयिताओ के समक्ष निश्चय ही मूल वृहत्कथा रही होगी। कवि सोमदेव ने स्पष्ट लिखा है- 'मूल वृहत्कथा मे जो कुछ है उसी का इस ग्रन्थ मे सग्रह किया गया है, मूलग्रन्थ से इसमे तनिक भी अन्तर नही है। हॉ विस्तृत कथाओ को सक्षिप्त मात्र किया गया है, और भाषा का भेद भी है। मैने यथासम्भव मूल ग्रन्थ की औचित्य परम्परा की रक्षा की है और कुछ नवीन काव्याशो की योजना करते हुए भी मूलकथा के रस का विघात नही होने दिया है। मुझसे यह ग्रन्थ निर्माण का प्रणयन पाण्डित्य-प्रसिद्धि के लोभ मे नही किया गया है, किन्तु अनेक लम्बी कथाओ के जाल को स्मरण रखते हुए सुविधानुसार किया गया है।[४] जैसा कि पूर्व मे कहा

गया है कि इस वृहत्कथा-पटल के अक्षरांकन का आधार प्रणयानुरागासक्त शकर द्वारा पार्वती को सुनाया गया आख्यान है। यह अधिक विस्तार से दिया गया रहा होगा। कवि गुणाढ्य ने विभिन्न सार्थवाहो द्वारा कही गयी निज-निज देशीय जनो एव उनकी भाषा मे निबद्ध, उन-उन देशो के लोक-कवि द्वारा भाषा निबद्ध लोक कथाओ को संयोजित कर संकलनात्मक रूप मे, वृहत्कथा की रचना की थी। कथा की उत्पत्ति के विषय मे सोमदेव ने लिखा है-

"एक समय शिव ने पार्वती से सात विद्याधरो की विस्मित करने वाली कथाओ का वर्णन किया। यद्यपि शिव पार्वती का यह संवाद एकान्त स्थान मे चलता रहा, तथापि उनके अनुचर पुष्पदन्त ने उस कथात्मक सवाद को सुन लिया तथा अपनी पत्नी जया को उन समस्त श्रुत कथाओ को सुना दिया। जया ने उन सभी कथाओ को अपनी सखियो को सुना दिया। सयोगत यह सब पार्वती को ज्ञात हो गया, वह रुष्ट हो गयी और पुष्पदन्त को मृत्युलोक मे जन्म ग्रहण करने का शाप दे दिया। ऐसी स्थिति मे पुष्पदन्त के भाई माल्यवान ने उनकी ओर से विनम्रता पूर्वक क्षमायाचना की। परिणाम विपरीत रहा और वही शाप माल्यवान को भी मृत्युलोक मे जन्म लेने का प्राप्त हुआ। पार्वती की सखी जया पुष्पदन्त की पत्नी थी, जो उन्हे बहुत प्रिय थी। पुष्प दत्त के शापित होने की घटना से वह शोकाभिभूत हो

गयी । सखी को शोक संतृप्तावस्था मे देखकर पार्वती जी करूणार्द्र हो उठी। उन्होने परिचारिका जया के हित मे अपने शाप का परिहार कर दिया। तदनुसार विध्यपर्वत पर पुष्पदन्त की भेट काणभूति नामक एक पिशाच से होगी। पुष्पदन्त को उस मनुष्य योनि मे भी पूर्वजन्म की सभी स्मृतियाँ यथावत बनी रहेगी। अपनी स्मृति के बल पर वह सभी कथाएँ काणभूति को सुनायेगा, तो उसे शाप मुक्ति प्राप्त हो जायेगी। इसी प्रकार माल्यवान् भी काणभूति से इन सभी कथाओ की सुनेगा एव कथाओ का लोक मे प्रचार कर देगा तो वह पुन स्वर्ग वापस आ जायेगा[५]। इस विधानानुसार वह शापग्रस्त पुष्पदन्त वररुचि-कात्यायन रूप मे कौशाम्बी मे अवतरित हुआ, यह नन्दवंश के अन्तिम नृप योगानन्द का मत्री बना। वह महान् वैयाकरण भी था। अन्तत वह वनवासी हो गया एव विध्यपर्वत वासिनी विंध्यवासिनी देवी की यात्रा की अवधि मे उसकी भेट काणभूति से हो गयी। तत्क्षण उसे पूर्व स्मृति साक्षात् हुई फिर उसने काणभूति को उन वृहत्कथाओ को सुनाया। पश्चात् वह शापमुक्त होकर स्वर्ग गया। उसका भाई माल्यवान् प्रतिष्ठानपुरी मे गुणाढ्य के रूप मे जन्मा। वह वहाँ के नृपति सातवाहन का मत्री बना। गुणदेव एव नन्दिदेव उसके दो शिष्य थे, जिनके साथ वह काणभूति के पास गया। काणभूति से उसे पिशाच भाषा मे सात कथाएँ प्राप्त हुई। उसने उन सात कथाओ को अपने रक्त से एक-एक लाख अर्थात् कुल सात लाख श्लोको मे निबद्ध कर डाला।[६]

इस प्रकार वृहत्कथा का एक स्वरूप निर्मित हुआ। किन्तु वृहत्कथा के स्वरूप निर्माण मे वस्तुत अन्य स्रोत भी थे। उन स्रोतो का सही निरूपण हमे सस्कृत साहित्य-रचना का इतिहास मे प्राप्त होता है- 'काव्य के लक्षण ग्रन्थो मे निरूपित-कथा परिभाषा से, विलक्षण यह अद्भुत कथा ग्रन्थ है। कवि गुणाढ्य ने इन कथाओ को अनेक स्रोतो से ग्रहण किया है। वस्तुत इस ग्रन्थ मे लोक जीवन मे प्रचलित प्रेम-कथा जिनमे राजकुमारो-राजकुमारियो के तथा अन्य के प्रेमाख्यान है। गन्धर्वो, वेतालो, पिशाचो की अद्भुत कथाओ, द्वीप-द्वीपान्तर मे प्रचलित राजलोक-अप्सरा लोक की कथाऍ, जन्तुओ और विविध पशु-पक्षियो के आख्यान एवं भूगोल के अद्भुत कथा-पटल विद्यमान है। दूसरे शब्दो मे कथा के ऊंचे गिरि-शिखर, लम्बे कुसुमित कान्तार, तरगवती नदियॉ, हरी-भरी धरती, धरती पर ही तारा लोक-जैसा अद्भुत दृश्य गुणाढ्य ने वृहत्कथा की रचना मे रच डाला है। इसमे कवि ने वर्तमान, तथा अतीत से अतीत की पृथ्वी के रहस्यपूर्ण सामाजिक इतिहास को भी छिपा दिया है। वह युग भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग था। देश मे दिन रात व्यापारियो के सार्थवाह चलते रहते थे तथा देश के बाहर समुद्री मार्ग से विशाल नौकाऍ द्वीपान्तरो मे जाती थी। इनमे काम करने वाले सार्थवाहो को ले जाने वाले और समुद्र की लहरो पर नौकाओ को खेने वाले शत-सहस्र कर्मचारी अपनी थकान को तथा रात्रि के सूनसान निस्तब्ध लम्बे मार्ग को तब भूल जाते थे जब वे आनन्द-

कौतूहल पूर्ण इन कथाओ को सुनते थे। कथा सुनाने वाले लोकभाषा (प्राकृत या पैशाची प्राकृत) के सहज रसिक कवि होते थे। उन्होने इन कथाओ को अपने देश की आती हुई परम्परा से तथा द्वीपान्तरो से टूट कर अपनी भाषा मे छन्दोवद्ध किया। श्रमिको के साथ चलने वाले ये लोक कवि उनकी भाषा के ही ठेठ कवि थे। ये भाषाएँ प्राकृत और पैशाची प्राकृत आदि थी। पैशाची बोलने वाले मध्यदेश के जनपद के होते थे। देश वशेन च भाषाश्रयण दृश्यते। तदुक्तम्- गौडाद्या सस्कृस्था परिचित रुचय प्राकृते लाटदेश्या , सापभ्रश प्रयोग सकल मरु भुवष्ढक्क भादानक्काश्च। आवन्त्या पारियात्रा सह सदपुरजैर्भूत भाषा भजन्ते। यो मध्ये मध्यदेश निवसति स कवि सर्वभाषा निषण्ण ।। - काव्यमीमांसा/राजशेखर/अध्याय १०/ महान रचनाकार गुणाढ्य इन कथाओ की ओर आकृष्ट हुआ और श्रमजीवियो के कथा गायक इन ठेठ कवियो से उसने सारी कथाओ को एकत्रित करने का विपुल श्रम किया और उसने अपनी वृहत्कथा (बड्ढकहा) संस्कृत मे न लिखकर इन कथा गायको की भाषा (पैशाची भाषा) मे निबद्ध किया।[७] स्निग्ध मिथकीय आस्तरण पर कथा-कलिका का प्रस्फुरण-प्रत्येक लम्बकारम्भं इद गुरु गिरीन्द्रजा----भवप्रसादेन ते'' इस शिव स्तुति से समन्वित होना, कवि के शिवोपासक होने की प्रतीति मात्र मानना ही उचित है। लोकास्था की प्रतिस्थापना के अतिरिक्त, कथाक्रम मे कौतूहल विशेष की ओर भी संकेत है। कवि सोमदेव शिवाराधक पहले है, कवि कथाकार बाद मे कश्मीरी

शैव पण्डित, सोमदेवभट्ट, क्षेमेन्द्र के कुछ बाद हुए थे।[८]

वृहत्कथा के कलेवर निर्माण विषयक विद्वानो के विवेचन मे कथा-स्रोत सयोजन मे इस छन्द की चर्चा कदाचित प्राप्त नही होती। वस्तुस्थिति यही है कि समस्त कथाएँ उदयन एव उसके पुत्र नरवाहन दत्त के विवाह सदर्भो के साथ सगठित होती है। इस अनुक्रम प्रक्रिया मे ही अनेकश अवान्तर कथा सन्दर्भ, सयोजित होते चलते है। ये अवान्तर सदर्भ जम्बूद्वीप और समस्त भारत, समुद्रपार के द्वीपो के निवासियो मनुष्य, पशु,पक्षी, उनके जीवन क्रम भी साथ-साथ साक्षात होते परिलक्षित है। धरती, सागर एव द्वीपो की स्थिति, परिवेश जीवन के ऐसे सदर्भ भी उजागर होते है, जो विस्मिति भाव उत्पन्न करते है। पढने से अतीत काल मे उनके होने की सभावना भी प्रतीत होती है। लगता है कदाचित यह सत्य रहा होगा। यत्र तत्र, विभिन्न लोको, के दृश्य भी अनायास संदर्भित हो जाते है। यह कहना भी असगत न होगा कि 'कथासरित्सागर' के रचनाकार का वर्तमान भी है। अतीत एव पुराणकाल तीनो, आख्यान- संदर्भो मे प्रतीति, का संकेत मिलता है। पाटलिपुत्र नगर की स्थापना का सम्यक् इतिहास इस ग्रन्थ मे प्राप्त होता है। कुमार पुत्रक ने रानी पाटली और अपने नाम पर इस नगर को बसाया था[९]। हमारे कथन का सीधा अर्थ यह है कि कथा सरित्सागर-जम्बूद्वीप सहित वैश्विक ही नही अपितु ब्रह्माण्ड अवेति क्रम, अनुक्रम, भूगोल, इतिहास के सूत्रो मे गुम्फित सुर, असुर, गन्धर्व, वेताल, मनुष्य

की प्रवृत्ति, वृत्ति एव आचरण की शिवोन्मुखी लडिया ज्योतिस्मती हो रही है। पाश्चात्य समालोचक और टानी द्वारा अनूदित 'कथासरित्सागर' के भूमिका लेखक पेजर का आकलन सर्वथा समीचीन है-

इस कथासरित्सागर मे विविध प्रकार की कथाए सकलित है- द्युलोक और पृथ्वी के निर्माण से सम्बन्धित ऋग्वेद कालीन कथाए भी प्राप्त होती है। तथैव रक्तपात की प्रवृत्ति वाले वेताल कथाए, सुन्दर काव्य निबद्ध प्रेमकथाए, देवता, मनुष्य और असुरो की युद्ध कथाए भी संग्रहीत है। यह भी स्मरणीय है कि भारतवर्ष कथा साहित्य का वास्तविक उद्‌गम स्थल है। इस सदर्भ मे भारतीय कथा-साहित्य ईरान तथा अरब से उत्कृष्ट है। भारत के इतिहास की कथा भी तो तद्‌रुप एक कथा ही है। इसका अतिशयोक्तिपूर्ण रूप इन आख्यानो से कम रुचिकर नही है। इन आख्यानो का संकलक कवि सोमदेव विलक्षण प्रतिभावान् व्यक्ति रहा। स्पष्ट रोचक और आकर्षक रीति से कथा, कथायित, करने की अद्‌भुत क्षमता उसमे परिलक्षित होती है। कथा विषय की व्यापकता और चातुर्यपूर्ण उक्तियॉ अत्यन्त प्रभावोत्पादक है। दूसरी ओर जैसा कि प्राय विशेष रूप से भारतीय कथाओ मे प्राप्त होता है, वहॉ एक विशिष्टता यह भी है कि नव-नवाति कथाएं, पूर्ववर्ती कथाओ अथवा उनके संदर्भो के गर्भ मे समाहित है। वह सभी कथाएॅ वर्णना की गति मे क्रमश. अनुक्रमित उपस्थित दृष्टिगत होती है। ऐसी स्थिति मे पाठक कथाओ

के इस जाल से मुक्ति हेतु सहायक सूत्र के अन्वेषणार्थ उत्सुक हो उठता है।[१०] दूसरे शब्दो मे यदि हम कहे कि जैसे कथा सिन्धु से उच्छरित तरंगो के समूहाच्छन्न तट पर स्थित कोई मौक्तिका भिलाषी, सीप-वाही तंरग की प्रतिक्षा मे अनुकूल पवनान्दोलित ज्वार का अभिज्ञान कर रहा हो। अथवा जैसे निविडकान्तार का पथी तर्वादि के मध्य सुखवाही छाया की भूमि ढूढ रहा हो।

कथासरित्सागर मे कथाकार कवि ने प्रथम लम्बक/प्रथम तरग/ श्लोक ३ मे वृहत्कथाया सारस्य समूह रचनाम्यह्य' को विस्तार देते हुए प्रशस्ति मे पुन स्पष्ट किया है कि 'भगवान् शंकर के पूजन-हवन-कर्म तथा नाना प्रकार के दान किया मे सकल्पबद्ध एव तत्पर रहने वाली एव शास्त्रान्तर्गत नित्य और विहित कर्मो के सम्पादनार्थ सतत सलग्नता वश परिश्रान्त राज्ञी, 'सूर्यमती' के क्षणिक मनोरञ्जनार्थ श्रेष्ठ ब्राह्मणो के पुण्य गण-सयुक्त श्री राम के पुत्र श्री सोमदेव भट्ट ने विविध कथा रूप-अमृत से परिपूर्ण, वृहत्कथा के सार का सग्रह किया है जो सहृदय सज्जन समूह के हृदय-सागर निमित्त पूर्ण चन्द्रमा के सदृश है। विस्तृत तरगो के विलासो से पूर्ण यह कथासरित्सागर जिसे निर्मलमति सोमदेव भट्ट ने प्रणीत किया, सज्जन-जन-मानस के लिए आनन्द-भूमि सम है।[११] 'नाना कथा भूतमस्य' से स्पष्ट सकेत है कि रचनाकार ने इस कृति मे विविध कथाओ को समाहित किया है। विविध अर्थात जैसे विभिन्न प्रकृति, प्रवृत्ति, वृत्ति, चरित-कार्य-कलाप, देश-देशान्तर-जन-जीवन,

इतिहास, भूगोल, धर्म-समाज संस्कृति, नद, नदी, पर्वत, कान्तार, परिवेश भेष आदि को व्याख्यायित करने वाले कथा गुच्छ, सयोजित किये गये है। इस प्रकार 'कथासरित्सागर' मे वृहत्तर भारतीय परिवेश अक्षर विन्यस्त है, जहॉ भारतीय अतीत ग्यारहवी शती के वर्तमान सग सश्लिष्ट होकर, जनमानस को सपृक्त करता सदर्भित हो उठता है। यही कारण है कि कथाकार ने समस्त ग्रन्थ को लम्बको एव तरगो मे विभाजित किया है। इस प्रकार के विभाजन मे भी रचयिता ने एक विशिष्ट कल्पना दृष्टि का परिचय दिया है। 'लम्बक' अर्थात् 'कथाविश्राम भूमि' एवं तरग अर्थात गतिमान एव कथाधार मे संगम करने वाली अवान्तर कथा रूप, विभिन्न स्रोत प्रथम लम्बक/प्रथम/तरग। मंगलाचरणोपरान्त प्रस्तावनान्तर्गत परिचय देते हुए लिखा गया है- प्रथम लम्बक का नाम कथापीठ, उसके अनन्तर दूसरे का नाम कथामुख लम्बक, और तीसरे का नाम लावानक लम्बक है। इसके पश्चात् नरवाहन दत्त नामक चौथा लम्बक है। चतुर्दारिका नामक पाचवॉ लम्बक है। तथा मदन मंजुका नामक छठा। तत्पश्चात् रत्नप्रभा नामक सातवा लम्बक और सूर्यप्रभा नामक आठवां है। तदन्तर नंवा अलंकारवती लम्बक, दसवॉ लम्बक शक्तियशा एवं तदोपरान्त ग्यारहवां बेला नामक लम्बक है। पश्चात् बारहवां शशांक वती लम्बक, तेरहवां मदिरावती लम्बक चौदहवा लम्बक महाभिषेकवती नामक लम्बक है। पन्द्रहवॉ लम्बक का नाम पंच है। तत्पश्चात् सोलहवां लम्बक सूरतमंजरी, सतरहवां पद्मावती लम्बक एवं अठारहवे लम्बक

का नाम विषमशील है।[१२] सर्वाधिक विस्तृत छत्तीस तरगो से समन्वित बारहवा लम्बक है और सर्वाधिक संक्षिप्त है, (तरग नाम की दृष्टि से) तेरहवा लम्बक, मात्र एक तरग, कुल दो सौ उन्नीस श्लोकात्मक। प्रथम लम्बक मे आठ, द्वितीय मे छ तृतीय मे छ, चतुर्थ मे तीन, पंचम मे तीन, षष्ठ मे आठ, सप्तम, मे नौ, अष्टम मे सात, नवम् मे छ, दशम् दस, एकादश मे एक, द्वादश मे छत्तीस, त्रयोदश मे एक, चर्तुदश मे चार, पचदश मे दो, षोडश मे तीन, सप्तदश मे छ एव अष्टादश मे पाच तरगे है। प्राय तरगे अवान्तर कथा का बोध कराती है। प्रत्येक कथा परस्पर इस रूप मे सश्लिष्ट है कि मूल कथा बिन्दु का निर्णय दूभर हो जाता है। तरग की भी मुख्यकथा को विस्तार देने वाली उस कथा-विषय विवेचक प्रकृति-प्रवृत्ति पोषित अवान्तर कथाएँ इस त्वरिता से संगमित हो उठती है कि परस्पर पुष्पमाल के सदृश गुम्फित प्रतीत होती है। कौन सी कथा किस क्रम पर रखी जाय यह विनिश्चय उसी प्रकार बुद्धि-व्यायाम सुलभ है जैसे गुम्फित पुष्पकाल मे प्रथमत गुँथे सुमन की पहिचान करना। कृति की ख्याति कथाकृति के रूप मे है, जबकि समग्र ग्रन्थ श्लोक निबद्ध है। कवि सोमदेव भट्ट ने वृहत्कथा के सस्कृत रूपान्तर को 'कथासरित्सागर' नाम से अभिहित किया है।

वस्तुत कवि वे न केवल नाम परिवर्तन ही किया है, अपितु कथाओ के क्रम-अनुक्रम को भी, मूलगत औचित्य का निर्वाह करते हुए, रसात्मकता की सस्थिति

स्थिति-निमित्त, तथा कथाओ का सघटन स्वतत्र रूप से किया है। यह तो साधिकार कहना सहज नही है कि कवि सोमदेव अपनी इस परिवर्तन प्रक्रिया मे कथा, कथ्य कथित एव कथ्यात्मकता, अथवा कथा रुप को, किस सीमा तक अक्षुण्ण रख सके है। किन्तु निर्विवादत यह कहा जा सकता है कि उन्होने कथाओ को शैलीगत सौन्दर्यात्मकता प्रदान की है- 'सोमदेव ने सरल और अकृत्रिम कहते हुए आकर्षक और सुन्दर रूप मे ऐसी कथाओ की वृहत्संख्या को प्रस्तुत किया है जो सर्वथा विभिन्न रूपो मे हृदयावर्जक, आनन्दकर, कथानक, अथवा प्रेम सम्बन्धी, जल और थल के अद्भुत दृश्यो के प्रति हमारे मन मे, अनुराग उत्पन्न करने के निमित्त आकर्षक अथवा वाल्यकाल की परिचित कथाओ का सादृश्य उपस्थित करने वाले, रूपो मे हमारे लिए अति ही रुचिकर है। क्षेमेन्द्र मे कही अत्यधिक सक्षेप और कही अस्पष्टता के कारण, कथाओ का सारा आकर्षण एवं उनकी रोचकता ही नष्ट हो जाती है[१३]। इतना ही नही पाश्चात्य संस्कृतेतिहास के विज्ञान लेखक ने कथा संघटन परआधिकारिक और सूक्ष्म आकलन भी प्रस्तुत किया है-

'कथासरित्सागर' मे मूलग्रन्थ के कथाक्रम मे परिवर्तन किया गया है और इस परिवर्तन का अभिप्राय कथा रस को अक्षुण्ण रखना है। पहले पाच लम्बको मे कोई परिवर्तन नही है। शेष लम्बको मे सोमदेव पर काव्य-प्रभाव की रक्षा करने का अभिलाष प्रधान रहा। इसी कारण सोमदेव को पच और महाभिषेक नामक लम्बको

के मध्य की दीवार को समाप्त करने के लिए विवश किया। उनके ग्रन्थ मे इन लम्बको का संक्रमण दोष पूर्ण नही है। पच नामक लम्बक की समाप्ति राजकुमार के निर्णय,- उसे एक भावी सम्राट के राज्याभिषेक हेतु आवश्यक रत्नो को उपलब्ध करना है, के साथ होती है। यह प्रस्ताव आगे के लम्बक मे गतिशील होता है। आकस्मिक ढग से ग्रहण करती गतिशीलता को सोमदेव, किञ्चिदपि नियत्रित नही कर सके। किन्तु इसी कारण रत्नप्रभा, अलंकारवती एव शक्तियशश् नामक तीनो लम्बको को सोमदेव यथास्थान सयोजित करने मे सफल हुए। इसी कारण प्रारम्भिक काव्य-भाग, अत्यधिक गम्भीर न हो, इस दृष्टि से पूर्णरूप से आमूल परिवर्तन की आवश्यकता कवि को स्पष्टत परिलक्षित हुई। राजकुमार से सम्बधित और उसके सम्राट होने से पूर्व के वृतान्तो को समाधान-निमित्त आधार बनाया गया है- पंच लम्बक को प्रथम स्थान दिया गया, नायक से असम्बद्ध तथा उसे सुनायी गयी, कथाओ से सम्बन्ध रखने वाले, पद्मावती एव विषमशील, लम्बको को ग्रन्थ के प्रारम्भिक विषय से पृथक-रखा गया है। यद्यपि उसे परिशिष्ट रूप भी सयोजित होना उचित कहा जा सकता है। पंच नामक लम्बक से पूर्व वाली कथा वस्तु को कलापूर्ण ढंग से क्रमित किया गया है, यद्यपि उसमे प्रमुखतया प्रासगिक उपकथाओ से सम्बद्ध लम्बको को, नायक के आकस्मिक होकर भी, महत्वशाली कार्य-संपादन करने वाले, लम्बको के बीच-बीच मे समागमित करने का प्रयास किया है। प्रारम्भिक कथा सूत्र

से सम्बन्धित पांचवे लम्बक के उपरान्त मदनमचुका नामक महत्वपूर्ण लम्बक रखा गया है। तदोपरान्त रत्नप्रभा नामक सातवा लम्बक है। नवे लम्बक अलकारवती से पहले क्रमित 'सूर्यप्रभा' नामक लम्बक वस्तुत उपकथाओ से सम्बद्ध है। आकस्मिक कथाओ से सम्बद्ध दसवा शक्तियशस् नामक लम्बक सहजतया अलकारवती लम्बक के पश्चात् अनुक्रमित हुआ। तत्पश्चात् बेला, शशाकवती, मदिरावती एव सर्वथा महत्वशाली पच और महाभिषेक नामक दसवा, ग्यारहवां, बारहवा, तेरहवां, चौदहवा, तथा पन्द्रहवा लम्बक क्रमित किये गये है। तदोपरान्त सूरतमंजरी पद्मावती तथा विषमशील-सोलह और अठारहवा लम्बक, क्रमित किये गये । एक लम्बक के वास्तविक विषय मे एक परिवर्तन आवश्यक था। क्षेमेन्द्र मे तथा सम्भवत मूलग्रन्थ मे भी बेला का सम्बध केवल प्रारम्भिक कथाओ से ही नही था, उसके अन्त मे मदनमंचुका के तिरोहित होने का आवश्यक अंश समाविष्ट था। उसके आधार पर हम अगले लम्बको मे सूचित राजा के शोक को समझ सकते है। परन्तु इस प्रकार का वर्णन रत्नप्रभा, अलंकार वती तथा शक्तियशस् इन लम्बको के सम्बन्ध मे सोमदेव की योजना, से मेल नही खाता था, इसी कारण उक्त आवश्यक अंश को पृथक कर देना पडा, तो भी सोमदेव के लिए अपने क्रम मे पंच के पहले लम्बको मे, मदनमंुका के पूर्व ही तिरोहित हो जाने के लिए, यत्र-तत्र चिन्हो को हटा देना सम्भव नही था।[१४]

उफनते सिन्धु की क्रमश उठती तरगो के सदृश एक मे अन्य आख्यान सहज ही उभरते रहते है। पाठक उनके आनन्दातिरेक मे जो निमग्न हुआ तो तृप्ति की सीमा का परिज्ञान तक वह नही करना चाहता, उसमे डूबता ही जाता है। आख्यानो को अनुक्रमित कर, शृखलायित रूप देने मे कवि सोमदेव भट्ट अति विलक्षण है। सोमदेव का गुण इतना ही है कि वे कुछ भी कहने मे खुटक का अनुभव नही करते। जैसे बरसाती नदियो की मटमैली धाराओ के ऊपर चारो ओर का खर-पतवार आकर बहने लगता है, वैसे ही सोमदेव की कथाओ की शैली बुराइयो को समेटकर, अच्छाइयो को सामने ले आती है। मानव स्वभाव जैसा है, वैसा ही उसे दिखाना किसी भी महान लेखक की विशेषता कही जा सकती है। सोमदेव इसमे पिछडे हुए नही है। सोमदेव की अनेक कहानियॉ मन पर एक बार छप जाने के बाद फिर भुलाये नही भुलायी जा सकती। कहानी के विस्तार और संक्षेप की कला मे, सोमदेव सिद्धहस्त थे। वे उतने ही परिमित शब्दो का प्रयोग करते है, जितने से पाठको की रुचि पर विघात न पडे और कहानी का रस भी अच्छी तरह अनुभव मे आ सके। जब ग्यारहवी शती मे समासबहुल शैली का बोलबाला था, उस समय सोमदेव ने जिस शैली का प्रयोग किया, उसे देखकर आश्चर्य होता है। उन्होने मानो बिना समासो के सरल वाक्यो का धडल्ले से निर्माण किया है [१५]। मूर्खो एव धूर्तो के आख्यान की विषयवस्तु को बोध कराने के लिए

कवि ने सर्वथा सहज पदावली एव सरल शब्दो का प्रयोग अति निपुणता के साथ किया है।

एक आख्यान- किसी मूर्ख गवार ने भूमि खोदते-खोदते उसमे बहुत से आभूषण पाये जिन्हे चोरो ने रात मे राजभवन से चुरा कर वहाँ गाड दिया था। उसे पाते ही उसने अपनी स्त्री को वही ले जाकर सजाना प्रारम्भ किया। कमर की करधनी को उसने स्त्री के सिर पर बाधा और हार को कमर मे। पैरो की पायजेब हाथो मे पहनायी। हाथो के कडे उसके कानो मे लटका दिये। यह देखकर हसते हुए लोगो ने चारो ओर कोलाहल किया। राजा ने यह जानकर उसे पकडवा लिया और उससे आभूषण ले लिये। अन्त मे उसे 'महामूर्ख' समझकर मुक्त कर दिया[१६]। यह आख्यान न केवल हास्य उत्पन्न करने वाला, अपितु शिक्षाप्रद भी है। परिहास जनक इस कारण कि गंवार ने आनन्दातिरेक वश उतावली मे आभूषणो को अनुपयुक्त अंगो पर धारण कराया। शिक्षाप्रद इसलिए कि निर्मल अनजान व्यक्ति कभी-कभी घोर संकट मे भी अनभिज्ञ ही रहकर मुक्त हो जाता है। साथ ही यहभी कि 'सम्पत्ति प्राप्त होने पर संयम नही तोड़ना चाहिए।' सोमदेव की भाषा तो नितान्त सहज अकृत्रिम प्रवाहमयी है ही, साथ ही उनके कथापात्र भी सर्वथा सहज मानवीय सहज प्रकृति-वृत्ति सनाथ है, कवि ने कुत्रापि उनके स्वभाव कार्य कलाप, चिन्तन, अनुचिन्तन मे कवि कल्पना का समावेश नही होने दिया है। कथा-परिवेश अथवा

काल जहॉ कही भी अकित हो गये है, वह कथा वस्तुगत सापेक्षवश ही कथाकार-बुद्धिकी अपेक्षागत कथमपि नही। पर सोमदेव सहृदय, सवेदनशील कवि के रूप अवश्य प्रतीत होते है। ऐसे स्थानो की वर्णना मे तो वह अद्वितीय है।

रस एव अलकारो के दर्शन, कथावस्तु गत पात्र चरिताकन और घटना सापेक्ष अनायास ही समाविष्ट हो गये है। रस निष्पत्ति भले ही कम हो किन्तु रसाभास की स्थितियॉ प्राय सर्वत परिलक्षित होती है। प्रमुखत हास-परिहासपरक रस एव शृगार रस की स्थितियॉ दृष्टिगत होती है। काम रसोद्रेक की सृष्टि ही वस्तुत ग्रन्थ रचना का प्रयोजन है, क्योकि महारानी सूर्यमती की अभिलाषा संपूर्ति हेतु कवि ने ग्रन्थ का प्रणयन उनके एकाकीपन, रसायित भावयोजना, एवं मनरंजनार्थ किया था। इसी कारण आख्यानो मे रागानुराग भाव ही गुम्फित है। वत्सराज उदयन एवं उनके पुत्र नरवाहन दत्त से सम्बद्ध प्रणय कथाओ से सदर्भित जितनी भी कथाएं प्रधान आख्यान सगमित होती है, उनकी कथा वस्तु कथा विशेष मे भावो को अधिक उदीप्त तथा प्रकट करने का ही कार्य करती है। वर्णना पटु कवि सोमदेव घटना क्रम-सन्निविष्ट परिवेश को पहिचान घटित एव घटिति की रसमय सृष्टि करने मे कथमपि नही चूकते, ऐसी स्थितियॉ सहज ऋतुगत-वर्णना समाविष्ट हो गयी है। एक स्थल-

श्रावस्ती मे एक गांव का स्वामी एक राजपूत रहता था। नाम था शूरसेन। वह नृप का सेवक था। पूर्ण स्वामिभक्त। नृपादेश पर वह सेना मे जाने के लिए

उद्यत हुआ। पत्नी सुषेणा मालव की थी, उसे अत्यन्त प्रिय। इस समाचार से वह दु खी मन से उसको रोकना चाहा। शूरसेन ने प्रेमपूर्वक उससे कहा हे कोमलागी। क्या तुम समझती हो, नृप के आदेश पर न जाना उचित है? मै राजपूत हूँ, पराधीन होकर काम करने वाला राजा का सेवक हूँ। अश्रूपूर्ण नेत्रो से उसकी प्रिया ने तब कहा 'यदि आप का जाना अनिवार्य ही है तो किसी प्रकार मै सहन कॅरूगी, आग्रह है कि आप वसन्तऋतु का एक भी दिन वहॉ व्यतीत न करे। शूरसेन ने वचन दिया- 'प्रिये। मै यह निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि मै नौकरी छोडकर (यदि परिस्थिति आयी) तो भी चैत्र की पहिली तिथि को यहॉ आ जाऊगा। सयोगत सुषेणा का पति शूरसेन राजपूत वसन्त काल मे वापस न आ सका।पत्नी प्रतिक्षारत रही। सुषेणा पति पर चित्त लगाये। 'हाय यह मेरी मृत्यु का समय (बसन्त) तो आ गया। परन्तु वे नही आये। जो दूसरो की सेवा मे लगा हो वह अपने लोगो से क्या स्नेह करेगा? तभी कामदेव रूपी दावानल मे जलते हुए से उसके प्राण निकल गये। शूरसेन किसी प्रकार अवकाश प्राप्त कर श्रेष्ठ ऊंट पर सवार होकर दुर्गम मार्ग लांघता हुआ पहुंचा तो देखा कि शृंङ्गार किये हुए उसकी प्रिया मरी पडी है, 'जैसे खिले' फूलो से पूर्ण लता को तूफान ने उखाड फेका हो। वह व्याकुल हो गया और उसे गोद मे उठाकर प्रलाप करने लगा, तभी उसके प्राण क्षण भर मे निकल गये। कुल देवी ने दोनो को जीवित कर दिया।[१७]

इस आख्यान मे कथावस्तु सापेक्ष बसन्त ऋतु की भी वर्णना सुन्दर है 'बसन्तोत्सव का दिन आ गया। केलि करते हुए कोकिल, कामदेव के आह्वान-मत्र की भाति कुहू-कुहू करने लगी। फूलो की गंध से मत्त भ्रमरो का गुजार सुनाई पडने लगा, मानो कामदेव के धनुष चढाने का शब्द हो[१८]। बसन्त ऋतु से आनन्दित प्रकृति के सुन्दर वर्णन अन्यत्र भी है। 'दक्षिण से आने वाला कोमल मलय-पवन स्पर्श द्वारा आनन्ददायक है। दशो दिशाएँ स्वच्छ है पग-पग पुष्पाच्छन्न वन-कान्तार मह महा रहे है, कोकिल वृन्द के स्वर मधु रस घोल रहे है। इस बसन्त ऋतु मे कौन वस्तु सुखकरी नही होती? केवल प्रियजन का वियोग ही इस बसन्त काल मे असहनीय बन जाता है। कवि काव्य रस की सृष्टि करने मे प्रवीण है, उसे अवसरानुकूल नद-नदी, पर्वत-कान्तार-वृक्ष, पवन एव ऋतु सम्पदा परिपूर्ण प्रकृति दर्शन कराने मे सफलता प्राप्त हुई है। नृपकनकवर्ण के प्रकृति विहार-व्याज से शरत्काल का मनोरम रूप अकित किया है- एक समय जब प्रकृति मे कुछ उष्मता रहती है, हाथी मदोन्मत्त हो उठते है, राजहसो के परिवार अपनी प्रसन्नता से प्रजाजनो को आनन्दित करते रहते है, ऐसे अपने गुणो के समान गुणवाले शरतकाल मे विहार करने के लिए चित्र महल मे गया, जो कमल के पराग से सुगन्धित और शीतलवायु से रमणीय हो रहा था।[१९]

कुशल काव्य रचनाकार सोमदेव ने अपनी काव्योन्मेषशालिनी भावयित्री एवं

कारयित्री उभयप्रतिभासयोगात् पाठको के लिए काव्य रस-समन्वित कथागत वस्तु, घटना, परिवेशोद्भूत आनन्द सृष्टि कर दी है। कवि कथासरित्सगार मे वस्तुवर्णना, दृश्य वर्णना एव रूप वर्णना के साथ-साथ शृङ्गार वर्णना के विप्रलम्भपक्षीयवर्णन को समुपस्थित करने मे विचक्षण है। उसे नारी सौन्दर्य की सृष्टि करने मे सम्यक् अभिरुचि है। ऐसे अकनो मे अलकारो का सन्निवेश भी दर्शनीय है। रणभूमि, रणभूमि मे गजाश्व, सैनिको का उत्साह, सग्राम मे निहत सैनिको के रक्त प्रवाह आदि को नदी-प्रवाह संग उपस्थित किया है। नीचे भूमि पर काटे गये हाथी घोडो के, वीरो के रक्त की नदिया बह चली । वीरो के शरीर रूपी ग्राह उस नदी मे बह रहे थे। नाचते, कूदते तथा रक्त की नदी मे तैरते और चिल्लाते हुए शूरो-वीरो पर टूटते हुए सियारो और भूत-प्रेतो के लिए वह युद्ध अत्यन्त उत्सव और आनन्द का कारण बन गया था[२०]। इसी प्रकार का दृश्य उस रणोत्सव के दर्शक-समूह का वर्णन अत्यन्त ही मनोरम है 'दर्शको के कारण आकाश जैसे मेघाच्छन्न हो गया है। शस्त्रो की खन-खनाहट से भीषण और महान कोलाहल, दोनो ओर के सैन्य दल मे व्याप्त हो गया। सारी दिशाओ मे आकाश बादलो के समान बाणो के जाल से छा गये। दोनो ओर से चलते हुए वाणो के परस्पर टकराने से अग्नि रूप विद्युत दीप्तिमान होने लगी[२१]। उससे भी विलक्षण रणक्षेत्र का वर्णन जहॉ उपमा, उत्प्रेक्षा की सन्निविष्ट से सनाथ उत्कृष्ट कवि कल्पना संदर्शित है- सैनिको के चलने

से उत्थित रज-राशि मेघ सदृश फैल गयी। शस्त्रास्त्र विद्युत प्रभा के समान दीप्त होने लगे। समर भूमि मे कटे सैनिको का रक्त पानी के समान बरसने लगा। इस प्रकार वह समर वर्षाकालीन दुर्दिन सदृश प्रतीत होने लगा। ऐसा परिलक्षित होता था, मानो रण के रूप मे उन्होने अनेकश प्राणियो के मारे जाने वाले भूत महायज्ञ आयोजित कर दिया गया हो। जो शोणित रूप आसव से परिपूर्ण हो, जहॉ बलि के रूप मे शत्रुओ के मुण्ड दृष्टिगत होते है।[२२]

एक अनोखा चित्रण दृष्टव्य है- सहसा स्तम्भ का मध्य भाग कटता है, और उसमे से एक देव निस्सृत होता है- भयावह स्वरूप 'शरीर इतना विशाल था कि सम्पूर्ण गगन मण्डल ही उससे व्याप्त ही गया, सूर्यविम्ब आछन्न हो गया। देव का वर्णस्वरूप अंजन जैसा कसा'' नेत्र प्रभा विद्युत-सदृश चंचल तथा दीप्ति मान। दत पक्तियो की आभा ऐसी प्रतीत होती थी मानो बलाका समूह पंक्तिबद्ध उड रहा हो। उसे देखकर-प्रलयकालीन गरजन करते मेघ का आभास होता था।[२३] इस अंकन को पढने मात्र से एक भयानक स्वरूप नेत्रो के समक्ष साक्षात् हो उठता है।

नृपति वत्सराज के युद्धाभियान का वर्णन कवि अप्रस्तुत प्रशंसा के माध्यम से तथा शरत्काल का अकन एवं सैनिक दल, गजाश्वारोहियो का साक्षात् चित्र

उपस्थित किया है। इस वर्णन मे उपमा आदि अलंकार भी अवतरित हो उठते है- 'उत्थित छत्रालकृत विशाल गजपीठ पर आरुढ नृपति ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे पुष्पित वक्ष-पर्वत-शिखर पर मदोन्मत सिह विराजमान हो गया हो। साफल्य दूतिकासदृश अवतरित, जलाशयो को शोषित कर, नदियो को सुखाकर मार्गो को सुखद एव सुगम बनाती हुई, शरद ऋतु मे राजा को अत्यधिक उत्साह का अनुभव हुआ। विविध शब्द पूर्ण कोलाहल उत्पन्न करती हुई सेनाओ से भूतल व्याप्त हो गया। ऐसे वातावरण मे विजयाभियान-हेतु अग्रसर नृप ने अकाल मे वर्षा ऋतु का भ्रम उत्पन्न कर दिया। उसकी सेना के कलकल तथा भीषण शब्दो की प्रतिध्वनियो द्वारा मानो दिशाएँ उसके आगमन की सूचना देने लगी।[२४] स्वर्ण सज्जित, स्वर्णमान आभा से प्रदीप्त उसकी सेना के घोडे ऐसे प्रतीत होते थे मानो नीराजन-विधि से प्रसन्न अग्नि का अनुगमन कर रहे है। दोनो कानो के निकट लम्बायमान् लटकते चामरो से शोभित और दीप्तिमान मस्तक पर तिलकायित सिन्दूर के कारण लाल मद-जल बहाते हुए उसके हाथी, मार्ग पर चलते हुए ऐसे सुन्दर मालूम पडते थे, मानो- राजा के भय से भयभीत पार्वती ने शरत्कालीन मेघखण्डो से मण्डित एवं धातु रसो के झरने बहाते हुए अपने पुत्र की सेना की सहायता के लिए भेजे हो। वह राजा अपने सामने फैलते हुए दूसरे के तेज को सहन नही कर सकता। इसीलिए मानो सेना से उडी हुई धूल ने, सूर्य के तेज को आन्छन्न कर लिया।[२५]

कवि सोमदेव की वर्णना शैली सहज, प्रकृत, यथावत, चमत्कृत, काल्पनिक तथा अलौकिक विविध रूपा है। स्वाभाविक चित्रण प्रमुख रूप से प्राप्त होते है। नृप वत्सराज के मृगया-वर्णन मे आखेटक एवॅ आखेट पशु की स्वाभाविक क्रिया-कलापो तथा तदनुकूल परिवेश-निर्मित कथन मे अनुपम सफलता प्राप्त है। विलास-क्रीडा के मध्य कभी-कभी नृपति व्याघ्रो के साथ हरे पत्तो का-सा वेष धारण किये हुए एवं धनुष लिए हुए मृगवनो का भी भ्रमण करता था। अर्थ यह है कि मृगया अवसर पर नृप पूर्णत आखेटक रहता है न कि नृप। इस क्रीडा मे कीचड मे सने हुए सूकर-समूह को वाणो से वेध देता है। उसके पीछा करने पर इधर-उधर रक्षार्थ भागते हुए कृष्णसार मृग ऐसे मालूम होते थे, मानो पूर्वकाल मे विजय की हुई दिशाए उस पर कटाक्षपात कर रही हो। वनमहिषो के वध के कारण उनके रक्त से रजित वन प्रान्तर ऐसा मालूम होता था, जैसे बन कमलिनी नृप की सेवा हेतु उपस्थित हो गयी हो।[२६]

नगरी उज्जयिनी का वर्णन भी अत्यन्त मनोरम एव परिष्कृत है। 'नगरी महाकाल की वास-स्थली है'। मानो शिव की सेवा के लिए आये हुए कैलाश-शिखरो के समान उतुंग धवल भवन सुशोभित है। सागर सदृश गभीर उस नगरी की विस्तृति चक्रवर्ती रूप जल से पूर्ण रहता है। चक्रवर्ती सम्राट से सनाथ रहता है। सेना रूपी शतश सरिताएं इसमे सदा प्रवहमान रहती है। अपने पक्ष वाले महीधरो

के लिए वह आश्रय भूमि है। इस नगरी मे विक्रमसिह नाम का यथार्थ नाम धारण करने वाला नृपति राज्य करता था। उसके सम्मुख कही भी शत्रु रुपी मृग नही थे। यह वर्णन रूपालंङ्कार की सृष्टि करता है- नगरी महासमुद्र है। चक्रवर्ती सम्राट सिन्धु मे उठने वाले चक्रवात, समुद्र मे सगम करने वाली सरिताए, यहाँ शतश सैन्यदल है। पक्षधारी मेरू, मैनाक आदि पर्वत रूप चक्रवर्ती सम्राट के पक्षधर भूपति (महीधर) इसमे निवास करते है। अविजित नितान्त संरक्षित नगरी। यहाँ कभी युद्धोत्सव आयोजन का अवसर उपस्थित नही हुआ, क्योकि शत्रुओ का सर्वथा अभाव था।[२७] मृगया-भूमि का कितना यथार्थ और अलकारिक वर्णन मनोरम है -

कवि सोमदेव ने मृगया को क्रीडारूप सुख देने वाली, सुन्दरलता कहा है। वह मृगया भूमि को बडे-बडे हाथियो के कुम्भस्थलो को विदीर्ण करने वाले, निहत सिहो के नखो से गिरे हुए मोतियो से ऐसी मालूम हो रही थी, मानो उसमे बीज-वपन किया गया हो। व्याघ्रो के विदीर्ण खुरो से अंकुरित सी प्रतीत होती थी। निहत हरिणो के शरीर से प्रस्रवित रक्त से रक्तवर्णी पल्लवो से युक्त प्रतीत हो रही थी। वाण द्वारा विधे गये सूकर-समूह के गुच्छो से परिपूर्ण शरभवृन्द के पतित शरीर से फलवती परिलक्षित हो रही थी। उस भूमि से भंयकर एवं सन-सन स्वर मे ध्वनित वाणछूट रहे थे। इस प्रकार वह मृगया भूमि विलक्षण रूप मे शोभा धारण कर रही थी।[२८] एक विवाहोत्सव अवसर परकौशाम्बी नगर की शोभा कितनी मोहक

है- विभिन्न एव दूरस्थ देशो से आगत गणिकाओ तथा नृत्यांगनाओ, बन्दीजन एव चारणो के गीतो एव स्तुतियो से उस नगरी के समस्त वातावरण मे सगीत मुखरित हो रहा था। नगर की स्त्रियो द्वारा सजायी एवं सवारी गयी अलङ्कृत वायु से आन्दोलित पताकाओ से विभूषित गज-समूह से पूर्ण नगरी नर्तनशीला रमणी के सदृश प्रतीत हो रही थी।[२९] ऐसे अनेकश वस्तु वर्णनो से यह ग्रन्थ आनन्दरस की सृष्टि एव कवि की सौन्दर्य दृष्टि का परिचय देता है।

'कथासरित्सागर' कथाग्रन्थ होते हुए भी प्रकारान्तर से काव्य-प्रबन्ध की छटा विखेरता प्रतीत होता है। नायक उत्तम कुलोद्भूत चक्रवर्ती सम्राट है। उसकी उदात्त जीवन गाथा का निबन्धन। ग्रन्थ मे नद-नदी, वन, पर्वत, ऋतुगत नैसर्गिक चित्रण, नायक का मृगया वन विहार एवं लास-विलास विषयक कथन कवि ने अत्यन्त मनोज्ञतापूर्ण रूप मे उपस्थित किया है। यह ग्रन्थ रसालंकारो से भी वंचित नही है। शृगार एवं वीररसो की छटा-नरवाहन दत्त की विलास क्रियाओ तथा विविध युद्ध वर्णनो मे उत्कृष्ट भाव भूमि पर अवतरित हुआ है। नरवाहन दत्त का विभिन्न सुन्दरियो के सग वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने का क्रम ही कृति को शृङ्गार रसान्विति की भूमि बना देता है। एक चित्रण दृष्टव्य है-'नरवाहन दत्त उस दिन मन्दारगुच्छ सदृश स्तनो वाली, शिरीष-सुमन के समान सुकोमल, विकसित कमल के समान मुखवाली, और प्रफुल्ल कुमुदो के समान नेत्रो वाली, दुपहरिया के फूलो की भांति लाल होठो

वाली, मानो जगद्विजय के लिए निर्मित कामदेव के एक वाण के समान उस मदन मचुका के साथ उद्यान मे विहार करता रहा[३०]। रूप सौन्दर्य के अकन मे भी कवि सोमदेव ने अत्यन्त मनोज्ञ शैली प्रयुक्त की है। नारी के अंग-प्रत्यंगो के वर्णन मे अन्य सस्कृत कवियो की ही भॉति उन्होने प्रकृति के विविध उपादानो का ही सहारा लिया है- चमकती हुयी विद्याधारियो के मध्य नरवाहन दत्त ने एक कन्या को देखा-मानो तारक मण्डल के मध्य दीप्त नेत्रहारिणी चन्द्रमा दृष्टिगत हो गया हो । उसका मुखकमल प्रफुल्लित था। उसके चंचल नेत्र भ्रमर के तुल्य घूम रहे थे। हस सदृश लीलायुक्त गति मे गमन करती हुयी, उसके शरीर से कमल की सी सुगंधि निकल रही थी। तरगायित विदुल्लता से उसका कटि सुशोभित था। प्रतीत होता था कि काम रूपी तडाग की वह मूर्तिमती अधिदेवता हो। कामदेव की संजीवनी विद्या सदृश तथा उत्कण्ठित चन्द्रमा की मूर्ति-सदृश थी।[३१] एक अन्य स्थल जहा नारी सौन्दर्य की अलौकिक सृष्टि को चिन्हित किया गया है- 'नृप कनकवर्ण स्नानार्थ अपनी सभी रानियो के संग गोदावरी नदी मे प्रवेश कर जल विहार करने लगा। रानियो के सौन्दर्य का अकन-मुखो से नदी के कमलो को, नेत्रो से कुमुदो को, कुचो से चक्रवाक युगल को, अपने-अपने नितम्बो से गोदावरी के तटो को, नृप की रानियो ने विजित कर लिया था। अत· गोदावरी नदी क्रोध करके अपनी तरग रुप वक्र भृकुटियो द्वारा देखने लगी।[३२] कवि ने यहॉ नारी अंगो

के साथ नदी के कमल, कुमद, और उसमे विचरणशील चक्रवाक-युग्म को मुख, नेत्र, कुच से उपमित कर तथा नितम्ब को सरित तट कहकर नारी को नदी-सदृश प्रवहमान रसधारवाही कहकर गोदावरी को इर्ष्यालु बना दिया। यह कवि की अनूठी कल्पना है- तरग को ईष्याभिभूत, क्रोधान्विता नारी की भृकुटि उपमित कर डाला इस वर्णन से स्पष्ट संकेत है कि कवि सोमदेव नारी प्रकृति का मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत करने मे निपुण रहे।

'कथासरित्सागर' समग्रत शृगार रस प्रधान प्रेमरसधारवाही, कामरसोद्रेक से परिपूर्ण, सहृदय-रसिक जनो मे रागानुरागोद्भावक काव्य है। शृगार के वियोग पक्ष का भी चित्रण कवि ने यथावसर उपस्थित किया है- एक रागासक्त परन्तु प्रणयी से विमुख प्रिया की दशा क्या हो जाती है, इसका दृश्यांकन इस प्रकार द्रष्टव्य है- शरीर पर चन्दन का लेप किये एव मृणाल का हार धारण किये हुए, कमल पत्र रचित शय्या पर पडी करवटे बदलती, सखियॉ कदली-पत्रो का व्यजन डुलाती हुई, पाण्डुवर्णा, कृशतन, कामज्वर से सपीडित वियोगिनी, सखियो से कह रही है- चन्दन लेप, कदली पत्रो का व्यजन शीतल होकर भी मुझे दुग्ध कर रहे है, सभी उपचार व्यर्थ है, यह सब बन्द करो। ऐसे असफल प्रयासो से कथमपि लाभ नही।[३३]

कवि ने न केवल नारी सौन्दर्य ही, अपितु पुरुष रूप को भी वर्णित किया है। एक राजकुमारी अपनी सखी से एक सुन्दर युवक के रूप का कथन कर रही

है 'उसकी सुन्दरता हिमयुक्त चन्द्रमा के समान थी। उसे देखकर कामना उदीप्त हो जाती थी, वह आलोक की क्रीडा से युक्त उपवनो वाले बसन्त ऋतु के समान था। उसके मुखचन्द्र की शोभा-सुधा पान करने वाले मेरे नेत्र उसके मुखचन्द्र का चकोर हो रही थी। इसी मध्य आकाश मे उमडे हुए काले मेध के सदृश एक विशाल हाथी चिग्घाडता हुआ वहा आया। उसने अपना बन्धन तोड दिया था, उसके मस्तक से मदजल बह रहा था।[३४] वियोगिनी के समान वियोगी की अवस्था इस प्रकार दृष्टव्य है- निश्चय ही विरह से व्याकुल मेरे लिए चारो ओर सन्ताप की सृष्टि करते हुए कामदेव ने इस बर्फ मे अंगार डालदिया है। चन्दन मे भूसे की आग भर दी है, एव पंखे की हवा मे दावानल भर दिया है। अत हे मित्र। इस प्रकार अपने को व्यर्थ कष्ट क्यो दे रहे हो?[३५]

इस वर्णनाक्रम मे एक अद्भुत बसन्त की छटा का संकेत इस प्रकार है- 'समय प्राप्त कर पुष्पित कुन्दलता की दन्तपक्ति वाले एवं कमलिनी-वन को मथने वाले हेमन्त रूपी गज को निहत करके बसन्त रूपी सिंह आ पहुचा, सुमन मजरियॉ उसके सर के सदृश तथा रसाल के बौर उसके नख के समान जान पडती थी और वह बन मे क्रीडा रत था।[३६] बसन्त को सिहमय कल्पित करना कवि की अदभुत उद्भावना है। ऐसे ही मनोरम वर्णन एवं कल्पनाओं से गद्गद हृदय पाश्चात्य विद्वान आलोचक विण्टरनित्स ने ठीक ही टिप्पणी किया है - 'यह निर्विवाद रूप

से कहा जा सकता है कि सोमदेव नि सदेह भारतीय कवियो मे प्रथम श्रेणी के कवि है।[३७]

कथासरित्सागर वस्तुत कथार्णव है, विशाल गम्भीर, तरगायित परन्तु स्वच्छ-अच्छ रेणुवर्ण जलरूप-सदाचार, छल-छद्म, कपट-वञ्चकता-भाव-भावित-कथारुप सरित-सराशि सगयित होकर, उच्छरित नीति-उपदेश रूप-सुधा बिन्दु से तृप्ति रसार्द्रकर अतीत-सग वर्तमान को सयोजित कर अविच्छिन्नता प्रदान करता है। जिससे जीवन का सत्य, शिवम्से सश्लिष्ट होकर दिव्यभावो से उद्‌बोधित करने का क्रमानुष्ठान संदर्शित होता है। कथा-क्रम-अनुक्रम एव विविधता से वस्तुत· महासागर की लघु उत्ताल तरगो का परिदृश्य सहजत समुपस्थित होता है। तरग तरंगित तथा तरंगायित क्रमानुरूप, कथा कथित एव कथायित क्रमानुक्रमित नैरन्तर्य विश्रृखलित नही होता। गुम्फित पुष्पमाला- के सदृश अविश्रृखलित रहता है। जिस प्रकार प्रत्येक सुमन गुँथे हुए एक समान प्रतीत होते है उसीप्रकार कथासरित्सागर मे सभी आख्यान अनुक्रमित है।

जिस प्रकार हार से एक फूल के पृथक होने पर सभी विखर जाते है, वैसे ही कथासरित्सागर मे एक कथा को पृथक करने पर सभी कथाएँ विश्रृंखलित हो जाती है, और कथारस का प्रभाव अवरुद्ध हो जाता है। एक आख्यान का अन्त पश्चात् की अनुक्रमित कथा का सूत्र एव दूसरा आख्यान पूर्ववर्ती का पोषक

बनकर उपस्थित होता है-

सम्प्राप्तमपि नेच्छन्ति स्वर्गभोग महाशया।
तथा च श्रूयतामत्र कथां व कथयाम्यहम्।।

-लम्बक ८ तरंग२/८२

(और वह उदाराशय प्राप्त हो रहे स्वर्ग-सुख की भी अभिलाषा नही रखते। मै इससे सम्बन्धित एक कथा कहता हूॅ सुनो-)। इसी रूप मे काव्य की समस्त कथाएॅ परस्पर अनुक्रमित है। जीवन के मुधर-मधुर कटु-कषायित सभी वृत्ति-प्रवृत्तियो की उपस्थापिका एव उद्वासिका कथाए यहां उपलब्ध होती है। उदाहरण स्वरूप कर्णाट देश के एक-वीर ने युद्ध मे शौर्यपूर्वक अपने स्वामी नृप को प्रसन्न किया। राजा ने भी प्रसन्नता पूर्वक उससे अभिलषित मॉगने के लिए आग्रह किया। उस योद्धा ने स्वामी नृप से उसका नापित वरदान स्वरूप माग लिया। प्रत्येक व्यक्ति अपने चित्त के प्रमाण से अपना भला या बुरा चाहता है। अब कुछ न मांगने वाले मूर्ख की कथा सुनो-मार्ग पर चलते हुए एक मूर्ख से गाडी पर बैठे व्यक्ति ने कहा- 'मेरी गाडी को कुछ बराबर कर दो। उस मूर्ख ने कहा यदि मै बराबर कर दूॅगा तो तुम मुझे क्या दोगे? गाडी वाले ने कहा 'कुछ नही दूंगा' तब उस मूर्ख ने मुझे कुछ न दो', इस प्रकार कहकर उसकी गाडी को ठीक कर दिया और 'कुछ न दो मांगा' गाडीवान हंसने लगा। 'स्वामिन् मूर्खजन इस प्रकार सदा हंसी के पात्र, तिरस्कृत, निन्दनीय और विपत्तियो के शिकार रहते है और बुद्धिमान समाज मे सम्मान पाते

है इस प्रकार गोमुख के मुख से कही गयी कथाओ के विनोद को मंत्रियो के साथ सुनकर युवराज नरवाहन दत्त रात मे समस्त ससार को विश्राम देने वाली नीद मे सो गया।[३८]

कवि सोमदेव ने कथासरित्सागर मे जहॉ कथा, कथक और कथित के उद्गम स्थलो का मनोरम चित्र उपस्थित किया है, वही वह निज जन्म भूमि कश्मीर का भी वर्णन किया है- हिमालय के दक्षिण की ओर कश्मीर नाम का देश है, जिसे मानो ब्रह्मा ने मनुष्यो के लिए स्वर्ग का कौतूहल दूर करने के लिए बनाया है। जहां कैलाश एवं श्वेतद्वीप के सुखद निवास को तज शिव एव विष्णु शतश स्थानो पर स्वयमेव, प्रार्दभूत होकर निवसते है। जो देश वितस्ता नदी के जल से पवित्र और शूर, विद्वान जनो से परिपूर्ण रहता है। वह सर्वदा छल-कपट आदि दोषो से अजेय है अर्थात जहॉ पर छल-कपट आदि का नाम नही रहता तथा जिसे बलवान शत्रु भी विजित नही कर सकते।[३९] समाज नीति, धर्मनीति एव राजनीति का सुन्दर संदर्भ छोटे-छोटे आख्यानो के माध्यम से विवेचित है। नरवाहनदत्त ने वार्तालापावधि मे अपने अमात्यो से राजनीति विषयक चर्चा की है। अमात्यो ने कहा ‘आन्तरिक शत्रुओ पर विजय प्राप्त कर जनपद, देश आदि की उन्नति करने वाले मंत्रियो तथा अथर्ववेद के ज्ञाता निपुण और तपस्वी पुरोहित की नियुक्ति करनी चाहिए। तदनन्तर राजा को भय की स्थिति मे, क्रोधातुर स्थिति मे, लोभ एवं धर्म मे, उन लोगो

की कपट परीक्षा करके तथा उनके हृदय को पूर्णत समझकर फिर यथायोग्य कार्य निमित्त नियुक्त करे। उनके कथनो की भी परीक्षा इसी रीति से करनी चाहिए कि वे आन्तरिक स्नेह वश कह रहे है या स्वार्थभाव से यह परीक्षा भी पारस्परिक वार्तालाप के माध्यम से करणीय है। सत्य कथन पर हर्ष के भाव होने चाहिए, और असत्य के लिए दण्ड दिया जाना चाहिए। अलग-अलग गुप्तचरो के माध्यम से उनकी चारित्रिक पवित्रता का भी ज्ञान करना चाहिए। इस प्रकार आंखे खोलकर सावधान रहकर, राज्य के कार्यो को देखते हुए विरोधी समूह को उन्मूलित कर, कोष तथा सैन्य बल का सग्रह करके अपनी जड सुदृढ कर लेनी चाहिए। तत्पश्चात् प्रभाव, उत्साह एव मंत्र-इन तीनो शक्तियो से युक्त होकर अपने तथा शत्रु के बलाबल को भलीभाति समझकर अन्य देशो पर विजय प्राप्ति की अभिलाषा संजोनी चाहिए।[४०]

उल्लेखनीय तथ्य यह है कि 'कथासरित्सागर' मे भारतीय अतीत का भौगोलिक इतिहास एव ऐतिहासिक भूगोल के सक्षिप्त, परन्तु सम्यक् अकन प्राप्त होता है। समुद्रशूर वैश्य की कथानुसार वह पूर्व मे कटाहद्वीप, कर्पूर द्वीप तथा स्वर्ण द्वीप पर्यन्त यात्रा समाप्त कर लौटते हुए नारिकेल द्वीप पहुॅचता है। और वहॉ से चलकर सिंहलद्वीप मे उतरता है। राजेन्द्र चोल के अभिलेखो मे निक्कवर का उल्लेख हैं जो कदाचित वर्तमान (निकोवार) है और सुमात्रा ही कदाचित सुवर्ण द्वीप है। जहॉ

पर शैलेन्द्रवशीय नृपति शासन करते थे। सम्भवत तीन शती-पर्यन्त काल तक वहाँ उनका विजयशाली साम्राज्य स्थापित था। कवि सोमदेव शैलेन्द्रवशीय नृपतियो के यश से अवश्यमेव अवगत थे। परिणामत उन्होने स्वर्णद्वीप का उल्लेख किया।[४१] एक अन्य आख्यान मे चन्द्रस्वामी नामक सार्थवाह अपने खोये हुए पुत्रो को ढूढता हुआ सर्वप्रथम वह नारीकेल द्वीप जाता है वहाँ से जहाज पर बैठकर समुद्र मार्ग द्वारा कटाहद्वीप, पुन कर्पूरद्वीप तक की यात्रा करता है। पुन कर्पूरद्वीप से स्वर्णद्वीप, वहा से सिहल द्वीप लोटता है। फिर उसकी यात्रा चित्रकूट (चित्तौड) पर्यन्त होती है।[४२] यह भी मालूम होता है कि नारिकेलद्वीप, कटाहद्वीप की यात्रा के मार्ग मे स्थिति एक विश्रान्ति-स्थल रहा।[४३] कटाहद्वीप का उल्लेख कवि कुमारदास के सुप्रसिद्ध महाकाव्य 'जानकी हरणम्' मे भी उपलब्ध है।[४४] यही नही दीपान्तर के मलयपुर का भी नामोल्लेख मिलता है। यही की ही राजकुमारी थी मलयवती जिसके संग नृप विक्रमादित्य ने विवाह किया था।[४५] इस प्रकार कथासरित्सागर के अध्ययन से हमे न केवल भारतवर्ष अपितु वृहत्तर भारतीय ऐतिहासिक भूगोल तथा भौगोलिक इतिहास की सम्यक जानकारी प्राप्त होती है, जो अन्यत्र प्राप्त होना कठिन है।

'कथासरित्सागर' मे भारतवर्ष और वृहत्तर भारत का इतिहास-भूगोल ही नही अपितु वृहत्तरभारत का समाज-समग्र रूप से प्रतिविम्बित है, जो अतीत की स्वर्णाभा से हमे आज भी गौरवान्वित कर देता है। यह सुख समृद्धि का समय था। जब

हमारे सार्थवाह निर्वाध मार्ग से निरुपद्रव द्वीपो मे व्यवसायिक यात्राए करते रहे। विश्रान्ति क्षणो मे पारस्परिक वार्तालाप के माध्यम से अन्यान्य देशो की सस्कृति का विनिमय, लोक मे व्याप्त एवं प्रिय, लोक कथाओ के माध्यम से करते थे। इन आख्यानो मे मानव जीवन के मधुर-मधुर, तिक्त एवं कषायित क्षणो के अनुभव सरक्षित है। ये अनुभव जीवन को उदात्त, गति प्रदानकरने वाले है। ये आख्यान निश्चयत रससिद्ध लोक कवियो की रचनाएँ रही होगी, जो कर्णपरम्परया प्रसारित होकर अन्तत संकलन रूप कथाकाव्य बन गये। सत्-रजस् एव एव तमस् रूप मनुष्य की त्रिगुणात्मक प्रवृत्ति का शिवाशिव विस्तार है- ये आख्यान। फलस्वरूप आख्यानो मे अनेकश कथन ऐसे भी है जो मनोरम सूक्तियॉ रूप है। एव कतिपय आख्यान ही स्वयं मे जीवन के लिए दिग्वोधक है। किसी सज्जन का नौकर था- मूर्खस्वामी ने उसे तेल क्रय करने के लिए बनिए के यहॉ भेजा। वह गया और तेल लेकर लौटा। मार्ग मे उसके किसी मित्र ने देखा और कहा देखो, तो तुम्हारे तेल का पात्र नीचे से चू रहा है। नौकर ने तेल पात्र का निचला भाग-देखने के लिए पात्रको उलटा कर दिया। परिणाम पात्र मे रखा सारा का सारा तेल गिर गया। देखकरलोग उस पर हसने लगे नौकरी से वह निकाल दिया गया। मूर्ख की अपनी बुद्धि ही अच्छी होती है, उसे उपदेश देना उचित नही।[४६]

इसी प्रकार एक कृपणका आख्यान- एक धनवान, अत्यन्त कृपण, एक समय

उसके हिताभिलाषी मत्रियो ने उससे कहा- 'स्वामिन इस लोक मे किया गया दान परलोक मे होने वाली दुर्दशा से मुक्ति दिलाता है।' अतएव 'दान दो' क्योकि जीवन एव धन दोनो नाशवान् है। राजा कहने लगा 'मै' दान तब दूगा, जब मरकर स्वय को कष्ट से घिरा हुआ देख लूगा। मत्रिगण हसपडे और चुप हो गये। मूर्ख धन तो तब तक नही छोडता, जब तक धन स्वय उसे नही छोड देता।[४७] लोभप्राणियो के लिए अत्यन्त हानि पहुँचाने वाला है।[४८] इसी प्रकार उपदेशात्मक कथन तथा सूक्तियो का यह कथासरित्सागर अक्षयकोष है- 'सत्य है जब धीरपुरुष साहसपूर्वक महानकार्य का संकल्प लेते है तब विधाता प्रसन्न होकर स्वयमेव उसकी सफलता के लिए उपयोगी उपकरण जुटा देता है।'[४९] ऐसी स्त्रियॉ विरली हो होती है जो सत्कुलोत्पन्न, मौक्तिक सदृश उज्जवल तथा निष्कपट मानस रह धरती का आभूषण बनती है।[५०] अनुराग के वशीभूत रमणियॉ क्या नही कर सकती।[५१] धन ही कृपणो का दूसरा प्राण होता है।[५२] निर्धनजन के लिए निधन श्रेयस्कर है, श्रेष्ठ है। परन्तु अपने सम्बन्धियो के सम्मुख दीनता का प्रदर्शन करना सहन नही।[५३] धन हीन जन देह का भी विक्रय कर सकता है। स्त्रियो की बात ही और है, जिनका जीवन विद्युत सदृश चचल होता है।[५४] स्त्रियो का चित्त भीतर से विषमय और बाहर से स्वच्छ दिखाई देता है।[५५] धर्म का आचरण करो। सत्य मार्ग पर रहने से अवनति कदापि नही होती।[५६] लक्ष्मी भरे हुए को ही भरती है और निर्धन की आखो के

सामने भी नही आती।[५७] बाहरी शिष्टाचार करने वाले मित्र दूसरे होते है और सच्चे मित्र दूसरे। चिकनाहट समान रहने पर भी तेल, तेल है और घी-घी है। इस जन्म या पूर्व जन्म के कृत स्वय के ही अच्छे बुरे कर्मो के प्रभाव से सुरो और असुरो सहित ससार कर्मानुसार भोगो का भोग करता है।[५८] इसके अतिरिक्त भी अनेकश सूक्तिकथन भरे पडे है।

प्रकृति मनुष्य की सवेदनशीलता का स्निग्धभावोद्रेक, सन्ताप, समरसता आदि मे सतत् सहायिका होती है, वह उसके अर्न्तमन की स्थिति -परिवेशगत तादात्मयता- सग सश्लिष्ट होकर उसके भावो को भी उदीप्त करती है। मनुष्य और प्रकृति के तादात्म्य स्थिति का कवि सोमदेव ने सूक्ष्मांकन करने मे सफलता प्राप्त की है। नृप विक्रमादित्य, मलयवती के अनुराग मे विह्वल चित्रकार द्वारा चित्र-लिखित उसके नगर मलयपुर (मलयद्वीप) को खोजने के लिए अपने सेवको की नियुक्नि करता है। स्वय राजकुमारी के अनुराग मे अपने हृदय को धीरज देना चाहता है, परन्तु प्रकृति इसके विपरीत उसके उद्वेग को अभिवर्द्धित कर देती है। ग्रीष्म का अवतरण हो पाता है-इसी समय ग्रीष्म ऋतु के वन मे बेलाके फूलो से पवन सुरभित हो उठा, गुलाब के सुमन विकसित हो गये और पथिक वृक्षो की छॉव मे विश्रान्ति ग्रहण करने लगे।[५९] कवि ने यहा एक ही संदर्भ मे ग्रीष्म, प्रावृड् और शरद् को अवतरित कराकर नृप विक्रमादित्य के अनुरागासक्त हृदय को अरोहावरोहित गति मे आन्दोलित

कर देता है- उसी समय पावस रूपी मत्तगज आ पहुँचा जो मेघ की तरह श्यामलवर्ण था। गम्भीर घोष पूर्ण गर्जना कर रहा था। केतकी पुष्परुप उसके धवलदन्त चमक रहे थे। ऐसे वातावरण मे नृप का वियोग-रूप सन्ताप दावानल अभिवर्द्धित हो गया। जैसे पुरवा वायु-प्रभाव से वह उद्दीप्त हो गया हो। बिजली की दीप्ति के कारण दु खदायिनी पावस काल तो शनै शनै व्यतीत हो गया। परन्तु नृप विक्रमादित्य का वियोगजनित ज्वालामुखरूपीकामज्वर शान्त न हुआ,कारण तत्पश्चात् ही विकसित कमल-मुखवाली एव बास के पुष्पो से हास विखेरती हुयी, कल हसो के मधुर कूजन द्वारा सदेश-प्रसारित करने लगी। प्रवासीजन (अपने घर की ओर जाने वाले मार्ग की ओर अग्रसर हो। दूरस्थ स्थित प्रियजनो के लिए प्रेमसन्देश दिये जाये तथा ऐसे जनो का मधु-मधुर सम्मिलन हो।[६०] ऐसे नैसर्गिक चित्रण सम्प्रक्त काव्य रस की सृष्टि से पाठक अनायास ही आनन्दित हो उठता है।

'कथा सरित्सागर' गुणाढ्य रचित 'वृहत्कथा' का रूपान्तर होने के कारण अद्यावधि अप्राप्त मूल कथा के ही रूप मे स्वीकार्य ग्रन्थ है। वृहत्कथा का सस्कृत रूपान्तर यह कथासरित्सगार ही संस्कृत कथा-रचना-साहित्य के लिए अभिप्रेरक रुप से जीवन सदृश है। कुवलममालाकहा के प्रणेता का उद्घोष है- गुणाढ्य ब्रह्म है, तथा सभी कलाओ एवं गुणो का निकर वृहत्कथा साक्षात् सरस्वती सदृश है। कवि जनो को इससे काव्य रचना की शिक्षा मिलती है।[६१] धनपाल का कथन है- वृहत्कथा

समुद्र है, उससे एक बूँद लेकर रचित अन्य कथाग्रन्थ उसके सामने कथा-सदृश प्रतीत होते है।[६२] वृहत्कथा का ही सस्कृत रूपान्तर है कथासरित्सागर। अत कथासरित्सागर को विश्वकथा धारा की सज्ञा से अभिहित करना अनुचित नही होगा। इसी प्रवहमानधारा मे उच्छरित बूदो से सचयरूप विश्वकथा साहित्य के विविध स्रोत उद्गमित हुए। न केवल भारत के कथा रचनाकार अपितु विश्व के कथालेखको की प्रेरणा भूमि भी इसी की कथाएँ है। सस्कृत साहित्य का कथा रत्न 'कादम्बरी' काव्य का मूल यही है। महाकवि बाण ने बीज रूप मे कथा ग्रहण कर उसे पल्लवित कर कल्पना-विस्तार दिया। कादम्बरी के कथापात्र यही कथासरित्सागर मे है, नामान्तर से वाणद्वारा कथित कथा मे कथा रस वाही बने है। इसमे का पात्र[६३] शुक, वैशमपायन (कादम्बरी मे) सोम प्रभ (कादम्बरी मे चन्दापीड)[६४] प्रभाकर शुकनाश (कादम्बरी मे)[६५] आशुश्रवा, इन्दायुध (कादम्बरी)[६६] मनोरथ प्रभा, महाश्वेता (कादम्बरी मे)[६७] रश्मिमान, पुण्डरीक (कादम्बरी मे)[६८] मकरन्दिका, (कादम्बरी की नायिका) है[६९] सहस्त्ररजनीचरित (अरवेयिन नाइट्स) मे 'कथासरित्सागर' मे संग्रहीत 'उपक्रोशा की कथाएँ, जैसी अनेक कथाएँ किञ्चित् परिवर्तन के साथ काव्य मे संप्राप्त होती है।[७०] यही नही यदि पूरी नही तो अनेक कथाओ मे परिवेश और पात्रो को ग्रहीत किया गया है- राजकन्याओ एवं घोडे का वर्णन।[७१] सिंदबाद जहाजी की कथा मे तीन फकीर और बगदाद की तीन तरुणियो की कथा मे, तीसरे फकीर की कथा, और

उसमे चर्चित पक्षी का साम्य।[७२] शहरयार के अन्त पुर मे सभी स्त्रीवेशधारी पुरुषो की सयोजन-का मूल यही है।[७३] श्रीहर्ष के प्रसिद्ध नाटक नागानन्द का आधार भूत कथानक, यही जीमूतवाहन की कथा है- कथासरि०/लम्बक४/तरग २/१।

सुप्रसिद्ध 'वेतालपचीसी' कथासरित्सागर मे एक सुसंघटित कथागुच्छ के रूप मे समायोजित है (लम्बक १२/तरग ८-३२ पर्यन्त)। पंचतंत्र की विभिन्न कथाओ के कथानक मूलत इसी ग्रन्थ मे सप्राप्त है, हां किसी का प्रारम्भिक अश भिन्न है तो किसी मे पात्र नामान्तरित है। उदाहरणार्थ-संजीवक बैल और पिंगलक सिह[७४] सिह और शशकी कथा।[७५] कौआ, कहुआ, मृग और चूहे की कथा[७६] चतुर्दन्त नामक एक हाथी और खरगोशो की कथा।[७७] इसी प्रकार अन्य बहुत सी पचतत्रीय कथाओ का मूल कथासरित्सागर मे ही समाविष्ट प्राप्त होता है।[७८] लम्बक प्रथम/तरंग तृतीय/ मे संगृहीत कथा, राजा ब्रहमदत्त की कथा के समान ही कथा सहस्त्ररजनी चरित (अरेवियन नाइट्स) मे प्राप्त है- जहॉ शाहजादा मुहम्मद तथा परीवान की कहानी मे ऐसा प्रसग आता है, कि तीन शहजादे नूरनिहार से विवाह करने के लिए ऐसी ही तीन चीजे लाये थे। निर्णयार्थ तीन तीर फेके गये। यहॉ कथासरित्सागर के आख्यान मे- इन वस्तुओ की प्राप्ति के लिए युद्ध करना उचित नही,दौडने मे जो अधिक बलवान् प्रतीत हो, वह इन वस्तुओ को ले ले।[७९] निश्चयानुसार दोनो मूर्ख असुर पुत्र दौड पडे और पुत्रक उस छडी एवं पात्र को लेकर खडाऊ पहिनकर

आकाश मे उड गया। दोनो मूर्ख बन गये।[८०] सस्कृत कवि विशाखदत्त ने भी महान ग्रन्थ कथासरित्सागर से सूत्र ग्रहण कर महान नाटक 'मुद्राराक्षस' की रचना की।[८१] कथासरित्सागर मे समाविष्ट कील उखाडने वाले वानर की कथा' पर ही आश्रित आख्यान पचतत्र मे भी है।[८२]

निष्कर्षत कथासरित्सागर कथाकाव्य ही नही, अपितु काव्य की ऐसी अनुपम रचना है, जहॉ भारतीय काव्याचार्यो द्वारा निरुपित काव्य-कोटि की सम्यक् संनिहिति सदर्शित है। प्रत्येक लम्बक ही नही एक-एक तरग और कथाएं पूर्णत सघटित एव सयोजित है। प्रबन्धात्मकता कथमपि विशृंखलित नही। दशम लम्बक/तृतीय तरग/की प्रबन्धात्मकता ने ही महाकवि बाणभट्ट को कादम्बरी-सदृश उत्कृष्टतम् कथा काव्य की रचना हेतु उत्प्रेरित किया था। काव्यलक्षणानुसार प्रत्येक लम्बक का प्रारम्भ मलाचरण से और अन्त प्राय छन्द परिवर्तन से होता है। छन्द रचना मे तो कवि सिद्धहस्त है। अलड्कारो की छटा भी मनोरम है। नैसर्गिक वर्णन मे कवि सूक्ष्म दृष्टि सम्पन्न है। एव मानव मन की परख मे भी कवि उत्कृष्ट है। ऐसे स्थल प्राय विक्रमादित्य के वियोगावस्था मे संदर्भित होते है। प्राय उपमालड्कार बहुतायत से अवतरित है- यदि सूर्य उदयाचल के साथ आकाश मे गमन करे तो हाथी पर बैठे हुए राजा उदयन की उपमा उससे दी जा सकेगी। ऐसी अदभुतोपमा के उदाहरण साहित्य मे नगण्य है।[८३]

अन्तत यह कहना असगत न होगा कि - 'वृहत्कथा (सस्कृत रूपान्तर कथासरित्सागर) सस्कृत साहित्य रचना ससार मे रामायण और महाभारत के समान ही उपजीव्य कृति है। इस कृति मे हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक भारतवर्ष की एक रूपता देखने को मिलती है। इस एकरूपता का प्रबल रूप शिव-पार्वती सवाद मे द्रष्टव्य है। इसके अतिरिक्त देव, दानव, असुर, विद्याधर-गन्धर्व, सभी जातियो का जो विभिन्न द्वीपो या पर्वतभूमियो के निवासी है, उनका सुरुचिपूर्ण वर्णन कवि ने अपनी प्रीतिकरी लेखनी से किया है। इस प्रकार महाकवि सोमदेव ने न केवल भारत अपितु विश्व एकता की कामना करते हुए अपने ग्रन्थ प्रणयन मे लोकोत्तर सुख एवं समृद्धि की कामना की है।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

१ प्रणम्य वाच नि शेषपदार्थोद्योतदीपकिाम् ।
बृहत्कथाया सारस्य सग्रह रचयाम्यहम् ॥

कथासरित्सागर/लम्बक १/तरग १/३

२ तथैव च गुणाढ्येन पैशाच्या भाषया तया।
निबद्धा सप्तभिर्वर्षैर्ग्रन्थलक्षाणि सप्त स॥

मैता विद्याधरा हार्षुरिति तामात्मशोणितै।
अटव्या मष्यभावाच्च लिलेख स महाकवि॥

इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक १/तरग ८/२-३ तथा ३२-३४

३ इद गुरुगिरीन्द्रजाप्रणयमन्दरान्दोलना-
त्पुरा किल कथामृत हरमुखाम्बुधेरुद्गतम् ।
प्रसह्य सरयन्ति ये विगतविघ्नलब्धर्द्धयो
धुर दधति वैबुधी भुवि भवप्रसादेन ते॥

- लम्बक/२/पृष्ठ ११८

४ यथामूल तथैवैतन्न मनागप्यतिक्रम।
ग्रन्थविस्तरसक्षेपमात्र भाषा च भिद्यते॥

औचित्यान्वयरक्षा च यथाशक्ति विधीयते।
कथारसाविघातेन काव्याशस्य च योजना॥

वैदग्ध्यख्यातिलोभाय मम नैवायमुद्यम।
किन्तु नानाकथा-जाल-मृति-सौकर्य-सिद्धये॥

कथासरित्सागर/प्रथम लम्बक/ प्रस्तावना/१०-१२

५ निष्कारण निषेधोऽद्य ममापीति कुतूहलात्।
अलक्षितो योगशक्त्या प्रविवेश स तत्क्षणात्॥

प्रविष्ट श्रुतवान् सर्व वर्ण्यमान पिनाकिना।
विद्याधराणा सप्तानामपूर्व चरितादभुतम्॥

श्रुत्वाथ गत्वा भार्यायै जयायै सोऽप्यवर्णयत्।
विद्याधराणा सप्तानामपूर्व चरितादभुतम्॥

सापि तद्विद्यायाविष्टा गत्वा गिरिसुताग्रत ।
जगौ जया प्रतीहारी स्त्रीषु वाक्सयम कुत ।।

ततश्चुकोप गिरिजा नापूर्व वर्णित त्वया।
जानाति हि जयाप्येतदिति चेश्वरमभ्यधात्।।

श्रुत्वेत्यानाययद् देवी पुष्पदन्तमिति क्रुधा।
मर्त्यो भवाविनीतेति विह्वल त शशाप सा।।

माल्यवन्त च विज्ञप्ति कुर्वाण तत्कृते गणम्।।
विध्याव्या कुबेरस्य शापात्प्राप्त पिशाचताम्।

सुप्रतीकाभिधो यक्ष काणभूत्याख्यया स्थित ।।

त दृष्ट्वा सस्मरन् जाति यदा तस्मै कथामिमाम्।
पुष्पदन्त। प्रवक्तासि तदा शापाद् विमोक्ष्यसे।।

काणभूते कथा ता तु यदा श्रोष्यसि माल्यवान् ।
काणभूतौ तदा मुक्ते कथा प्रखयाप्य मोक्ष्यसे।।

इत्युक्त्वा शैलतनया व्यरमत्तौ च तत्क्षणात्।
विद्युत्पुञ्जाविव गणौ दृष्टनष्टौ बभूवतु ।।

कथासरित्सागर/प्रथम लम्बक/ तरग १/५०-५४, ५६-५७ और ५९-६२

६ कृष्णामाचारी हिस्ट्री आफ क्लासिकल सस्कृत लिट्रेचर/ पृष्ठ ४१४-१५।

७ आचार्य जयशङ्कर त्रिपाठी सस्कृत साहित्य रचना का इतिहास/ पृष्ठ ४३१-३२।

८ दि ओसन आफ स्टोरी/ जिल्द १ प्राक्कथन आर० सी० टेम्पुल/ पृष्ठ १२

९ कथासरित्सागर/ लम्बक १/तरग ३/श्लोक ७६-७८

१० Turning to the work it self exetution
On the otherhand of the Labyrinth
— Mr Tawncy's The Ocean of the Stories Vol I
[I Preaface by N N Penzer] Page 10

११ तस्या तदैव गिरिशार्चन होमकर्म नाना प्रदान विधिबद्ध सग्रन्थमाया ।
शास्त्रेषु नित्यापि निहित श्रवणा श्रमाया देव्या क्षण किमपि चिन्ताविनोदवेर्तो ।।

नाना कथामृतमस्य वृहत्कथाया सारस्य सज्जन मनोम्बुधि पूर्णचन्द्र
सोमने विप्रवर पूरी भ्रठनभिराम रामत्यजेन विहित श्वक खङ्ग होडपम्।।

प्रविततततरगमङ्गि कथासरित्सागरो विरचितोडपम् ।
सोमेनामलमतिना हृदयानन्दाय भवतु सताम्।।

- ग्रन्थकर्तु प्रशस्ति/ ११-१३,

१२ आद्यमत्र कथापीठ कथामुखमत परम् ।
ततो लावानको नाम तृतीयो लम्बको भवेत् ।।

नरवाहनदत्तस्य जनन च तत परम् ।
स्याच्चतुर्दारिकाख्यश्च ततो मदनमञ्चुका।।

ततो रत्नप्रभा नाम लम्बक सप्तमो भवेत् ।
सूर्यप्रभाभिधानश्च लम्बक स्यादथाष्टम् ।।

अलङ्कारवती चाथ तत शक्तियशा भवेत् ।
वेलालम्बकसञ्ज्ञश्च भवेदेकादशस्त ।।

शशाङ्कवत्यपि तथा तत स्यान्मदिरावती।
महाभिषेकानुगतस्तत स्यात्पञ्चलम्बक ।।

तत सुरतमञ्जर्यप्यथ पद्मावती भवेत् ।
ततो विशमशीलाख्यो लम्बकोऽष्टादशो भवेत् ।।

आदि-आदि/कथासरित्सागर/प्रथम लम्बक/ प्रस्तावना/३-११

13 Soma deva has to the readers
- Hisotryof Sanskrit Literature Kieth/Page 282-83
कथासरित्सागर भूमिका वाशुदेवशरण अग्रवाल/पृष्ठ २४।

१४ We have been lost
– Hisotryof Sanskrit Literature Kieth/Page 281-82

१५ कथासरित्सागर भूमिका वासुदेवशरण अग्रवाल/पृष्ठ २४-२५

१६ ग्राम्य कश्चित्खनन्भूमि प्रापालङ्करण महत् ।।

रात्रौ राजकुलाच्चौरैर्नीत्वा तत्र निवेशितम् ।
यद्गृहीत्वा स तत्रैव भार्या तेन व्यभूषयत्।।

बबन्ध मेखला मूर्ध्नि हार च जघनस्थले।
नूपुरौ करयोस्तस्या कर्णयोरपि कङ्कणौ।।

हसद्भि ख्यापित लोकैर्बुद्ध्वा राजा जहार तत् ।
तस्मात् स्वाभरण त तु पशुप्राय मुमोच स ।।

कथासरित्सागर/दशम् लम्बक/तरग ५/२४-२७

१७ तत्रैको राजपुत्रोऽभूद्ग्रामभुग्राजसेवक ।।

शूरसेनाभिधानस्य तस्य मालवदेशजा।
अनुरूपा सुषेणेति भार्याभूज्जीविताधिका।।

स जातु भूपेनाहूत कटक गन्तुमुद्यत ।
शूरसेनोऽनुरागिण्या जगदे भार्यया तया।।

आर्यपुत्र न मुक्त्वा मामेकका गन्तुमर्हसि।
नहि शक्ष्याम्यह स्थातु क्षणमत्र त्वया बिना।। इत्यादि/कथा०/षोड्श लम्बक/तरग १/२४-४५

१८ सुखस्पर्शो मृदुर्वातो दक्षिणो विमला दिश ।
पुष्पितानि सुगन्धीनि काननानि पदे पदे।।

मधुरा कोकिलालापा पानलीलासुखानि च।
सुख किं न मधौ प्रेयोवियोगस्त्वत्र दु सह ।।

अन्यस्यास्ता तिरश्चामप्यत्र कष्टा वियोगिता।
तथा च विरहक्लान्तामेता पश्यत कोकिलाम्।।

वही/वही/१९-२१

१९ स कदाचिच्छरत्काले सोष्मण्युन्मदवारणे।
राजहसपरीवारे सोत्सवानन्दितप्रजे।।
आत्मतुल्यगुणे रन्तु चित्रप्रासादमाविशत् ।
आकृष्टकमलामोदवहन्मारुतशीलतम् ।।

कथासरित्सागर/नवम् लम्बक/तरग ५/३३-३४

२० शस्त्रक्षतगजाश्वौघरक्तधारावपूरिता।
वीरकायवहद्ग्राहा निर्युयु शोणितापगा।।
नृत्यता तरता रक्ते नदता चोत्सवाय स।
शूराणा फेरवाणा च भूताना चाभवद्रण।।

कथासरित्सागर/लम्बक ८/तरग ४/५२-५३

२१ तैरावृते नभोभागे शस्त्रसम्पातदारुण।
प्रावर्त्तत महानाद सग्राम सेनयोस्तयो
दिक्चक्रे बाणजालेन घनेनाच्छादिते तदा।
अन्योन्यशरसङ्घर्षजातानलतडिल्लते।।

कथासरित्सागर/लम्बक ८/तरग ४/५०-५१

२२ सैन्यरेणुघनाकीर्ण शस्त्रज्वालातडिल्लतम् ।
पतद्रक्ताम्बु तदभूद्घोर समरदुर्दिनम् ।।
शोणितासवसम्पूर्ण कीर्णशत्रुशिरोबलिम् ।
चक्रुर्भूतमहायागमिव चित्राङ्गदादय

कथासरित्सागर/लम्बक १४/तरग ३/१०२-१०३

२३ व्याप्ताम्बरोञ्जननिभश्च विनिह्नुतार्को विद्युल्लतातरलदीप्रविलोचनार्चि।
दन्तप्रभाविततपङ्क्तिपतद्बलाको गर्जन्महाप्रलयमेघ इव प्रचण्ड।।

कथासरित्सागर/लम्बक १४/तरग २/१८२

२४ आरूढ प्रोच्छ्रितच्छत्र प्रोत्तुङ्गजयकुञ्जरम् ।
गिरिं प्रफुल्लैकतरु मृदेन्द्र इव दुर्मद।।
प्राप्तया सिद्धिदूत्येव शरदा तत्तसमद।
दर्शयन्त्यातिसुगम मार्ग स्वल्पाम्बुनिम्नगम्।।इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक३/तरग५/३-६८

२५ शरत्पाण्डुपयोदाङ्का सधातुरसनिर्झरा।
यात्रानुप्रेषिता भीतैरात्मजा इव भूधरै।।
नैवैष राजा सहते परेषा प्रसृत मह।
इतीव तच्चमूरेणुरर्कतेजस्तिरोदधे।।

- कथासरित्सागर/लम्बक ३/तरग ५/६९-७०

२६ अन्तरा च मिलद् व्याध पलाशश्यामकञ्चुक।
स सबाणासनो भेजे स्वोपम मृगकाननम्।।

जघान पङ्ककलुषान्वराहनिवहान्शरै ।
तिमिरौघानविरलै करैरिव मरीचिमान्।।

इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक ४/तरग १/११-१४

२७ सच्चक्रवर्त्तिपानीय प्रविशद्वाहिनीशत ।
यदाभोगोऽब्धिगम्भीर सपक्षक्ष्माभृदाश्रित ।।
तस्या विक्रमसिहाख्यो बभूवान्वर्थयाख्यया।
राजा वैरिमृगा यस्य नैवासन्सम्मुखा क्वचित्।।
स च निष्प्रतिपक्षत्वादनाप्तसमरोत्वस ।
अस्त्रेषु बाहुवीर्ये च सवाज्ञोऽन्तरतप्यत।।

कथासरित्सागर/लम्बक ६/तरग १/१३६-१३९

२८ तत्र भिन्नेभकुम्भाना नखोदरपरिच्यूतै ।
सिहाना हतसुप्तानामुप्तबीजेव मौक्तिकै ।।
व्याघ्राणा भल्ललूनाना द्रष्ट्राभि साङ्करेव च।
सपल्लवेव क्षतजैर्हरिणाना परिस्त्रुतै
निमग्नकङ्कपत्राङ्कै क्रोडै स्तबकितेव च।
शरीरै शरभाणा च पतितै फलितेव च।।
बभूव तस्य निपतद्घनशब्दशिलीमुखा।
प्रीतये मृदयालीलालता शोभितकानना।।

कथासरित्सागर/लम्बक ७/तरग ८/३-६

२९ वरचारणनर्त्तकीसमूहैर्विविधदिगन्तसमागतैस्तदात्र।
परित स्तवनृत्तगीतवाद्यैर्बुबुधे तन्मय एव जीवलोक ।।
वातोद्धूतपताकाबाहुलता चोत्सवेऽत्र कौशाम्बी।
सापि ननर्त्तेव पुरी पौरस्त्रीरचितमण्डनाभरणा।।

कथासरित्सागर/लम्बक ६/तरग ८/२६२-२६३

३० ततस्तद्गतधीस्तस्मिन्नुद्याने व्यहरद्दिनम्
नरवाहनदत्तस्ता पश्यन् मदनमञ्चुकाम्।।
उत्फुल्लपद्मवदना दलत्कुवलयेक्षणाम्।
बन्धूककमनीयौष्ठी मन्दारस्तबकस्तनीम्।।
शिरीष सुकुमाराङ्गी पचपुष्पमयीमिव।
एकामेव जगज्जैत्री स्मरेण विहितामिषुम् ।।

कथासरित्सागर/लम्बक ६/तरग ८/२३०-२३२

३१ तासा मध्ये च दीप्ताना ददर्शैका स कन्यकाम् ।
ताराणामिव शीताशुलेखा लोचनहारिणीम्।। - इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरग ३/३-६

३२ मुखै पद्मानि नयनैरुत्पलानि पयोधरै ।
रथाङ्गनाम्ना युग्मानि नितम्बै पुलिनस्थली ।।

इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरग ५/११६-११७

३३ तत्रापश्यह ता च चन्दनार्द्रविलेपनाम्।
मृणालहरा बिसिनीपत्रशय्याविवर्त्तिनीम्।।

इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरग ५/६२-६५

३४ हिममुक्तेन्दुसश्रीक दर्शनोद्दीपितस्मरम् ।
मधुमासमिवालोकक्रीडालङ्कृतकाननम् ।।

आदि-आदि/कथासरित्सागर/लम्बक १२/तरग २२/४०-४२

३५ अङ्गारास्तुहिने न्यस्ता कुकूलाग्निश्च चन्दने।
मारुते दाववह्निश्च स्मरेण मम निश्चितम्।।

आदि-आदि/कथासरित्सागर/लम्बक १७/तरग ४/९२-९३

३६ याति काले च जात्वत्र हत्वा हेमन्तहस्तिनम् ।
फुल्लकुन्दलतादन्त मथिताम्बुजिनीवनम्।।

आदि-आदि/कथासरित्सागर/लम्बक १२/तरग २४/२०-२१

३७ कथासरित्सागर तथा भारतीय सस्कृति डॉ० एस० एन० प्रसाद/पृष्ठ २०७

३८ श्रयूता नापितस्यार्थी मुग्धोवत्र च पुमानयम्।
कर्णाट कोऽपि भूप स्व रणे शौर्यादतोषयत्।।

आदि-आदि/कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरग ५/३२३-३२९

३९ हिमवद्दक्षिणो देश कश्मीराख्योऽस्ति य विधि।
स्वर्गकौतूहल कर्त्तु मर्त्यानामिव निर्ममे।।

इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरग ७/५३-५५

४० जयेदात्मानमेवादौ विजयायान्यविद्विषाम्।
अजितात्मा हि विवशो वशी कुर्यात्कथ परम्।।

इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक ६/तरग ८/१९२-१९८

विशेष इसी प्रकार परीक्षाम् विषयक उल्लेख कामन्द/अध्याय ४/ ३५ मे है। याज्ञवल्लय स्मृति/ अध्याय १/३३८

४१ स वणिज्यावशाद् गच्छन् सुवर्णद्वीपमेकदा।
आरुरोह प्रवहण तट प्राप्य महाम्बुधे ।।

इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरग ४/१००-१०४

४२ गता कटाहद्वीप तु तद्युक्त स इतोऽधुना।।
तच्छ्रुत्वा स ततो विप्रो वणिजा दानवर्मणा।
पोतेन गच्छता साक कटाहद्वीपमभ्यगात् ।।

इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरग ६/५९-६३

४३ अस्ति मध्ये महाम्भोधे श्रीमद् द्वीपवर महत्।।

इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरग ४/१४-१६

४४ समुद्रमुल्लघ्य गतस्तदीयस्तेजो नृप कटाहे।। - जानकीहरण/सर्ग १/१७

४५ दृष्ट मया तन्मलयपुर नाम महापुरम् ।
भ्रमता भुवमुत्तीर्य वारिधि द्वीपमध्यगम् ।।

इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक १८/तरग ३/८९ तथा ११०-१११

४६ मुग्धोऽभूत् पुरुष कश्चिद् भृत्य शिष्टस्य कस्यचित्।।
स तेन स्वामिना तैलमानेतु वणिजोऽन्तिकम्।
प्रेषिता जातु तत्तस्मात् पात्रे तैलमुदपाददे।। इत्यादि/कथा०/लम्बक१०/तरग५/१८८-१९२

४७ मूर्ख कश्चिदभूद्राजा कृपण कोषवानपि।
एकदा जगदुश्चैव मन्त्रिणस्त हितैषिण ।।
इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरग ५/२१५-२१८

४८ इह मे मूषक शत्रुरुत्पन्नोऽथ सदैव य।
अपि दूरस्थमुत्प्लुप्य नयत्यन्नमितो मम।।
इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरग ५/९५-९७

४९ चित्र धातैव धीराणामारब्धोद्दामकर्मणाम्।
परितुष्येव सामग्री घटयत्युपयोगिनीम्।। कथासरित्सागर/लम्बक ३/तरग ४/३५९

५० वास्तुकाश्चन सद्वशजाता मुक्ता इवाङ्गना।
या सुवृत्ताच्छहृदया यान्ति भूषणता भुवि।। कथासरित्सागर/लम्बक १/तरग ४/१८

५१ सापि सेहे तदत्युग्रराक्षसासाधिरोहणम्।
अनुराग-परायत्ता कुर्वते कि न योषित ।। कथासरित्सागर/लम्बक ३/तरग ४/३८१

५२ धनापहारमेवास्य वध मेने च पाप्मन।
कदर्याणा पुरे प्राणा प्रायेण ह्यर्थसञ्चया ।। कथासरित्सागर/लम्बक ३/तरग ४/३८७

५३ वर हि मानिनो मृत्युर्न दैन्य स्वजनाग्रत ।। कथासरित्सागर/लम्बक ३/तरग ५/२२

५४ धनहीनेन देहोऽपि हार्यते स्त्रीषु का कथा।
निसर्गनियत वासा वद्युितामिव चापलम्।। कथासरित्सागर/लम्बक ३/तरग ५/२८

५५ अगाधमन्त सविष स्वच्छशईत बहि सर।
रागिन् स्त्रीचित्तमेतादृगित्यर्केण निदर्शनम् ।। कथासरित्सागर/लम्बक ६/तरग ३/८५

५६ धर्मेण चरता सत्ये नास्त्यनभ्युदय ।। कथासरित्सागर/लम्बक ८/तरग २/१५९

५७ 'पुरयति पूर्णमेषा तरङ्गणीसहति समुद्रमिव।
लक्ष्मीरधनस्य पुनर्लोचनमार्गेऽपि नायति'। कथासरित्सागर/लम्बक९/तरग ३/३२

५८ इत्यैहिकेन च पुराविहितेन चापि
स्वेनैव कर्मविभवेन शुभाशुभेन।
शश्वद् भवेत्तदनुरूपविचित्रभोग
सर्वो हि नाम ससुरासुर एष सर्ग ।। कथासरित्सागर/लम्बक६/तरग १/२०९

५९ अत्रान्तरे ग्रीष्मवन मल्लिकामोदिमारुतम् ।
छायाषिण्णपथिक दृष्ट्वा पुष्पितपाटलम् ।। कथासरित्सागर/लम्बक१८/तरग ३/६५

६० आजगामाम्बुदश्यामो गुरुगम्भीरगर्जित।
केतकोद् दामदशन प्रावृट्कालमदद्विप ।। आदि-आदि/कथासरित्सागर/लम्बक१८/तरग ३/६६-७२

६१ सयलकलागमणिलया सिक्खावियकइयणस्स मुहयदा।
कमलासणो गुणड्ढो सरस्सई जस्स बड्डकहा।। (कुवलयमाला, पृ० ३, पक्ति २२)

६२ सत्य वृहत्कथाम्भोधेर्बिन्दुमादाय सस्कृता।
तेनेतरकथान्था प्रतिभान्ति तदग्रत ।। तिलकमञ्जरी धनपाल

६३ तत स बाष्पमुत्सृज्य वदति स्म शुक शनै। कथासरित्सागर/लम्बक१०/तरग ३/३६

६४ तेन सोमप्रभ नाम्ना त चक्रे स्वसुत नृप। कथासरित्सागर/लम्बक१०/तरग ३/६१

६५ प्रभाकराभिधानस्य तनय निजमन्त्रिण। कथासरित्सागर/लम्बक१०/तरग ३/६४

६६ तेन चाशुश्रवा नाम शक्रेणोच्चै श्रव सुत ।। कथासरित्सागर/लम्बक१०/तरग ३/६६

६७ तस्य हेमप्रभादेव्या राज्ञ पुत्राधिकप्रियाम् ।
मनोरथप्रभा नाम विद्धि मा तनयामिमाम् ।। कथासरित्सागर/लम्बक१०/तरग ३/८७

६८ रश्मिमानिति नाम्ना च कृत्वा सवर्ध्य च क्रमात्।
उपनीय सम सर्वा विद्या स्नेहादशिक्षयत्।। कथासरित्सागर/लम्बक१०/तरग ३/९८

६९ सिहविक्रम इत्यस्ति नाम्ना विद्याधरेश्वर।
तस्यानन्यसमा चास्ति तनया मकरन्दिका।। कथासरित्सागर/लम्बक१०/तरग ३/११७

७० उपकोशा हि मे श्रेय काक्षन्ती निजमन्दिरे।
अतिष्ठत्प्रत्यह स्नान्ती गङ्गया नियतव्रता।।
कथासरित्सागर/लम्बक१/तरग ४/२८ (किचिद् परिवर्तन से सहस्त्ररजनी चरित मे)

७१ कथासरित्सागर/लम्बक ५/तरग /३

७२ तत्र दृष्ट्वा च तच्चर्म निपत्यामिषशङ्कया।
हृत्वाब्धे पारमनयत्पक्षी गरुडवशज ।। कथासरित्सागर/लम्बक२/तरग ४/११३

७३ सर्वत्रान्त पुरे ह्यत्र स्त्रीरूपा पुरुषा स्थिता।
हन्यतेऽनपराधस्तु विप्र त्यिहसत्तिमि ।। कथासरित्सागर/लम्बक १/तरग ४/२४

७४ पचतत्र के कथा का प्रारम्भ- (मित्रभेद)
वर्धमानो महानस्नेह विनाशिता

७५ पचतत्र के कथा का प्रारम्भ-
बुद्धिर्यस्य बलमतस्य, निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ।
पश्य सिहौमदोन्मत शशकेन निपातित ।। इसी का अर्थ का बोधक -
एव प्रज्ञैव परम वल न तु पराक्रम ।।
यतप्रभावेण निहत शशकेनापिकेसरि।। कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरग ४/१०७

तृतीय अध्याय

कथासरित्सागर मे प्रतिबिम्बित सामाजिक सगठन

- वर्ण एव जाति
- आश्रम
- पुरुषार्थ
- सस्कार

कथासरित्सागर में प्रतिबिम्बित सामाजिक संगठन

भारतीय संस्कृति तथा सामाजिक सगठन सनातन है। सामाजिक सगठन का मूलाधार वर्ण-व्यवस्था, आश्रम-व्यवस्था एव जीवनोन्नयन की प्रतिष्ठा हेतु पुरुषार्थ चतुष्ट्य की अवधारणा है। इसी का परिणाम है कि अनेकश सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सक्रान्तियो, वैदेशिक आक्रान्तक झझावतो को झेलकर भी सामाजिक सस्कृति एव सास्कृतिक समाज की उदात्त तथा शिवमय सुधाधार अद्यावधि अविच्छन्नत. प्रवह्मान है, जो जैन-बौद्ध सम्प्रदाय के विरोधी सिद्धान्तो से भी विशृंखलित न हो सका। सामाजिक सगठन के मूलाधार वर्ण-विभाजन, जीवन के चार आश्रम और जीवन को सार्थक परिणति के आधार पुरुषार्थ चतुष्ट्य का प्रतिपादन प्राचीनकाल से ही होता आया है। इस व्यवस्था की सनातन-प्रतिष्ठा के प्रमाण हमे विदेशी यात्रियो के विवरणो मे भी उपलब्ध होते है। वर्ण व्यवस्था-संपोषित इस सामाजिक संगठन की दैवी प्रतिष्ठा रही है। अत. विरोधो का कथमपि प्रभाव नही पडा। यदि कभी

किञ्चित् शिथिलता आयी भी तो वह पुन सुदृढ से सुदृढतर होती गयी। इस वर्ण व्यवस्था के चिर-स्थायित्व का प्रमुख आधार है, सार्वजनिक सामजस्य एव लोक कल्याण की भावना। इस वर्ण व्यवस्था के चिर स्थायी होने मे धार्मिक विचारधारा का भी योगदान रहा है - भारतीय सदैव धर्म प्राण रहे है। उनके लिए जीवन और धर्म दो पृथक वस्तुएं नही थी। उनका जीवन, धर्म का व्यावहारिक रूप था और धर्म जीवन सग्रहीत तथ्य। दोनो का अविच्छेद्य तथा अन्योन्याश्रित सम्बंध था। दोनो एक दूसरे से ओत-प्रोत थे। इस प्रकार की भावना का परिणाम यह हुआ कि भारतीयो के समक्ष जो भी वस्तु धर्म का अग बनकर आयी, वह मान्य बन गयी, चिरस्थायी हो गयी। भारतीय परम्परा के अनुसार वर्णव्यवस्था की उत्पत्ति मानवी न होकर दैवी है। इस दैवी आधार ने कालान्तर मे इस व्यवस्था की लोकमान्यता को दृढतर किया। वर्णव्यवस्था को पाकर भारतीय समाज एक सुदृढ इकाई बन गया। उसके अन्तर्गत समाज का प्रत्येक व्यक्ति पारस्परिक अधिकार एव कर्तव्य के आधार पर एक-दूसरे से सम्बद्ध था। सबका कुछ न कुछ कर्तव्य था। उस कर्तव्य का आधार, वर्तमान और आगामी जीवन सम्बंधी स्वार्थ था। आवश्यक था कि प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारो का उपभोग करने से पूर्व अपने कर्तव्यो को भी पूर्ण करे।[१] कर्तव्य सापेक्ष एकाधिकार प्रयोग ही प्रकारान्तर से भारतीय वर्ण व्यवस्था का मुख्यतम लक्ष्य रहा। यह कर्म-विभाजन, समाज के प्रति सामूहिक दायित्व-बोध का प्रतिपादन था।

'सर्वेसन्तु सुखिन' के प्रतिपादन विस्तार ने वर्ण-व्यवस्था का रूप धरा, इसीलिए भारतीय समाज सुसंगठित हो सका। इस सुसगठित प्रक्रिया को हम चाहे तो समाजवाद की सज्ञा भी दे सकते है। यह हमारी वर्णव्यवस्था की सुचिन्तित अवधारणा है, जिससे मानव निज व्यक्ति से आगे बढकर इतर के योग-क्षेम की ओर उन्मुख बने। मनुष्य प्रकृत्या, प्रवृत्तया और वृत्या ऐसे ही कार्यकलापो मे रुचि लेता है, जिसमे उसके निज का कल्याण निहित हो अर्थात् मनुष्य स्वार्थ-तत्पर है। भारतीय समाज ऋषि परम्पराबोधी है। ऋषि विश्व कल्याण के लिए सतत् तपश्चरणरत रहता है। 'स्व' को संतप्त करके समष्टि के हितार्थ सूत्रान्वेषण मे सलग्न रहता है। तथैव हमारी वर्णव्यवस्था, मनुष्य का व्यक्ति मात्र व्यष्टि नही अपितु समष्टि का अविभाज्य अंग प्रतिपादित करने का आधार बनी। तद्नुसार मनुष्य वैयक्तिक हित मे संलग्न रहकर भी सार्वजनिक स्वरूप की ओर उन्मुख होकर लोक कल्याणभावी बना। इस वर्ण-व्यवस्था ने अत्यन्त सहज रूप से व्यष्टि एवं समष्टि के अन्योन्याश्रित सम्बंध को प्रतिष्ठित किया। वर्ण व्यवस्था ने व्यक्ति की पृथक् सत्ता को प्रतिष्ठा दी और अन्तत उसका समावेश समष्टि मे कर दिया। अनेकश जनो का एक समूह वर्णव्यवस्था के अन्तर्भूत होकर स्वयं मे एक अंग बना। यह भली भाति सुसंगठित सबल संगठन हो गया। समाज की सभी शृंखलाएं परस्पर पुष्पमाला मे गुम्फित सुमन के सदृश सूत्रबद्ध हो गयी। एक-दूसरे की पृथक् सत्ता एकीकृत होकर अत्यन्त सबल सत्ता

का रूप धारण कर लिया, इसी का परिणाम था कि शतियो के अनेकानेक घात-प्रतिघात भी इसे विशृखलित न कर सके। वर्ण-व्यवस्था ने हमारे समाज को एक बल दिया जिससे वह अनेकानेक वाह्य आक्रमणो एव आन्तरिक परिवर्तनो के समक्ष भी विशृखल न हुआ। इसका मुख्य कारण वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत हमारा कार्य-विभाजन था। चारो वर्णो के अपने अपने कार्य थे। वे दूसरे के कार्यो की चिन्ता किये बिना अपने कार्यो एव व्यवस्थायो को अग्रसर करते रहते थे।[२]

ईसापूर्व छठी शताब्दी धार्मिक उथल-पुथल का काल था, जब अनेक पथ और सम्प्रदाय विकसित हुए, और लगभग सभी ने इस सनातन सुसंगठित समाज-व्यवस्था के आधार, वर्ण व्यवस्था को नष्ट करने का प्रयास किया, किन्तु ये प्रयास निष्फल रहे।[३] प्राचीन ऋग्वेद काल से समग्र भारतीय समाज चार वर्णो के अर्न्तगत समाहित है, और वे चार वर्ण है - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एव शूद्र। यह वर्ण-व्यवस्था पर आधारित सामाजिक सगठन मानवी न होकर दैवी परम्परानुसार अवधारित, अवतरित, यह प्रतिपादित एवं प्रतिष्ठित होकर अद्यावधि प्रतिष्ठित तथा लोकादृत है। ऋग्वेद के कथनानुसार- यह समस्त दृश्यमान जगत् परम पुरुष का रूप है, जो परम पुरुष सहस्त्रशीर्ष, सस्त्रनयन, सहस्त्र चरणो वाला है और समग्र पृथिवी को व्याप्त किये हुए है। भूत, भविष्यत् सब कुछ वही पुरुष है, वही अमरता का अधिपति है। जो कुछ भी भोग्य वस्तु है अर्थात् सब उसके प्रभाव से अभिवर्धित होता है,

वह भी वही परमपुरुष है। इसी प्रकार समाज संगठन के आधारभूत चार वर्ण भी उसी के आंगिक चार रूप है- इस परम पुरुष का मुख ब्राह्मण, दोनो बाहु क्षत्रिय, जघाए वैश्य एव दोनो चरण शूद्र है, अर्थात् उस परम पुरुष के मुख से ब्राह्मण की, बाहु से क्षत्रिय, जाघ से वैश्य एव चरण से शुद्र की उत्पत्ति हुई।[४] अर्थ यह है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एव शूद्र चारो वर्ण समाज की इयत्ता, अधिसत्ता तथा समग्रता के आधार हैं जो अपने-अपने लिए नियत, विनिश्चित कार्यो- व्यवसायो को सम्पादन करते और सामाजिक अभ्युत्थान के साथ-साथ जीवन्तता के उत्तरदायी हैं। समाज एव राष्ट्र का सम्पूर्ण दायित्व इन्ही चारो वर्णो मे सन्निहित रहा है।

ब्राह्मण

ऋग्वेद का पुरुषसूक्त जहाॅ चार वर्णो का कथन करता है, वहाॅ प्रथम स्थान पर ब्राह्मण है, अर्थात् सर्वश्रेष्ठ को परम पुरुष के मुख से उद्भूत कहा। परन्तु तैत्तरीय संहिता ने साक्षात् देवता रूप प्रतिपादित किया है।[५] ब्राह्मण को विद्वान्, वेद-विद्, देवगणो[६] की निवास भूमि एवं नमस्कार्य, दिव्यवर्णी और क्षत्रिय से उच्चतर कहकर प्रथम-श्रेष्ठ प्रतिपादित किया गया है। धर्मशास्त्र के व्याख्याकारो द्वारा ब्राह्मण को सर्वगुण समन्वित समाज का सर्वाधिक सुयोग्य प्राणी कहा गया है। वेदो के अध्ययन, अध्यापन, सदाचरणरत, सत्यभाषी, अहिसंक निष्कुलष-वृत्ति धारण करने वाला

एव यम-नियमो का पालक प्रतिपादित किया गया है। महामति चाणक्य के मत मे ब्राहमण का स्वधर्म, अध्ययन-अध्यापन, यजन-याजन, दान और परिग्रह है।[७] ब्राह्मण समाज का नियन्ता स्वीकार किया गया है। मेगस्थनीज का कथन है कि ब्राह्मण दार्शनिक, यद्यपि अन्य वर्गो की अपेक्षा सख्या मे अल्प थे, तथापि समाज के सबसे अधिक आदरणीय थे। वे सभी राजकरो से मुक्त थे और अनेकानेक दानो एवं प्रतिग्रहो के अधिकारी थे।[८] महाभारत मे ब्राह्मण को सर्वप्रथम उद्‌भूत एवं अन्य वर्णो की उसके पश्चात् उत्पत्ति बताकर द्विपदो मे सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। इतना ही नही उसे पृथिवी पर देवता के तुल्य वर्णित किया गया है।[९]

ब्राह्मण देवता सम सर्वश्रेष्ठ वर्ण सम्माननीय और पूज्य रहा है, यह अकारण अथवा निराधार नही है। ब्राह्मण अकारण ही सभी वर्णो मे मूर्घन्य नही, ब्राह्मण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य वह समाजोन्नयन-निमित्त सम्पादित करता था-त्याग, सयम और साधनापूर्ण जीवनयापन मे वह स्वेच्छा से निरत रहता था। समाज के लिए अध्यापन एवं यज्ञादि सम्पादन के महत्त्वशाली दोनो कार्यो का निर्वहन वही करता रहा। प्राचीन सामाजिक व्यवस्था मे ये दोनो कार्य सर्व प्रधान रहे है ऐसे महत्त्वपूर्ण दायित्वो के सम्पादन एव निर्वहन के प्रतिसतत् और सर्वदा सक्रिय रहने के परिणामस्वरूप उसे प्रतिग्रह का अधिकार प्रदान किया गया था। ऐसा कथन आपस्तम्भ गौतम एव बौधायन सूत्रो मे समान रूप से उपलब्ध होता है।[१०]

उल्लेखनीय तथ्य यह है कि ब्राह्मण समाज मे सर्वोपरि स्थान पर प्रतिष्ठित था वह चाहे कोई भी व्यवसाय स्वीकार जीविकोपार्चन करे। शिक्षा, दीक्षा और ज्ञान का एकमात्र आस्पद यह ब्राह्मण ही प्राचीनकाल से मध्यकाल पर्यन्त माना जाता रहा। इतना ही नही पठन-पाठन के क्षेत्र से अतिरिक्त वह प्रशासनिक क्षेत्र मे भी श्रेष्ठ सहयोगी स्वीकार्य था। राजामात्य प्राय ब्राह्मण ही रहते थे धर्म एव विज्ञान के क्षेत्र मे प्रयासरत रहना उनका सर्वप्रमुख कर्तव्य था। ऐसा मत विदेशी इतिहास लेखक भी व्यक्त किये है।[११] ब्राह्मण जन्मत अनुशासन, ज्ञान और सस्कार के कारण सभी वर्णो और ससार का स्वामी है। ससार के समग्र धन-धान्य का स्वामी ब्राह्मण है। ब्राह्मण सर्वदा एवं सर्वथा देवतुल्य पूज्य है चाहे वह अधीत, विद्वान् हो अथवा अनधीत। ब्राह्मण चाहे दस वर्ष का ही क्यो न हो, किन्तु वह शतवर्षीय क्षत्रिय से भी अधिक उच्च श्रेष्ठ एवं सम्मान्य है।

ब्राह्मण को नृप न तो शारीरिक दण्ड देने का अधिकार रखता है तथा न उस पर किसी प्रकार का कर ही आरोपित कर सकते है। ब्राह्मण का धन राजा अधिग्रहीत नही कर सकता। ब्राह्मण अबध्य है, उसका वध महत्तर पाप परिगणित है। ब्रह्महत्या से बढकर, ससार मे अन्य कोई जघन्य पाप नही माना गया है। ऐसे पाप के लिए किसी प्रायश्चित का भी विधान नही है। ब्राह्मण के प्रति राजकीय दण्ड विधान की प्रक्रिया भी पक्षपातपूर्ण है। यदि कोई क्षत्रिय ब्राह्मण के प्रति दुर्वचनो

का प्रयोग करे तो उसे शत् कार्षापण से दण्डित किया जाता, परन्तु उसी के समान अपराध करने वाले ब्राह्मण के लिए मात्र पचास कार्षापण का दण्ड-विधान है। श्रोत्रिय ब्राह्मण के भरण-पोषण का दायित्व नृपति पर छोडा गया है।[१२] इतने प्रकार के जो विशेषाधिकार ब्राह्मण के लिए निर्धारित किये गये तो उसके समकक्ष ही दायित्वभार भी उसे सौपे गये। उसके लिए शासन तथा अनुशासन की भी व्यवस्था की गयी-ब्राह्मण का प्रभाव धर्म वेदाध्ययन एव अन्य समस्त धर्मो को गौण विनिश्चत किये गये। सतत् एव सदैव वेदाध्ययन कार्य मे सलग्न तथा साधनारत रहना परमधर्म है। उसके लिए ऐसे किसी भी व्यवसाय को वर्जित किया गया है जो उसके वेदाध्ययन साधना मे व्यवधान उपस्थित करे।[१३] पतजलि के अनुसार जन्मत ब्राह्मण के लिए श्रेष्ठता की कोटि होने के साथ-साथ तप एवं वेदाध्ययन मे रत होना आवश्यक है। उसका जीवन तप त्याग का है। ब्राह्मण के लिए जहॉ प्रतिग्रह का अधिकार प्रदान किया गया, वही उसे नियंत्रित भी किया गया है। उसके जीवन को त्यागमय विनिश्चित किया गया और विहित हुआ कि वह उतना ही धन संचय करे कि उसका एवं कुटुम्ब का भरण पोषण होता रहे, अधिक नही।[१४]

कालान्तर मे सामाजिक सगठन तो यथावत् रहा, किन्तु उसके नियमादि मे शैथिल्य ने प्रवेश किया, परिणामत चारो वर्णो के लिए पूर्व विहित्, अधिकार-कर्तव्यो मे अभिवृद्धि और न्यूनता आयी। तद्नुसार प्रथम एवं श्रेष्ठ वर्ण व्यवस्था

के कार्यकलाप, कृत्य, कर्म, दायित्व, धर्म, साधना भी कही दृढ अभिवर्द्धित और कही शिथिल, न्यून हुए। यद्यपि इस शैथिल्य तथा परिवर्तन का बीजारोपण इससे पूर्व ही हो चुका था। स्मृतियो, गृहसूत्रो मे भी इसके सकेत परिलक्षित होते है। कौटिल्य के मत मे राजद्रोह का अपराध करने वाला ब्राह्मण कथमपि क्षम्य नही है। ऐसे अपराधी ब्राह्मण को जलसमाधिस्थ कर देना चाहिए।[१५] वर्णो के लिए पृथक-पृथक विनिश्चित कर्म अथवा व्यवसायानुसरण का भी विधान व्यवस्थाकारो ने किया था। तद्नुसार स्वयं से निम्नवर्ण के लिए चिन्हित व्यवसाय के ही अनुसरण को सगत माना गया। उच्चतर वर्ण के व्यवसाय का अनुसरण अधर्म है। यत्र-तत्र पर वर्ण के व्यवसायानुसरण आपत्कालीन व्यवस्था स्वरूप वर्णित है। इतना ही नही अपितु, आपातकालोपरान्त विकर्म का परित्याग कर प्रायश्चित भी करणीय है, और विकर्माजित धन का भी त्याग कर देना उचित है।[१६]

व्यवस्था निर्णायको के मत मे दान लेने का अधिकार, अधीत, विद्वान् ब्राह्मण की ही है और प्रदानदाता को भी ऐसे ही पात्र को ही दान देना चाहिए, यही श्रेयस्कर है। यदि अनधीत व्यक्ति स्वर्ण, भूमि अश्व, गौ, अन्न, वस्त्रादि को दानस्वरूप ग्रहण करता है तो वह भस्मसात् हो जायेगा।[१७] आवश्यकतानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का भी धर्माचरण करने का अधिकारी रहा है- वर्णाश्रम धर्म की स्थापना और संरक्षण निमित्त न केवल ब्राह्मणो अपितु समस्त द्विजाति वर्गीयजनो को शस्त्र

ग्रहण करना सगत है।[१८] एक स्थान पर ब्राह्मण को वणिक धर्म अगीकार करने की भी कतिपय प्रतिबधो सहित अधिकार दिया गया है। ब्राह्मण द्रव, पदार्थो, पकवान, मृगचर्म और घुले वस्त्र, दुग्ध, फल-फूल, मास जल औषधियो, पशु-मनुष्यो, भूमि, भेड बकरियो घोडो एव बैलो का विक्रय नही कर सकता।[१९] अर्थ यह है कि ब्राह्मण वर्णाश्रमधर्म का प्रथम एवं सर्वोच्च नियन्ता है। वह अध्ययन अध्यापन के अतिरिक्त क्षत्रिय कर्म करने वाला ब्राह्मण, कुलोत्पन्न मात्र कहा जाता था, वेद का ही एकमात्र का अध्ययन करने वाला ब्राह्मण की सज्ञा पाता था, एक वेद वेदागो का अध्ययन करने वाला तथा ब्राह्मणो के लिए विहित एवं शास्त्रो के धर्मो का सविधि सम्पादन करने वाला क्षत्रिय, ब्राह्मण कहा जाता रहा। शुद्ध मानस, शास्त्रो मे वर्णित अग्निहोत्र आदि सम्पादन करने वाला वेद-वेदागो के अर्थ से पूर्णत अवगत ब्राह्मण की अनुचान् सज्ञा थी। अनुचान् के सभी गुणो स तथा यज्ञो का सम्पादन करने वाला भ्रूण कहा जाता था। वैयक्तिक एवं वैदिक दोनो प्रकार का ज्ञान रखने वाले की संज्ञा ऋषि कल्प तथा सन्यास आश्रम का जीवन व्यतीत करने वाला, वरदान अभिशाप देने मे समर्थ ब्राह्मण की संज्ञा परम ऋषि थी। जंगल मे निवसते हुए कन्दमूल, फल का अशन करते हुए जीवन व्यतीत करने वालो को 'मुनि' नाम से अभिहित किया जाता था।[२०]

कथासरित्सागर का रचना काल ग्यारहवी शती का उत्तर भाग [१०६३-८९]

है। इस कालावधि पर्यन्त, भारतीय समाज, उसके सघटनात्मक स्वरूप और वर्ण-व्यवस्था मे किचित् शैथिल्य अवश्य आया अर्थात् प्राचीन काल मे व्यवस्थित वर्ण-व्यवस्था अद्यावधि यथावत् बनी रही तथापि कतिपय अभिवृद्धि के प्रमाण उपलब्ध होने लगे। अर्थ यह है कि ब्राह्मण, देश, निवास कुल गौत्र और शाखा-प्रतिशाखा के आधार पर भी अभिहित होने लगे। फिर भी ब्राह्मण की श्रेष्ठता पूर्ववत् मान्य थी। ब्राह्मण इस काल मे भी शास्त्र विहित अपने प्रमुख धर्म अध्ययन-अध्यापन का सम्पादन करता था। वह लोक संमानित रहा-देवता और ब्राह्मणो का पूजन कार्य साधनो के लिए कामधेनु के समान है। उसके पूजन से क्या नही प्राप्त हो सकता, अर्थात् सर्ववांक्षित प्राप्त हो जाता है।[२१] ब्राह्मण का परिचय उसके कुल तथा गोत्र के आधार पर जाना जाता था साथ ही उसके व्यवसाय, तथा वेद-वेदागो के अनधीती होने से भी उसकी पूजा की जाती थी और दान दिया जाता था- देव यदि यह आप की सच्ची इच्छा है तो हसी या विनोद की बात नही है तो मेरे दाता पिता से मुझे मांगे। इसके पश्चात् उसका कुलगोत्र, परिचय आदि पूछकर उस मुनि ने जाकर उसके पिता सुषेण से मांगा।[२२]

ब्राह्मण को दान देकर स्वस्ति वाचन करने का अधिकार और ब्राह्मण की पूजाकर निज कल्याणार्थ वरदान प्राप्त करने की परम्परा कथासरित्सागर मे पूर्ववत् प्रचलित रही। उसने उस पुरुषो को अक्षय देखकर ब्राह्मणो को वेद की संख्या मे

दान देना प्रारम्भ किया, अर्थात् जो ब्राह्मण जितने वेद का ज्ञाता था, उतने हाथ उसे दान मे देने लगी। कुछ दिनो मे उसके दान की प्रसिद्ध चारो दिशाओ मे प्रसरित हो गयी। उसकी इस प्रसिद्धि को सुनकर सग्राम दत्त नामक ब्राह्मण पाटलिपुत्र से आया। वह दरिद्र और गुणी 'चतुर्वेदी ब्राह्मण' था। दान लेने के लिए द्वारपालो से निवेदन किये जाने पर वह उसके पास गया। उस मदनमाला ने कृश और विरह से पीले अंगो वाली ने, उस ब्राह्मण का, विधिवत् पूजन करके सोने की चार भुॅजाएॅ दान स्वरूप प्रदान की।[२३] इस काल मे दान का महत्व अपनी चरमसीमा पर था। पूरा का पूरा धन भी वेदाधीत ब्राह्मण को दान दिया जा सकता था। - राजा के वियोग को महन करती हुई मदनमाला भी अपने देश का त्याग कर और सम्पत्ति ब्राह्मणो को दान करके राजा के साथ पाटलिपुत्र जाने को उद्यत हुई।[२४] पूर्व के पृष्ठो मे यह उल्लेख हो चुका है कि आपत्काल मे अथवा विशेष स्थिति मे जीविकोपार्जन हेतु अथवा सामाजिक संगठन और वर्णव्यवस्था एव राष्ट्र की संरक्षा हेतु ब्राह्मण क्षत्रिय-धर्म का अनुसरण-अधिकारी है। ऐसे दृष्टान्त हमे कथासरित्सागर मे भी उपलब्ध है- श्रीदत्त ब्राह्मण होकर भी, क्रमश युवावस्था-प्राप्ति पर अस्त्र-शस्त्र की विद्याओ मे तथा मल्ल विद्या मे अद्वितीय हो गया। तदनन्तर अवन्ति देश मे पैदा हुए बाहुशाली तथा बज्र मुष्टि नामक दो क्षत्रिय श्री दत्त के मित्र बन गये। श्री दत्त ने राजकुमारो को मल्ल युद्ध मे विजित करने वाले अन्यान्य गुणग्राही दक्षिण

देशवासी और मत्रियो के पुत्र श्री दत्त के मित्र स्वय बन गये। श्री दत्त ने राजकुमार को मल्ल युद्ध मे जीत लिया, अत क्रोधावेग मे राजकुमार ने उसे मार डालना चाहा।[२५] इसी प्रकार एक स्थल 'यह देखते हुए श्रीदत्त ने मृगाक नामक खड्ग को खीचकर उसे मारने के लिए उठा। उधर उस स्त्री ने अपना रूप छोडकर भीषण राक्षसी का रूप धारण कर लिया।[२६]

इस प्रकार के दृष्टान्त प्राय ही आख्यानो के घटनाक्रम मे अनुक्रमित परिलक्षित होते है- वह गुणशर्मा, शूरवीर और अति रूपवान् वेद-विद्याओ का पारगामी, युवक कलाओ तथा शस्त्र विद्याओ का ज्ञाता था। गुणशर्मा ने संयमित होते हुए रानी के साथ राजा को क्रमश शस्त्रास्त्र विद्या भी दिखलायी। राजा ने कहा यदि तू युद्ध विद्या जानता है तो बिना शस्त्र हाथ मे लिए ही मुझ शस्त्रधारी को परास्त कर दे। तब गुणशर्मा ब्राह्मण ने कहा - महाराज आप शस्त्र लेकर मुझ पर प्रहार कीजिए, आपको मै अपना कौशल दिखाता हूँ। तदनन्तर राजा ने तलवार आदि अस्त्रो से उस पर प्रहार करना प्रारम्भ किया, राजा जिस-जिस अस्त्र का उस पर प्रहार करता था, गुणशर्मा खेल के ही समान अपनी युक्ति से उसे छीन लेता था। इस प्रकार राजा के हाथ से अस्त्र छीनकर स्वय अक्षय रहते हुए गुणशर्मा ने राजा को बांध दिया।[२७] पुन द्रष्टव्य है- ब्राह्मण चन्द्रस्वामी ने दिव्यवाणी श्रवणकर पुत्र-जन्मोत्सव समाप्त होने पर उस शिशु का नाम महीपाल रख दिया, क्रमश· बडा होने पर

महीपाल को पिता ने अस्त्र, शस्त्र, वेद तथा अन्यान्य विद्याओ मे समान रूप से शिक्षिप्त कर दिया।[२८] गुणशर्मा ने अक्षय धन-कोष प्राप्त कर उसके प्रभाव से प्रचुर मात्रा मे गजाश्व और पदाति सेना एकत्र कर एव अन्य सहयोगी नृपतियो के सैन्यबल का सहयोग लेकर उज्जयिनी नगरी पर घेरा डाल आक्रमण कर दिया। उज्जयिनी पहुँचकर रानी अशोकवती, दुराचार प्रवृत्तिवाली है, यह घोषणाकर युद्ध मे राजा महासेन को पराजित कर राज्याधिकार हस्तगत कर लिया।[२९] वस्तुत कथासरित्सागर एव वृहत्कथामंजरी, राजतरगिणी जैसी साहित्य रचनाएँ लगभग समकालीन है। तीनो मे ही दशवी-ग्यारहवी शताब्दी के समग्र समाज और तत्समय की राजनीति व्यवस्था का अकन प्राप्त होता है। घटनाक्रम सबके सब, समाज और उसकी व्यवस्था से अनुक्रमित होकर अवतरित होते है। ब्राह्मण अध्ययन, अध्यापन के अतिरिक्त मानवोत्थान, लोककल्याण और राष्ट्र-संरक्षण हेतु आवश्यकता पडने पर वेदादि, विद्या के साथ ही शस्त्रास्त्र कलाओ मे भी विख्यात हुए।

'कथासरित्सागर' गुणाढ्यकृत 'वृहत्कथा का सस्कृत भाषान्तर है, अत इसमे समायोजित आख्यान किसी क्षेत्र विशेष वर्ग विशेष अथवा राजकुल विशेष के न होकर वृहत्तर देश के है। वृहत्तर समाज के है। विभिन्न लोको की कथाए है। इसमे अधिकतर कथा गुच्छ मध्यदेशीय भूमि के लोककथा गायको की कृतियॉ है। बहुत सी कथाएँ विषय एवं प्रत्याख्यापन की दृष्टि के बुद्धकथा, जातक आख्यानो के समुतल्य

है। जातक कथाएँ मध्य देशीय लोकाख्यानो से ही बुद्ध-सिद्धान्तो के प्रतिपादन क्रम मे सयोजित की गयी है। स्पष्ट है कि इन कथाओ मे कथा के घटनाक्रमो मे तत्समय के वृहत्तर समाज का धर्म, उसकी परम्पराएं, तत्कालीन उथल-पुथल का भी सहज अकन मिलता है। उस काल मे ब्राह्मण वर्णव्यवस्था का नियामक, प्रतिस्थापक और सरक्षक के रूप मे सर्वमान्य था। उसका दायित्व समाजधर्म, राष्ट्रधर्म दोनो के ही प्रति समान था। तत्कालीन समाज और राजधर्म व्यवस्थापन मे ब्राह्मण के बहुपक्षीय कार्यकलापो का सम्यक् विवेचन अपर्णा चट्टोपाध्याय ने सविस्तार किया है, उनका यह विवेचन कथासरित्सागर, वृहत्कथामंजरी दोनो के परिप्रेक्ष्य मे प्रस्तुत हुआ है।[३०] वहाँ ब्राह्मणो के निजधर्म वेदाध्ययन-अध्यापन प्रतिग्रह आदि कार्यो से अतिरिक्त क्षत्रिय, वैश्य आदि के धर्मानुसरण के भी दृष्टान्त है। हम यह उल्लेख कर चुके है कि 'वृहत्कथामंजरी' एवं 'कथासरित्सागर' ही नही अपितु कल्हणकृत 'राजतरगिणी' समकालीन रचनाएँ है। अत. तीनो ही कृत्यो मे समान रूप समान प्रकृति के वर्णन प्राप्त होते है।

वृहत्कथामंजरी मे भी अस्त्र-शस्त्र संचालन परिचालन रण-कौशल मे ब्राह्मण वर्ग द्वारा दाक्षिण्य सम्प्राप्त करने से सम्बन्धित विलक्षण प्रकृति के विभिन्न घटनाक्रमानुक्रमित आख्यान सहज ही प्राप्त होते है। शस्त्राशस्त्र सचालन मे पटु ब्राह्मणो की कथाए अत्यन्त रोचक एवं कौतूहलोत्पादिनी है।[३१] राजतरगिणी मे ब्राह्मण मातृगुप्त के शौर्य

पराक्रम से प्रभावित होकर सचिवो ने उसे राज्याभिषिक्त कर कश्मीर का राज्य शासन दायित्व सौपा था। धीरे-धीरे जनसमूह एकत्र होने लगा, प्रतीत होता था उस स्थान पर मानव समुदाय का क्षुब्ध-सिन्धु लहराने लगा। तद्नन्तर एक सिहासन पर पूर्वाभिमुख बैठाकर उन मन्त्रियो ने मातृगुप्त का अभिषेक कर दिया। उस समय उसके विशाल वक्षस्थल से बहने वाला अभिषेक-जल विन्ध्यपर्वत के तट से टकराकर गर्जन करते हुए बहने वाले नर्मदा नदी के प्रवाह जैसा सुन्दर प्रतीत हो रहा था। इस प्रकार स्नानोपरान्त उसके शरीर पर दिव्य चन्दन लगाकर सभी अंगो को आभूषणो से अलंकृत किया गया। तत्पश्चात् जब वह राज्य सिंहासन पर विराजमान हुआ तो प्रजाजन ने उद्घोष किया- 'कश्मीर देश के रक्षणार्थ हम लोगो ने महाराज विक्रमादित्य से प्रार्थना की थी- तद्नुसार उन्होने अपने ही अनुरूप आपको इस कार्य-हेतु नियुक्त किया है। अतएव अब आप सुचारू रूप से इस धरती पर शासन करे।[३२]

इसी प्रकार शस्त्रास्त्र-सचालन मे पटु शूर-वीर युद्ध विशारद ब्राह्मणो के अन्य प्रसगो का भी राजतरगिणी मे उल्लेख है, वीर, शौर्य-मंडित तथा विद्वान् पण्डित तिव्य नामक ब्राह्मण रामदेव तथा कर्नाटक देश निवासी केशी ने तीन बार शत्रु पक्ष वालो के हाथो मारे गये। इनमे से कितने ही लोगो ने हथियार डाल दिये। कितनो ने आत्महत्या कर ली, कितने मार डाले गये। और कितने ही कायर बन्दी बना लिये गये। जब सेना भाग गयी तब सैनिक शास्त्र का परम् विद्वान् कल्याणराज

नामक ब्राह्मण लडने लगा और रण मे मारा गया। मत्री डामरो और सामन्तो तथा राजा सुस्सल की सेना के असख्य शस्त्रधारियो को पृथवीहर ने बन्दी बना लिया तदनन्तर उसने वितस्ता के तट पर भागी हुई सेना का पीछा किया तथा भोजानन्द आदि ब्राह्मणो को बन्दी बनाकर सूली पर चढा दिया। लवराज तथा यशोराज दोनो ब्राह्मण कसरती थे अत दो वह, एव राजा कान्द तीन व्यक्ति सत्यत अपने पराक्रम प्रदर्शित करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। राजा भोज ने एक दु खी ब्राह्मण को देखा वह कराह रहा था। रण मे उसके शरीर पर अनेक घाव हो गये थे और उससे स्त्रवित रुधिर सूख गया था। उसके केश कटे हुए थे, मुँह से फेन फेकता हुआ वह जोर-जोर से क्रन्दन कर रहा था। भोज ने रुदन का कारण पूछा तो उसने कहा विप्लवी डामरो ने मेरा सर्वस्व लूट लिया और मुझे मार-मार कर घायल कर डाला ऐसा कहता हुआ वह आत्मरक्षा मे असमर्थ समझ कर अपनी निन्दा करने लगा[३३] समकालीन इन तीनो- कथासरित्सागर वृहद्‌कथामंजरी एवं राजतरंगिणी मे सबसे अधिक मल्ल विद्या और अस्त्र-शस्त्र विद्या मे निपुण ब्राह्मण साहसी युवको का उल्लेख हुआ है।

क्षेमेन्द्र की कृति वृहत्कथामंजरी गुच्छक पाचवी- विदूषक की कथा एव कथासरित्सागर की तरंग अठारह की वीर विदूषक ब्राह्मण की कथा लगभग समान रूप और समप्रकृति की है। कथासरित्सागर का विदूषक न केवल अस्त्र-शस्त्र संचालन

मे निपुण है, अपितु परम साहसी है जिसने श्मशान मे अकेले जाकर तीन चोरो की नाके काट डाली, राजकुमारी की प्राण की रक्षा राक्षस से की, विकराल राक्षस का वध किया और अन्त मे धन सपत्ति और राजकुमारी का पति बना- 'मै यह कार्य करता हूँ रात मे श्मशान से उनकी नाक काटकर लाता हूँ। रात आने पर उन ब्राह्मणो से कहकर विदूषक श्मशान मे गया। स्मरण करते ही उपस्थित होने वाले खड्ग को लेकर अपने कार्य के ही सदृश भयावह श्मशान मे गया। डाकिनी, शाकिनी आदि के शब्दो से पूर्ण, गीध एवं कागो के शब्दो से भयावह मुह से उगलते हुए गीदडो की अग्नि ज्वाला से फैलती हुई चिताग्नि के कारण भयोत्पादक उस श्मशान के बीच उसने सूली पर चढे हुए, नाक कटने के भय से मानो ऊपर की ओर मुँह किये तीन चोरो को देखा। विद्षक जब उनके समीप पहुँचा तो वेतालाक्रान्त वे तीनो मुर्दे उसे मुक्को से मारने लगे उसी बीच विदुषक ने अपनी खड्ग का प्रहार किया। वेताल छोडकर भाग गये। विदूषक ने तीनो चोरो की नाक काट ली और एक वस्त्र-खण्ड मे बाध लिया।[३४]

इसी प्रकार अशोकदत्त का आख्यान-अशोकदत्त युवक हो गया एवं मल्ल विद्या की शिक्षा प्राप्त करने लगा। धीरे-धीरे वह मल्लविद्या मे निपुण हो गया। संसार मे कोई भी मल्ल युद्ध मे उसको परास्त करने मे असमर्थ रहा।[३५] 'कथासरित्सागर' मे संग्रहीत विभिन्न आख्यानो मे तत्कालीन समाज व्यवस्था का स्पष्ट रूप चित्रित

हो उठता है। वर्णव्यवस्था के शिव-अशिव दोनो पक्ष अकित है। वर्ण व्यवस्था के मूर्धन्य ब्राह्मण को सर्वश्रेष्ठ सर्वमान्य, लोकसपूज्य वर्णित किया गया है, किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि उसमे सभी गुण ही गुण है। ब्राह्मणो को पौरोहित्य कर्मानुष्ठान करनेवाला भीरु, वेदपाठी भी कहा गया है, और काम क्रोध का घर भी कहा है। यत्र-तत्र तो उन्हे हास्य की मूर्ति बना दिया गया है - एक वैदिक ब्राह्मण चतुरिका, वैश्या के यहॉ गया और तुम आज सुवर्ण को लेकर मुझे सासारिक व्यवहार सिखाओ। कहकर उसने आठ मासा सोना उसे अर्पित किया। यह सुनकर वहॉ बैठे जन हसने लगे। उन सबको हसता देखकर, मूर्ख वैदिक ब्राह्मण, दोनो हाथो को गौ के कान सदृश खडा करके, उन पर अंगुलियो को नचाता हुआ इतनी ऊची आवाज मे सामवेद पढने लगा कि आस-पास के सभी वेश्या दल्लाल उसका तमाशा देखने के लिए वहां आकर एकत्र हो गये। कहने लगे- यह सियार यहॉ कैसे घुस आया? इसे जल्दी से अर्द्धचन्द् (गरदनिया) देकर बाहर निकालो।[३६] इसी प्रकार यह श्मशान का रक्षक सिपाही है या चोर 'कहकर मठवासी उन ब्राह्मणो को राजा ने अन्दर आने से रोका। इस प्रकार लडते-झगडते वे लोभी और निष्ठुर ब्राह्मण मठ के बाहर निकल आये क्योकि वेदपाठी ब्राह्मण प्रकृति से ही, भय, निष्ठुरता तथा क्रोध की भूमि होते है।[३७]

ब्राह्मणो के लोभ, भयातुरता, क्रोध आदि स्वभावगत गुणो की चर्चा 'कथासरित्सागर'

मे प्राय उपलब्ध होते है- जिस प्रकार आधी निर्मल जलवाले तालाबो को क्षुब्ध कर डालती है। उसी प्रकार क्रुद्ध तथा विद्वान् गुरु ने बिना विचारे अति क्रोध से मेरे विरुद्ध भयकर व्यवहार किया। यह भी बात है कि इस सृष्टि के आरम्भ काल मे ही मोक्ष मार्ग के विरोधी काम और क्रोध ब्राह्मणो मे दैवयोग से प्रकृति-सिद्ध होते है। काम, क्रोध आदि छह शत्रुओ से ठगे हुए ऋषिगण भी जब मोहित हो जाते है तो वेदपाठी ब्राह्मण की तो बात ही क्या?[३८] इतना ही नही ब्राह्मण को शिवत्व प्रदान करने वाला भी वर्णित किया गया है- 'धनी धन दत्त पुत्रहीन था अत उसने बहुत से ब्राह्मणो को बुलाकर उन्हे प्रणाम करके निवेदन किया कि आप लोग ऐसा उपाय करे, जिससे मुझे पुत्र प्राप्त हो जाय। यह सुनकर ब्राह्मणो ने कहा- यह कोई कठिन काम नही है। ब्राह्मण लोग वैदिक कर्मो से सभी दुष्कर कार्यो को सुकर बना सकते है। प्राचीन काल मे एक पुत्रहीन राजा था, उसकी एक सौ पाच रानियाँ थी। पुत्रेष्टि यज्ञ करने के पश्चात् राजा के घर जन्तु नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। जो सभी सौतो की आंखो के लिए द्वितीया के चाद-सदृश था।[३९]

'कथासरित्सागर' तथा तत्समकालीन भारतीय साहित्य के उल्लेखो से ज्ञात होता है कि भारतीय प्राचीन वर्णव्यवस्था एवं तद्नुसार विनिश्चित वर्णो के अधिकार, कर्तव्य, सुविधाए एवं व्यवसाय आदि मे, कतिपय परिवर्तन अवश्य आये, तथापि परम्परा

पूर्णत शिथिल नही होने पायी थी। ब्राह्मण समाज को दिशा निर्देश देने वाला, सर्वश्रेष्ठ, सम्मान्य था। उच्चजन्मा होने के परिणाम स्वरूप उन्हे विशेष सुविधाएँ ही नही विशेषाधिकार भी प्राप्त था। प्राचीन व्यवस्थानुसार ब्राह्मण अवध्य रहा, इसके दृष्टान्त कथासरित्सागर मे भी सहज ही उपलब्ध होते है- 'राजानन्द' मेरा इन्द्रदत्त नामक मित्र है और ब्राह्मण है। अत वह भी मेरे लिए बध्य नही है।[४०] कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे राज्यापराधी ब्राह्मण को भी न्यायोचित परिसीमा के अन्तर्गत ही मुक्ति अथवा दण्ड देने का निर्देश दिया है। ऐसे दृष्टान्त भी कथासरित्सागर के समसामयिक साहित्य राजतरंगिणी मे मिलते है। मुज्जि' जब पाण्डव राज्य मे था तो वहॉ किसी ब्राह्मण ने उसके प्रति कटुवचन कहा था, अत. उसके अनुयायियो ने उस ब्राह्मण का सर्वस्व लूट लिया तथा सियार की भाति उसे मार डाला। किन्तु वही ब्राह्मण के प्रति लोक प्रतिष्ठा का भी उल्लेख है।- यद्यपि यह कुकर्म उसने नगर के बाहर किया था, तथापि इसमे नगर के लोगो मे उसके प्रति घृणा की भावना भर गयी।[४१] तत्कालीन साहित्य मे धूर्त, लोभी, कर्मच्युत, ब्राह्मणो के भी उल्लेख मिलते है- 'लोष्ठक नाम का एक ग्राम देवज्ञ (गवार ज्योतिषी), मूर्ख ब्राह्मण एक-एक मुट्ठी अन्न के लिए भिक्षाटन कर भरण-पोषण करता रहा। सहसा ग्राम क्षेत्रपाल की अनुकम्पा से उसे मुट्ठी मे रखी हुई वस्तु का ज्ञान हो गया। इस कारण उसका नाम मुष्ठिलोष्ठक पड गया। वह लोगो के सब कार्य कर देता था।

प्राय रात्रिकाल मे भी निशाचर के समान इतस्तत घूमता रहता था। वह धीरे-धीरे गुरु, देव एवं कुट्टन आदि विशिष्ट गुणो के फलस्वरूप नृपति कलश का अतिप्रिय पात्र बन गया।[४२] ब्राह्मणो को नृपतियो द्वारा उच्च पदो पर प्रतिष्ठित कर उन्हे न्याय, शासन करने के विशिष्ट अधिकार प्रदान किये जाने का भी उदाहरण है। - पार्थ नामक ब्राह्मण अत्यन्त दुर्बुद्धि था, सबको मालूम रहा कि वह अपने बन्धु के पत्नी से अवैध सम्बन्ध रखता है, तथापि अविचारी नृप ने उसे नगराधिकारी पद पर प्रतिष्ठित किया।[४३] कथासरित्सागर एव तत्सामयिक साहित्य के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन वर्ण-व्यवस्था मे विहित उच्च वर्ण ब्राह्मण की स्थिति-परिस्थिति एव अधिकार-कर्तव्यो की प्रतिष्ठा मे शिथिलता आने लगी थी।

क्षत्रिय

भारतीय सामाजिक-सघटनान्तर्गत वर्णव्यवस्था के क्रम मे दूसरा स्थान क्षत्रिय का है। वैदिक पुरुष सूक्त के सन्दर्भ मे कहा गया है 'ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद वाहूराजन्यकृत·' भी यही संकेत देता है। बाहु से उत्पत्ति होने के कारण क्षत्रिय मे शौर्य बल का होना सहज है। सामाजिक अस्तित्व एव इयत्ता-प्रतिस्थापनार्थ बुद्धि-विवेक और बलपौरुष दोनो का समन्वयात्मक सहयोग परिकल्पित किया गया है। सामाजिक विकास एव अभ्युत्थान की दृष्टि से दोनो वर्ण ब्राह्मण तथा क्षत्रिय की पारस्परिक सहकारिता प्रारम्भिक

प्राचीन युग मे अनुभव की जा टुकी थी। इस परिकल्पना एव चिन्तन पर भारतीय राजव्यवस्था का निर्माण और अस्तित्व बना। मनु ने कहा है- जल से अग्नि, ब्राह्मण से क्षत्रिय, पत्थरो से अस्त्र-शस्त्र उत्पन्न हुए। इससे इनका तेज सर्वत्र प्रभावशील होते हुए भी अपने-अपने उत्पत्ति स्थान मे पहुँचकर शान्त हो जाते है। ब्राह्मणो के बिना क्षत्रिय की और क्षत्रियो के बिना ब्राह्मण की कभी अभिवृद्धि नही होती, परन्तु ब्राह्मण तथा क्षत्रिय के सहयोग से इहलोक एवं परलोक मे उनकी वृद्धि निश्चयत होती है। अत नृपति के लिए आवश्यक है कि वह दण्ड से प्राप्त हुआ धन ब्राह्मणो को देकर एव पुत्र को राज्य सौपकर रणभूमि मे प्राण विसर्जित कर दे।[४४]

क्षत्रिय के स्वाभाविक गुण, शौर्य, तेज, घृति, दान और ईश्वरता है। उनका एक प्रमुख कार्य चर्तुवर्णो की रक्षा करना रहा। धन के हेतु युद्ध करना क्षत्रिय के लिए अत्यन्त श्रेयस्कर है। असाधुओ का नियंत्रण और धर्मचारियो की रक्षा उनका प्रमुख कर्तव्य है।[४५] वर्ण व्यवस्थानुसार सामान्यत क्षत्रिय, ब्राह्मण, वर्ण के पश्चात् सर्वोच्च वर्ण मान्य था। समाज एवं राष्ट्र धर्म के रक्षार्थ युद्ध करना एव शत्रु वर्ग पर विजय प्राप्त करना, क्षत्रियो का श्लाध्य कर्म माना जाता था।[४६] कथासरित्सागर के रचनाकाल तक भारतीय समाज एवं राष्ट्र की स्थिति मे कुछ परिवर्तन आ रहा था। सभी क्षेत्रो मे व्यवस्था शिथिल पड रही थी। मुसलमानो की शक्ति मे विस्तार आने लगा था। कदाचित् जैन बौद्ध धर्म के अहिंसात्मक सिद्धान्तो के परिणामस्वरूप

क्षत्रियो की युद्ध विषयिणी प्रवृत्ति आधातित होने लगी थी तथापि क्षत्रिय वर्ण ने अपने प्रमुख धर्म अर्थात् समाज एव राष्ट्र-धर्म रक्षण को विस्मृत नही किया। वह उसे सरक्षित किये रहे। इस युग मे सामन्तवादी परम्परा पर्याप्त रूप से बढी। यद्यपि भारत मे गुप्तकाल से ही यह प्रथा देखी जा रही थी तथापि हर्षोत्तर काल मे ही सामन्तवाद ने विकेन्द्रित करना प्रारम्भ कर दिया। फलत भारत कथासरित्सागर के समय अनेक लघु राज्यो मे विभक्त हो गया था।

सामन्त अपने संकुचित मनोभावो की सिद्धि के लिए कदाचित् ही किसी गर्हित कार्य को शेष रहने देते थे। उनके राजनय का परम लक्ष्य अपने ही लघु राज्य को सुरक्षित रखना था। इस समय देश मे भक्ति तथा राष्ट्रीय भावना का लोप हो चुका था।[४७] विधिसग्रह एवं व्यवस्थाकारो ने क्षत्रियो के लिए जो धर्म-कर्तव्य विहित किये थे, उनमे प्रमुख रहे - देवाराधन, वर्णधर्म, समाज व्यवस्था और प्रमुख रूप से ब्राह्मण को संरक्षित करना। वेदाध्ययन तथा यज्ञादि क्षेत्र मे ब्राह्मणो की ही भाति वह भी संलग्न रहे। हा वेदाध्ययन करे,। परन्तु वह वेदाध्यापन नही कर सकते।[४८] शासनकार्य, शासन सचालन भी क्षत्रियवर्ण का धर्म है। अत: समुचित व्यवस्था-निमित्त यह आवश्यक था कि क्षत्रिय भी ब्राह्मण की ही भांति वेद, धर्मशास्त्र, उपवेद और पुराणो के विधि-निषेधो का अनुशरण एव अनुगमन करे।[४९] आचार्य कौटिल्य के मत मे क्षत्रिय के प्रमुख कर्तव्यो मे अध्ययन, यजन, दान, शस्त्राजीव तथा भूतरक्षण है।[५०]

कथासरित्सागर के रचनाकाल की अवधि मे जहॉ नृपतिगण शूरवीर युद्धप्रिय रहे, वही वह अनेकश विद्‌याधर्म व्यवसनी भी होते रहे। ऐसे कतिपय दृष्टान्त हमे कवि कल्हण की राजतंरगिणी मे सहजत उपलब्ध होते है- विस्तता के तट पर उसने जिस शिवलिग की स्थापना की थी, उसे देखकर गगातट पर विद्यमान विमुक्ततीर्थ (कार्शी) का स्मरण सहजत होता था तपस्वियो से विभूषित उसके मठ को देखकर रूद्रलोक के अवलोकन का कौतूहल शान्त हो जाता था। उस शुद्ध-बुद्धि पुरुष ने गरीबो से धन लेकर उस समय अन्यान्य प्रतिष्ठानो की नीव नही रखी। सेनापति उदय की पत्नी चिन्ता ने भी एक विहार बनवाकर वितस्ता सरित् की तट्‌वर्तिनी भूमि को विभूषित किया।[५१] कथासरित्सागर-काल तक क्षत्रियो के बहुसंख्यक कुल और शाखाऍ पल्लवित हो गये थे। राजपूत अथवा राजपुत्र लोकप्रिय हो रहा था। कथासरित्सागर मे राजपूत को वीर, रक्षक की संज्ञा से अभिहित किया गया है।

राजतरगिणी मे लगभग छत्तीस प्रकार के राजपूत वर्णित किये गये है, जिन्हे वर्णाश्रम रक्षक कहा गया है। स्थल-स्थल पर कथासरित्सागर मे शौर्य एव पराक्रम के उद्धरण उपलब्ध होते है- अब उसके मन मे निकटवर्ती सेवको पर भी विश्वास नही रह गया था। वहॉ से चलकर वह प्रदयुम्न तीर्थ की पहाडी पर जा पहॅुचा। जहॉ से आगे बढने पर उसके साथ बहुत थोडे सेवक रह गये। जो छत्तीस उच्चतम कुलो मे उत्पन्न होने के कराण उत्तम, तेजस्वी और प्रभावशाली क्रम से भी अपने

को श्रेष्ठ मानते थे, वे ही अनन्तपाल आदि राजपुत्र शाम को अधेरा होते ही अपने घोडे सॅभाल तथा राजा हर्ष को राह मे ही छोडकर भाग गये।[५२] कथासरित्सागर मे शौर्य सम्पन्न एवं पराक्रमशील क्षत्रियो की चर्चा मिलती है- हे पिता। मुझे अनुमति दे। मै दिशाओ को विजय करने जा रहा हूॅ, क्योकि पृथिवी विजित करने की इच्छा न करने वाला राजा उसी प्रकार प्रिय नही होता, जैसा स्त्री को नपुसक पुरुष प्रिय नही होता। राजा की वही राजलक्ष्मी धर्मशीला और कीर्तिदायिनी होती है जो परराष्ट्रो को जीत कर अपने बाहुओ के बल पर प्राप्त की जाती है। हे पिता, उन क्षुद्र राजाओ के राज्य क्या है? जो लोभी बिलाव के सदृश अपनी उन्नति के लिए अपनी ही प्रजा को खाते रहते है। सुनकर पिता सागरवर्मन् ने कहा- बेटा, तुम्हारा राज्य अभी नया है, अतएव पहले इसे ही ठीक करो, धर्म से प्रजाओ का पालन करने वाला राजा पापी या निन्दनीय नही होता। अपनी शक्ति और सामर्थ्य को बिना देखे-समझे समस्त राजाओ से विरोध लेना उचित नही। देखो, यद्यपि तुम शूरवीर हो विजय लक्ष्मी अस्थिर होती है। पिता के इस प्रकार कहने पर तेजस्वी समुद्रवर्मा पिता से आज्ञा लेकर दिग्विजय निमित्त प्रस्थित हो गया। तद्नन्तर क्रमश दिशाओ को जीतकर और राजाओ को वश मे करके बहुत से हाथी, घोड़ा, सेना, रत्न आदि प्राप्त करके अपने नगर को वापस आ गया।[५३] मध्यकालीन इतिहास से ज्ञात होता है कि नृपति का समाज राष्ट्र और प्रमुखत वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करना

उनका परम धर्म रहा है। स्पष्ट है कि इस काल मे प्राचीन वर्णाश्रम-व्यवस्था की परम्परा से नृपतिगण एव समाज समग्र पूर्ण अवगत रहा और वह परम्परा अक्षुण्ण थी। क्षत्रिय समाज एव राजा वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करने सम्बन्धी निजधर्म के प्रतिसजग एव तत्पर था। नृपति वर्णाश्रम धर्म के रक्षक के रूप मे लोकमान्य था। कथासरित्सागर मे क्षत्रियो और राजा को वर्णाश्रम धर्म के सरक्षक-स्वरूप मे वर्णित किया गया है- वह तो तुम्हारे लिए दण्ड देने योग्य है। हे पिता! तुम तो वर्णो तथा आश्रमो के रक्षक एव धर्म के प्रति पालक हो।

मध्ययुगीन भारतीय इतिहास के अध्ययन से साक्ष्य प्राप्त होता है कि- कथासरित्सागर के रचनाकाल तक क्षत्रियो का दो वर्ग प्रतिश्रुत हो चुका था। प्रथम वह था, जो नृपति वर्ग रहा, अथवा उससे सम्बद्ध कुल था। दूसरा वर्ग वह जिसका धर्म एक मात्र सग्राम भूमि मे अपना शौर्य और पराक्रम का प्रदर्शन करता था, जो योद्धा की सज्ञा से अभिहित होता रहा। जैसा कि श्री वासुदेव उपाध्याय ने 'सोशियो इकोनामिक हिस्ट्री आफ इण्डिया'[५४] मे उल्लेख किया है। इसी के साथ यह भी उल्लेखनीय है कि कतिपय यवन इतिहासकारो के द्वारा यह क्षत्रियो का योद्धा वर्ग 'ठाकुर' की भी संज्ञा से अभिहित किया गया है। कथासरित्सागर एव तत्कालीन अभिलेखीय साक्ष्य भी इसकी पुष्टि करते है। प्रतीत होता है यह 'ठाकुर' शब्द प्राचीन काल से परम्परित चला आ रहा था। राजतरंगिणी और कथासरित्सागर

राजपूतो के लिए वेतन की व्यवस्था का सकेत देती है। इतना ही नही राजा या वेतन ग्रहण करने वाले कर्मचारियो मे 'ठाकुर' अर्थात् योद्धा वर्ग का उल्लेख सर्वप्रमुखता के साथ किया गया है।[५५] एपीग्राफिया इण्डिका मे भी क्षत्रिय को क्षात्रधर्म सम्बधी तथा विशिष्ठ राजपुरुष आते थे। तत्कालीन समाज मे इनका प्रमुख स्थान था। दूसरा वर्ग सैनिको तथा योद्धाओ का था। राजा की सुरक्षा के लिए सेना मे इनकी नियुक्ति की जाती थी।[५६]

सस्कृत साहित्य के काव्यो मे वर्णित युद्ध मे सैनिको अथवा योद्धाओ के रूप मे एक शब्द 'हूण' भी उपलब्ध होता है। यह 'हूण' पराक्रमी योद्धा के रूप मे उपस्थित होता है।[५७] इस 'हूण' योद्धा को कथासरित्सागर का रचयिता सोमदेव भट्ट 'म्लेच्छ' शब्द से अभिहित करता है -

'वहॉ पर घोडो की सेना से युक्त उदयन ने सिन्धु राज को वश मे करके म्लेच्छो का इस प्रकार संहार किया जैसे राम ने राक्षसो का किया था। महाराज उत्तर दिशा यद्यपि प्रशस्त है किन्तु म्लेच्छो के सम्पर्क से दूषित है।[५८] जैसा कि उल्लेख किया गया है कि इस काल मे प्रमुखत क्षत्रियो के दो वर्ग- एक राजा अथवा उससे सम्बद्ध राजपुरुष दूसरा योद्धा का। कथासरित्सागर मे क्षत्रिय के इन दो वर्गो का अंकन प्राप्त होता है। योद्धा एवं सैनिक धर्म का निर्वाह करने वाला क्षत्रिय वर्ग विजयी बने। प्रसन्न होकर अपनी सेना लेकर राजा चमरवाल शत्रु के

सम्मुख पहुंचना था। शत्रु की सेना मे तीस हजार हाथी, बीस लाख घोडे एव एक करोड पदाति बल था। उसकी अपनी सेना मे बीस लाख पदाति बल, दस हजार गज, एक लाख घोडे थे। दोनो सेनाओ के मध्य भीषण सग्राम प्रारम्भ होने पर नृप का वीर अगरक्षक अग्रसर था। तत्पश्चात् नृपति चमरवाल भी समुद्र मे महावाराह के समान सेना के मध्य प्रविष्ट हो गया। सामान्य सैन्य बल होते हुए भी शत्रुसेना मे भीषण सहार मचा दिया। हाथी घोडो के सग पदाति सेना के शवो से रणभूमि व्याप्त हो गयी।[५९] ऐसे प्रजापालक यशस्वी राजाओ का अकन प्राप्त होता है जो अपना धर्म ही शास्त्रास्त्रो के साथ क्रीडा करना और समाज, राष्ट्र और वर्णाश्रम के संरक्षण मे तत्पर रहना परमधर्म मानते थे- राजा कनकवर्ण यश का लोभी था, पाप से डरता था, शत्रुओ से नही। पर निन्दा मे मूर्ख था, शास्त्रो मे नही। जिस महात्मा नृप के क्रोध मे न्यूनता थी प्रसन्नता मे नही तथा जिसकी मुट्ठी धनुष मे बॅधी रहती थी, दान मे नही। जिस आश्चर्यजनक सैन्दर्यशाली एव संसार की रक्षा करने वाले राजा के दर्शनमात्र से सुन्दरियॉ कामवेदना से विह्वल हो उठती थी।[६०] एक संग्राम स्थल का दृश्य- दोनो सेनाओ के मध्य शस्त्र की वर्षा प्रारम्भ होने पर शौर्याभिमानी राजा स्वय हाथी पर आरुढ होकर सेना मे प्रविष्ट हो गया। मात्र धनुष लेकर शत्रु की सेना मे प्रविष्ट देख विक्रम सिह के ऊपर पाचो महाभट्ट आदि राजा एक साथ ही टूट पडे।[६१]

'क्षत्रियस्य परमोधर्म प्रजानामेवपालनम्' (मनु० ७/१४४)। प्रजाजन का पालन करना ही क्षत्रिय का परम धर्म है। ऐसे क्षत्रिय नृपतियो के अकन हमे कथासरित्सागर मे अनेक स्थलो पर सप्राप्त है। प्रजा जन की रक्षा के लिए शस्त्रास्त्र मे निपुणता, युद्धार्थ तत्पर रहना, विजिगीषु होना नृप का मुख्य गुण है। एक नृप का निज पुत्र को दिये जाने वाले उपदेश मे सम्पूर्ण क्षत्रिय धर्म को कवि सोमवेद भट्ट ने समायोजित कर दिया है- 'वत्स चन्द्रावलोक तुम धर्म से प्रजा की रक्षा करो, शत्रु विनाश हेतु चेष्टाशील बनो एव युद्धोपयोगी गजाश्वादि के अभ्यास से चंचला लक्ष्मी का साधन करो। राज्यसुख भोगो, धन का दान करो और दिगदिगन्त मे अपने यश का प्रसार करो। काल की क्रीडा सदृश हिंसक मृगया के इस व्यसन को तुम छोड दो।[६२] विजय के अभिलाषी को सर्वप्रथम करणीय तथा अकरणीय कार्यो का अन्तर मालूम कर लेना चाहिए। जो कार्य उपाय से न सिद्ध हो सके उस कार्य को अकरणीय मान कर त्याग देना चाहिए। जो कार्य उपाय से सिद्ध हो सके वही वरणीय है।[६३] इसी प्रकार उत्तमोत्तम शूरवीर और अनुचर नरवाहनदत्त को चारो ओर से घेरकर चल पडे। उसके भय रहित भक्त तथा सेनापति हरिशिख का अनुसरण करने वाले गन्धर्व राज एवं विद्याधरराज सुन्दर दृष्टिवाली अपनी माता धनवती सहित चण्डासिंह वीर पिगल गांधार बलवान् वायुपथ, विद्युत्पुज अमितगति कालकूट पर्वत के स्वामी मन्दर महादंष्ट्र, उनके मित्र अमृतप्रभ, सागरदत्त- सहित वीर चित्रांगद वे सभी तथा गौणमुण्ड

के आश्रित जो भी थे, समस्त लोग भी अपनी-अपनी सेनाओ से समद्ध होकर, विजयाभिलाषी नरवाहनदत्त के साथ प्रस्थित हो गये।[६४] नृपति को प्रत्येक क्षण राजधर्म के प्रतिपालन एव समरोत्सुक रहना चाहिए ऐसे ही राजा के साथ लक्ष्मी निवास करती है, निरुत्साही के पास कथमपि नही। कथासरित्सागर मे इसी अर्थ बोध का एक सुन्दर अंकन है- 'हे पुत्र। आलसी राजा मत्र मे अभिभूत सर्प के समान विनष्ट हो जाते है विनष्ट हो जाने के पश्चात् फिर उसका अभ्युदय, असम्भव हो जाता है। सुख भोग करते हुए तुमने अब तक विजय की कामना नही की। अत मेरे जीवन काल मे ही आलस्य का त्यागकर तदर्थ-उद्योगशील बनो। तुम जाओ बढकर हमारे शत्रु अग के राजा को विजित करो, जो हमारे राज्य पर आक्रमण करने के लिए अपने देश के बाहर निकल कर प्रस्थान कर चुका है।[६५]

क्षत्रिय नृप का धर्म वर्णाश्रम धर्म की रक्षा, वेदादि अध्ययन-अध्यापन और ब्राह्मणो की रक्षा करना है। म्लेच्छो द्वारा सदा वेद मत्रो मे उपस्थित होने वाले व्यवधानो से उनकी सरक्षित रखना भी था। कथासरित्सागर के रचनाकार को इसका भी अनुभव था। उसने अंकित किया- 'भूलोक म्लेच्छो से आक्रान्त हो गया है और वषट्कार रूप मंगल से (मगलप्रदायक यज्ञ कर्मो मे वेद मंत्रो के उच्चारण से) शून्य हो चुका है। अत: यज्ञ मे मिलने वाले अपने भागादि के बन्द हो जाने से देवगण कष्ट मे पडे हुए है।[६६] इस प्रकार कथासरित्सागर का अध्ययन हमे संकेत करता

है कि उस काल मे क्षत्रिय वर्ग वर्ण-व्यवस्थान्र्गत विहित निज धर्म के सम्पादन मे सतत् सलग्न रहा। नृपति भी थे, सामन्त भी और योद्धा, शूरवीर सैनिक भी।

वैश्य

प्राचीन वर्ण व्यवस्थानुसार समाज मे वैश्य तृतीय वर्ण के रूप मे मान्य और प्रतिष्ठित रहा। पुरुषसूक्त के अनुसार 'उरुतदस्य यद् वैश्य उरुसे वैश्य की उत्पत्ति हुई। अर्थात् यह तीसरा वर्ण है। आपस्तम्ब का भी कथन है- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रवर्णो मे प्रत्येक पूर्वगामी वर्ण अनुगामी वर्ण से जन्मत उच्चतर है।[६७] ऐसा ही प्रकारान्तर कथन गौतम और मनु का भी है - क्षत्रिय यदि ब्राह्मण को अपमानित करे तो उस पर सौ कार्षापण का अर्थदण्ड, उसी प्रकार का अपराध करने पर वैश्य को एक सौ पचास कार्षापण का अर्धदण्ड देना पडेगा। इसके विपरीत यदि ब्राह्मण किसी क्षत्रिय का अपमान करे तो वह पचास कार्षापण के अर्थदण्ड का भागी होगा।[६८] महाभारत के अनुसार समाज के जिस वर्ग ने अध्ययन, यजन, आदि धर्मो के अतिरिक्त, कृषि कर्म एव गोपालन-वृत्ति का अनुसरण किया, वह वैश्य की संज्ञा से अभिहित किया गया।[६९] इस वर्ग का मुख्य लक्ष्य धनार्जन करना था और उनका स्वाभाविक कर्म कृषि, गोरक्षा एवं व्यापार करना था।[७०] बौधायन का मत है कि गौ, ब्राह्मण और वर्ण की रक्षा के लिए वैश्य भी शस्त्र ग्रहण कर

सकता है।[७१] कथासरित्सागर के समय के सामाजिक जीवन पर, उसमे प्राप्त विवरणो से महत्वपूर्ण प्रकाश पडता है। कारण इस ग्रन्थ मे कवि सोमदेव भट्ट का स्वतत्र और निर्भीक चिन्तन समाविष्ट है। वैश्य वर्ण का प्रमुख कर्म कृषि, गोपालन और वाणिज्य रहा है। हम यहॉ वैश्यवर्ण का सदर्भ कथासरित्सागर के परिप्रेक्ष्य मे उल्लिखित कर रहे है। कथासरित्सागर के रचनाकाल मे वैश्यवर्ण समाज मे मान्य एवं प्रतिष्ठित रहा, इस तथ्य पर प्रकाश डालना वैश्यवर्ण, उसके व्यवसाय एव अन्य अवदान का वर्णन तत्सम्बंधित अध्याय मे करना सगत होगा।

'कथासरित्सागर' मे वैश्यो की बहुत सी कथाऍ सन्दर्भित है, जिसका अर्थ है कि तत्कालीन समाज मे वैश्य वर्ग का महत्वशाली स्थान रहा। अनेक रत्नो से परिपूर्ण मथुरा नाम की नगरी थी, उसमे महल्लक नाम का एक वैश्य पुत्र था।[७२] पाटलिपुत्र मे बडे धनी कुल मे उत्पन्न देवदास नाम का वैश्य पुत्र रहा। पुष्करावती नगरी मे गुढसेन नाम का राजा था। उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह घमण्डी राजकुमार था। किसी समय उद्यान मे विहार करते हुए राजकुमार ने अपने ही समान रूप और धन वाले उस दत्त नामक बनिये के पुत्र को देखा। उसे देखते ही राजकुमार ने स्वयं वरण किया हुआ मित्र बना लिया। तभी से राजपुत्र और वैश्यपुत्र दोनो एकरूप अभिन्न रूप मित्र बन गये।[७३] 'स्वामी इस नगरी मे समुद्र नाम का एक बनिया है। वह व्यापार के लिए यहॉ से सुवर्णद्वीप चला या। प्राचीन समय मे

किसी नगर मे धर्मबुद्धि तथा दुष्टबुद्धि नामक दो वणिक पुत्र थे। वे दोनो धन कमाने के लिए अपने पिता के घर से दूसरे देश मे गये और सयोग से दो सहस्त्र दीनार उपार्जित किये।[७४] प्राचीन काल मे किसी वैश्य के पास पिता की सम्पत्ति मे से केवल एक लोहे का तराजू बच गया था। चार सौ तोले लोहे से बने उस तराजू को किसी बनिए के पास धरोहर रखकर वह वैश्य दूसरे देश चला गया। समस्त पृथ्वी की मस्तकमाला के समान लम्पा नामक एक नगरी है, उस नगरी मे उसमे कुसुमसार नामक एक धनी वैश्य था।[७५] कथासरित्सागर के एक दो अंकनो से ज्ञात होता है कि वैश्यपुत्र सामान्य रूप से गणित ज्ञान रखता था। मेरे कुछ बडे होने पर उस अकिंचन तथा दीनमाता ने गुरु से प्रार्थना करके मुझे अक्षर लिखना और अङ्कगणित हिसाब आदि समझना सिखा दिया।[७६]

कथासरित्सागर मे वर्णव्यवस्थान्तर्गत नामित तृतीय वर्ण को वैश्य, बनिया, वणिक तीनो संज्ञाओ से अभिहित किया गया है। इन अंकनो से एक तथ्य यह भी स्पष्ट होता है कि अधुनातन काल मे प्रचलित 'बनिया' संज्ञा मध्यकाल से ही लोकप्रिय रही है। धन सम्पत्ति वाले वणिक् की सेठ सज्ञा थी। जो आज भी लोकमान्य संज्ञा है।

कथासरित्सागर के अनुशीलनोपरान्त प्राचीन वर्ण व्यवस्थता मे विहित चतुर्थ वर्ण 'शूद्र' का विशेष अकन नही प्राप्त होता है। एक दो अंकनो से इस वर्ण के अस्तित्व का आभास मात्र मिलता है। हॉ उस कोटि की जातियॉ अन्य नामो

से समाज मे परिगणित रही। शूद्र वर्ण गर्हित था। "इसके अनन्तर वह योगनद एकात मे खेद के साथ व्याडि से बोला - जब मै ब्राह्मण होकर भी शूद्र हो गया। इसलिए मुझे इस अस्थिर लक्ष्मी से भी क्या लाभ।[७७] वर्ण व्यवस्था के व्यवस्थाकारो ने शूद्र के लिए समाज के पूर्वगामी तीनो वर्णो - ब्राह्मणो, क्षत्रिय एव वैश्य की सेवा करना प्रमुख धर्म विहित किया। ब्राह्मण की सेवा से यदि शूद्र की जीविका न चले तो क्षत्रिय की सेवा करे और वह भी न चले तो शूद्र धनी वैश्य की सेवा करके अपना जीवन निर्वाह कर सकते है।[७८]

कथासरित्सागर के एक अख्यान से ज्ञात होता है कि शूद्र बौद्ध धर्म को अधिक सुकर मानता था। स्नान शौच आदि से हीन और अपने समय पर भोजन के लोभी शिखा एव केश का मुण्डन कराकर केवल कौपीन धारण करने वाले तथा बिहारो (मठो) मे स्थान मिलने के लोभ से सभी नीच जाति के व्यक्ति जिस बौद्ध धर्म को ग्रहण करते है उससे हमारा क्या प्रयोजन।[७९] 'अधम' जातक का प्रयोग यहॉ शूद्र के लिए कदाचित किया गया है।

उस काल मे एक वर्ग विशेष था जो कार्य विशेष के आधार पर ही विशेष नाम से अभिहित होता था जिसे महाकवि कल्हण और कवि क्षेमेन्द्र ने 'कायस्थ' अभिसंज्ञित किया है जो शबर भील आदि जातियो एव चारो वर्णो से विलग रहा है। अस्तु। अब हम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एव शूद्र वर्णो से इतर जातियो के

अस्तित्व पर प्रकाश डालना चाहते है। जॉतियो मे विशेष रूप से दस जातियॉ आख्यानो के घटनानुक्रम मे सदर्भित उपलब्ध होती है।

मिश्रित जातियाँ

नापित

यह क्षौर कर्म परम चतुर, धूर्त और परिहास प्रिय रसिक जनो का विशेष रूप से प्रिय होता था। कथासरित्सागर मे अकन है - मेरा एक नापित मित्र है वह इस प्रकार के कार्यो मे बडा ही निपुण है निश्चित ही वह कोई न कोई उपाय कर सकता है। यह सोच वह भिक्षुणी उस नापित के पास गयी। उससे अर्थ लाभ वाली अपनी सभी योजनाए व्यक्त की। नापित ने सोचा-मेरा भाग्य है जो यह लाभ का अवसर अनायास प्राप्त हो गया। नयी राजवधू को मारना उचित नही, अपितु उसकी रक्षा के उपाय करने चाहिए। रानी का पिता दिव्य दृष्टि रखता है उसे सब कुछ पता चल जायेगा। इस स्थिति मे उसे राजासे पृथक कर के महारानी का धन हडपना श्रेयस्कर है।[८०]

शबर

यह वन मे निवसने वाली वन जीवो का आखेट कर जीवन निर्वाह करने वाली जाति रही। सॉपो को लेकर जनसमूह के समक्ष क्रीडा कौतुक का प्रदर्शन

भी करती थी। इनका पृथक कबीला था। उनका मुखिया शबराधीश कहा जाता था। आलोच्य ग्रन्थ मे शबर जाति का उल्लेख प्राप्त है। किसी समय हिरण के आखेट के प्रसग मे भ्रमण करते उदयन ने एक सबर द्वारा पकडे गये एक सर्प को देखा। सुन्दर सर्प को देखकर उदयन ने सबर से उसे मुक्त कर देने के लिए कहा। सबर ने कहा- स्वामी यह मेरी जीविका का साधन है। मै अत्यन्त निर्धन हूँ सापो के क्रीडा-कौतुक का प्रदर्शन कर जीविका चलाता हूँ।[८१]

पुलिन्द

बिन्ध्यगिरि की उपत्यका के गॉव मे बसने वाली यह जगली जाति थी। यह जाति शक्ति की उपासक रही-विन्ध्य-सीमा पर निवास करने वाले पुलिन्द जाति के राजा को वत्सराज के मत्री ने उसे प्रबल एवं विशाल सेना सहित तैयार रहने के लिए कहा जिससे वत्सराज को लेकर लौटते समय यदि पीछे से आक्रमण हो तो प्रथमत समर भूमि यही बने। उस मदिर मे बलिदान करने के लिए वे लुटेरे मुझे देवी के उपासक पुलिन्दक नामक अपने सरदार के पास ले गये।[८२]

भील

यह भी एक देवी उपासक पुलिन्द की ही भाति बनवासी जाति थी। कथासरित्सागर इस जाति के स्वरूप और देवी उपासना का उल्लेख करता है।

महाराज आगे भीलो की बडी सेना है। उन भीलो ने हमारे पचास हजार हाथी मार डाले और एक हजार पदाति बल के साथ तीन सौ घोडे भी उन्होने मार डाले है। इसी प्रकार हमारे सैनिको ने भी दो हजार भील मार दिये। यदि हमारी सेना मे एक शव देखा जाता था तो उनकी सेना मे भी। तब उनके बाण वज्रो से मारे जाते हुए हमारे सैनिक वहॉ से भाग आये। ऐसा सुनकर कोपाविष्ट नृप पृथ्वीरूप ने एक भाले से भीलो के सरदार का सिर काट डाला।[८३]

निषाद

समुद्र के मध्य उत्तस्थल नामक एक द्वीप है, वहॉ सत्यव्रत नामका एक सम्पन्न निषाद राज है। उसका प्राय सभी दूरस्थ द्वीपो मे आना-जाना है। अत सम्भव है कि वह उस नगरी को कही देखा सुना हो। इसलिए सर्वप्रथम तुम यहॉ से समुद्र के निकटस्थ विटकपुर नामक नगर जाओ वहॉ से किसी बनिए के साथ उस निषाद राज के पास अपनी उस इष्ट सिद्धि-निमित्त प्रस्थान करो।[८४]

शबर, पुलिन्द, निषाद की ही प्रकृति-प्रवृत्ति की कुछ अन्य वनवासी जातियो एवं समाज मे रहने वाली जातियो के भी अंकन कथासरिसागर मे उपलब्ध होते है। यथा-

धीवर

समुद्र तट पर बसे हुए उस नगर मे निवसने वाला धीवरो का सरदार सागरवीर उस वैश्य से मिला। वह समुद्रजीवी सागर वीर के साथ जहाज से जा रहा था, एक दिन जलती हुई बिजली रूपी ऑखो वाला प्रचण्डत्रास एव भय उत्पन्न करने वाला मेध आकाश मे दीख पडा।[८५]

व्याध

वहॉ मॉस विक्रयकर जीवन निर्वाह करने वाला एक धर्म व्याध है, जाकर उससे मिलो। इससे तुम्हे अहंकारहीन कल्याण लाभ प्राप्त होगा।[८६]

डोम्ब

यह जाति डोम नाम से जानी जाती थी। कथासरित्सागर मे इसका उल्लेख हुआ है- नगर के बाहर पकडे जाने की शका से भागते हुए उसे देख, उसका धन हस्तगत करने की लालच मे एक डोम्ब ने उसे पकड लिया। धूर्त सिद्धिकरी ने सब कुछ समझ लिया और नम्रतापूर्वक दीन वाणी मे कहा- आज मै अपने पति के साथ कलह करके मर जाने के उद्देश्य से घर छोडकर भाग आयी हूॅ। इसलिए हे भद्र। मेरे लिए फांसी का फदा तैयार कर दो। डोम ने सोचा- फॉसी

के फदे से स्वयं ही मर जाय, कितना अच्छा होगा, मै क्यो स्त्री की हत्या करूँ, सिद्धिकरी ने कहा - फासी का फदा गले मे कैसे फसाया जाता है, यह फसाकर दिखा भी दे। मूर्ख डोम ने पैर के नीचे ढोल रख दिया, और फदा गले मे फसाकर उसे दिखाया। सिद्धिकरी ने लात मारकर ढोलक को तोड दिया, डोम स्वय ही लटक कर मर गया[८७], कथासरित्सागर मे काष्ठ का कार्य करने वाली जाति बढई एव कपडा बुनने वाली जाति तन्तुवाय[८८] का भी अकन हुआ है। बढई का नाम यत्रकार[८९] के रूप मे 'तक्षा' मिलता है।

ग्यारहवी-बारहवी शती मे एक वर्ग विशेष, जिसका प्रमुख कार्य राजकीय अभिलेख तैयार करना था, वह किसी वर्ण का हो सकता था। वह शनै.-शनै 'कायस्थ' की सज्ञा से अभिहित होने लगा था। अर्थात् कथासरित्सागर के रचनाकाल तक कदाचित् यह एक जाति के रूप मे मान्य होने लगा था। 'गुप्तकाल मे लेखको को कायस्थ कहा गया है। दामोदरपुर के ताम्रपत्रो से ज्ञात होता है कि प्रथम 'कायस्थ' स्थानीय शासन मे भाग तो लेता था तथा प्रतिनिधि समिति का एक महत्वपूर्ण सदस्य होता था। (एपीग्राफिया इण्डिया/जिल्द ४७)। प्रथम कायस्त शब्द से प्रतीत होता है कि उस समय कायस्थो का कोई व्यवसाय अवश्य रहा होगा। गौरी शंकर हीरा चन्द्र ओझा ने लिखा है कि- ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि लेखक थे और वे कायस्थ कहलाते

थे (मध्यकालीन भारतीय संस्कृति/पृष्ठ ४७)। शूद्रक ने कायस्थो को न्यायालय लेखक बताया है। (अधिकारिण अहो व्यवहारपद प्रथमम्भिलीख्यताम् - मृच्छकटिकम्/ ९ राजकीय कार्यो तथा न्यायालयो के लेखक (मुंशी अथवा मुहर्रिर) का काम करने के कारण कायस्थो को षड्यंत्रो और कूटनीति विषयक राज्य की सारी गुप्त से गुप्त बातो एवं दावपेचो का ज्ञान रहता होगा। (शूद्रक ने इसलिए कायस्थो की तुलना सर्प से की है।)

"नानावाशककङ्कपक्षिरुचिर कायस्थसर्पास्पदम् ।
नीतिक्षुपणतटञ्च राजकरणं हिस्त्रै समुद्रायते।।"

-मृच्छकटिक/९ १४[१०]

कायस्थसञ्ज्ञक किसी वर्ण अथवा जाति का अस्तित्व हमारी सामाजिक वर्णव्यवस्था मे कथमपि नही। तथापि मध्यकाल मे कायस्थ एक जाति विशेष का स्वरूप सामाजिक स्थिति मे लोकमान्य हुआ। आज तो भारतीय समाज मे वह बहुचर्चित जाति है।

'कल्हण' क्षेमेन्द्र की भांति कथासरित्सागर के कवि सोमदेव भट्ट ने भी अपने ग्रन्थ मे 'कायस्थ' का उल्लेख करना विस्मृत नही किया है। यहाँ उसकी प्रकृति प्रवृत्तिजनित सभी विशेषताओ का विवेचन अवश्य नही है, पर सामान्य परिचय से ही उसके महत्व का आभास हो जाता है।- इन मेरे दोनो लडको ने पृथ्वी को विजित कर तथा मेरा बध करके मेरे राज्य पर अधिकार स्थापित कर लेने का

निश्चय किया है। इसलिए तुम लोग यदि मेरे सच्चे स्नेही और भक्त हो तो बिना विचार किये इन दोनो का बध कर दो। इस प्रकार सेना अधिकारियो के नाम राजा का आज्ञापत्र कायस्थ से घूस देकर लिखवा लिया तथा धन देकर सन्देश ले जाने वाले दूत के हाथ काव्यालङ्कारा ने गुप्त रुप से सेना के शिविर मे भेज दिया। दूत ने शिविर मे जाकर पत्र दे दिया। राजा को उसके लेख दिखाकर यह समाचार सुना दिया। राजा यह सब सुनकर और समझकर कोपाविष्ट होकर उनसे कहा ये लेख पत्रादि मेरे भेजे हुए नही है। यह क्या इन्द्र जाता है? मूर्ख तुम क्या यह नही जानते कि घोर तपस्या के प्रभाव से प्राप्त किये हुए बच्चो को मै स्वय कैसे मारता? तुम लोगो ने तो उन्हे मार ही डाला था। केवल अपने पुण्य से वे बच गये है। उनके नाना ने भी मत्री होने का फल दिखा दिया। ऐसा कहकर उसने उन सब अधिकारियो तथा भागे हुए भी उस मिथ्याचारी लेखक को पकडकर बुलाया और सबको मरवा डाला तथा ऐसे नीच कार्य करने वाली पुत्रघातिनी काव्यालंकारा को भी गड्ढे मे डलवा दिया।[९१]

एक अन्य दृष्टान्त कल्हण की राजतरगिणी से द्रष्टव्य है - इसके अतिरिक्त ग्राम स्कन्दक तथा ग्राम कायस्थ (पटवारी) आदि कर्मचारियो के मासिक वेतन पर विविध दु खदायी करो का भार लादकर उसने गावो की जनता को अतिशय कंगाल बना दिया। गुणीजनो की आर्थिक क्षति तथा राजाओ की कीर्तिनष्ट होने के मूल

कारण इन दुष्टदासीपुत्र कायस्थो का प्रभाव उस मूर्ख राजा के समय से ही बढा, उस राजा की अनवधानता से सारा कश्मीर राज्य कायस्थो का उपभोग्य पदार्थ बन गया, जिससे राजा ही प्रजा को चूस रहा है, यह अपकीर्ति चारो ओर प्रसरित होने लगी।[९२] इसके अतिरिक्त कल्हण की राजतरगिणी मे कायस्थो से सम्बधित अनेक आख्यान उपलब्ध होते है।[९३]

आश्रम, पुरुषार्थ एवं संस्कार

भारतीय सस्कृति के अविच्छिन्न स्वरूप का आधार सुसगठित समाज-व्यवस्था, उसके नियमन निमित्त वर्णव्यवस्था, उस वर्णव्यवस्था के स्थायित्व-प्रतिस्थापन का आधार वर्णाश्रमधर्म, वर्ण-आश्रम-धर्म प्रतिष्ठा की जीवन्तता, वर्णो के लिए विहित विविध सस्कारो के सगमन-संपादन की व्यवस्था, ऋषियो द्वारा की गयी। आश्रम सस्कार एव पुरुषार्थ तीनो अन्योन्यानुगमित और साधन-साध्य तथा साधक स्वरूप है। जीवन-जीविति की दृष्टि से संस्कार, आश्रम फिर पुरुषार्थ का क्रम है। संस्कार की भूमि पर आश्रम-व्यवस्था और आश्रम व्यवस्थानुकूल पुरुषार्थ प्राप्ति। पुरुषार्थ जीवन की पूर्णता के सूत्र है- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। प्रकारान्तर से यह पुरुषार्थ चतुष्ट्य, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास चारो आश्रमो की अपर संज्ञा के रूप मे अभिहित और प्रतिष्ठित स्वीकार किये जाये तो यह अनुचित नही होगा। आश्रम व्यवस्था क्रम मे सर्वप्रथम है-

ब्रह्मचर्य आश्रम- यह जीवन का प्रथम और सुदृढ सोपान माना जाता रहा है। यही पुरुषार्थ का भी प्रथम सोपान है। आश्रमो के क्रमोल्लेख मे विभिन्न धर्म व्याख्याकारो ने पृथक् -पृथक् दृष्टिकोणो का अनुगमन किया है, परन्तु चारो को स्वीकार अवश्य किया है। प्रथम ब्रह्मचर्याश्रम अध्ययन और अनुशासन काल माना जाता था। इस अवधि मे जीवन के विकास, अभ्युत्थान और दैहिक, भौतिक, मूलभूत सूत्रो से परिचय प्राप्त करने के लिए समग्र-आमोद-प्रमोद सुख-सुविधा से विमुख रहकर, मानसिक एव शैक्षिक शक्ति का सचय किया जाता है। यह ब्रह्मचर्याश्रम उपनयन-संस्कार के पश्चात् प्रारम्भ होता है। व्यवस्थाकारो ने जीवन की अवधि शतवर्ष अनुमान उसे समयावधि वाले चार आश्रमो मे विभाजित किया था। ब्रह्मचर्याश्रम प्रथम आश्रम और प्रथमवय की पच्चीस वर्ष पर्यन्त अवधि का निश्चित किया गया था। इस आश्रम मे प्रवेश करने के लिए उपनयन संस्कार होना अनिवार्य कहा गया है।

मध्यकाल मे यद्यपि वर्णव्यवस्था मे विहित नियमो मे कुछ सीमा तक शिथिलता आ गयी थी। तथापि संस्कारादि पूर्व विनिश्चित विधानो और समयावधि मे सम्पन्न होते रहे। यही कारण है कि ग्यारहवी एवं आश्रम-प्रतिष्ठा का अकन किया है। वेदाध्ययन के लिए गुरुकुल-प्रवेश के पूर्व उपनयन संस्कार आवश्यक है। 'प्रात.काल व्याडि ने उत्सव करने के लिए अपना धन मेरी माता को प्रदान कर दिया और मुझे वेदाध्ययन के योग्य बनाने के निमित्त मेरा उपनयन संस्कार किया, जिससे मै योग्य बनकर

वेदो का अध्ययन कर सकूं।[९४] इतना ही नही कथासरित्सागर मे एक स्थान पर मनुष्य को जीवन मे समुचित विकास प्राप्त करने के लिए, सभी आश्रमो के सम्यक् पालन करने की सलाह प्रकट की गयी है। वैराग्योन्मुख अपने पुत्र को समझाते हुए पिता कह रहा है - 'राजा अलकारशील ने पुत्र धर्मशील से कहा- 'पुत्र इस यौवनकाल मे ही तुम्हे यह कैसा भ्रम हो गया है? विद्वान् जन युवावस्था का उपभोग हो जाने पर ही वैराग की कामना करते है। यह समय विवाह करके धर्मपूर्वक राज्य का पालन करने का है। यह तुम्हारे लिए सांसारिक भोगो को भोगने का समय है, वैराग्य का नही।[९५]

आश्रमो के क्रम मे दूसरा स्थान **गृहस्थाश्रम** का है - समावर्तन संस्कार के पश्चात् ब्रहमचर्याश्रम की समाप्ति हो जाती है- 'अपने धर्म करने के प्रसिद्ध पिता अथवा गुरु से वेद पढे हुए, माला धारण किये और उत्तम आसन पर बैठे हुए, ब्रह्मचारी का पूजन पहले तो दुग्ध आदि के मधुपर्क से करे। जब द्विज विधिपूर्वक (व्रत) स्थान और समावर्तन कर चुके तब गुरु की आज्ञा से अपने वर्ण की शुभ लक्षणो वाली कन्या से विवाह करे।[९६] वर्ण व्यवस्था मे आश्रमो का उल्लेख करते हुए इस आश्रम (गृहस्थाश्रम) का सर्वप्रथम अंकन किया गया है, क्योकि जगत् मे धर्म, अर्थ तथा काम एव मोक्ष- मार्ग के साधन का आधार यही है। इन सब चारो ही आश्रमो मे, वेद और स्मृति की विधि से चलने वाली गृहस्थाश्रम को

ऋषियो ने श्रेष्ठ कहा है, क्योकि यह गृहस्थ आश्रम तीनो आश्रमो का पालन करता है - जैसे सब नदी-नद समुद्र मे जाकर स्थिर होते है, उसी प्रकार अन्य सब आश्रम वाले गृहस्थाश्रम के साधन से जीते है।[९७]

यह गृहस्थाश्रम ब्रह्मचर्याश्रम के समावर्तन सस्कारोपरान्त विवाह से प्रारम्भ होता है। विवाह एक अत्यत महत्वशाली सामाजिक सस्कार है। इसी से मनुष्य का सासारिक जीवन प्रारम्भ होता है। ब्राह्मण धर्म मे पुत्र-प्राप्ति अत्यन्त आवश्यक समझा जाता है। पितरो की सतुष्टि के लिए तर्पणादि की आवश्यकता थी, इसलिए विवाह को परमश्रेष्ठ स्थान दिया गया है, क्योकि पुत्र की प्राप्ति गृहस्थाश्रम से ही सम्भव है।[९८] इस गृहस्थ आश्रम का प्रथम सोपान है- विवाह। इस विवाह सस्कार का अकन कथासरित्सागर मे प्राप्त होता है- दूसरे दिन दोनो का विवाह संस्कार सम्पन्न हुआ। गोपालक सारे दिन विवाह-महोत्सव के प्रबन्ध मे व्यस्त रहा। रति रूपी लता से निकले उस नव पल्लव के समान कोमल वासवदत्ता के हाथ को वत्सेश्वर ने ग्रहण किया। उस का स्पर्श होने पर वासवदत्ता उस स्पर्श के गम्भीर आनन्द मे निमग्न हो गयी। उसके शरीर मे कम्पन और पसीना होने लगा।[९९] पुत्र जन्म का भी गृहस्थाश्रम मे सर्वाधिक महत्व एव पुण्यकर्मो का प्रतिफल रूप परिगणित होता है। पिता के तर्पणादि का ऋण पुत्रोत्पत्ति बिना सम्भव नही होता।
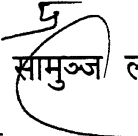
'कथासरित्सागर' मे पुत्रोत्पत्ति, पुत्र जन्मोत्सव तथा पुत्र के नामकरण की प्रक्रिया का अंकन भी किया गया है- देवताओ द्वारा मनाये गये उत्सव से अत्यन्त उत्साहित और प्रसन्न होकर राजा ने अपने विस्तृत राज्य मे व्यापक पुत्र जन्म महोत्सव मनाया। उस अवसर पर राजा के परम हितैषी यौगन्धारायण आदि भी अतिप्रसन्न हो रहे थे। उसी समय आकाश से इस प्रकार की वाणी हुई- 'राजन् तुम्हारा यहपुत्र कामदेव का अवतार है, इसका नाम नरवाहनदत्त होगा। यह वीर एक दिव्ययुग तक विद्याधरो का चक्रवर्ती राजा रहेगा।[१००] एक अन्य स्थल द्रष्टव्य है- उस ब्राह्मण को अपनी पत्नी से शुभ लक्षणो वाला एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके उत्पन्न होते ही आकाशवाणी हुई- हे चन्द्रस्वामी, तुम इस बालक का नाम महीपाल रखना, क्योकि यह राजा होकर चिरकाल-पर्यन्त पृथ्वी का पालन करेगा। इस प्रकार दिव्यवाणी को सुनकर चन्द्रस्वामी ने पुत्र जन्मोत्सव करके उस शिशुका नाम महीपाल ही रख दिया।[१०१] समाज सगठन एव वर्णव्यवस्था की सुदृढता की दृष्टि से यह गृहस्थाश्रम सभी आश्रमो मे श्रेष्ठ है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ तथा सन्यासी सबके सब गृहस्थो पर ही आश्रित है- जीवन निर्वाह ही नही अपितु संरक्षण भी इसी गृहस्थाश्रम के मुखिया गृहस्थ पर निर्भर रहते है। जिस प्रकार समस्त प्राणी वायु पर निर्भर है तथा उसी प्रकार सभी आश्रम गृहस्थ आश्रम पर निर्भर रहते है। अन्नदान और ज्ञानदान द्वारा गृहस्थ अन्य तीनो कोटि के आश्रमियो का वहन करता है। अत गृहस्थ ही सर्वोच्च और सर्वोत्तम

है। इसीलिए मनु आदि सामाजिक व्यवस्थाकारो ने गृहस्थ आश्रम को सर्वश्रेष्ठ निदर्शित किया, यह तीनो आश्रमो का पोषक एव वर्णव्यवस्था का आधार है।[१०२]

गृहस्थाश्रम मनुष्य के लिए भौतिक सुखोपभोग का काल होता था। इस आश्रम मे रहकर, मनुष्य पचमहायज्ञो और पितृऋणो, देवऋणो से मुक्त होकर परलोक साधनार्थ तृतीय आश्रम एव चतुर्थ सन्यासाश्रम की राह पकडता था। ऐसी प्राचीन व्यवस्थाको ने विधान प्रस्तुत किया था। दूसरे शब्दो मे तृतीय एव चतुर्थ आश्रम मोक्ष-निवृत्ति प्राप्त करने के लिए विहित किये गये थे। गृहस्थाश्रम मे निवसते मनुष्य अर्थ तथा काम का यथेच्छ उपभोग करता है। गृहस्थाश्रम के दायित्वो के साथ-साथ वानप्रस्थ और सन्यासाश्रमियो के जीवन-निर्वहन का भी दायित्व वहन करता रहता था। इस सब दायित्वो से नृिवत्त होकर निज जीवन के दायित्व के निर्वहन-निमित्त गृहत्यागी बनता था। मनु की व्यवस्थानुसार विधिपूर्वक गृहस्थ आश्रम मे निवास करे, उसके पश्चात् शास्त्रोक्त रीति से इन्द्रियो का दमन कर नियमपूर्वक बन मे निवास करे।

जब गृहस्थ धर्म का पूर्ण निर्वहन कर ले और देखे कि शरीर की त्वचा शिथिल पड जाय, और केश श्वेत हो गये, पुत्र के भी पुत्र हो चुका है तो वन का आश्रम ले लेना चाहिए। गांव के आहार (ब्रीहियव आदि) को तथा (शय्या वाहन आदि) सबकुछ त्यागकर पत्नी को पुत्रो के साथ सौप कर (अथवा पत्नी को भी

साथ लेकर) बन गमन करे।[१०३] कथासरित्सागर मे ऐसे अकन प्राप्त होते है, जिससे ज्ञात होता है कि व्यवस्थाकारो द्वारा विहित इस वानप्रस्थ और अन्तिम सन्यासाश्रम के अनुगमन की परम्परा प्रतिष्ठित थी। आश्चर्य है कि सार-रहित तथा नीरस सासारिक भोग मे आसक्त रहकर मैने कितना कष्ट पाया । इसलिए अब वन मे जाकर भगवान् की शरण ग्रहण करता हूँ। जिससे फिर ऐसे कष्टो का भोग न करू। उसने अपना सम्पूर्ण राज्य पापभजन नामक एक श्रेष्ठ द्विज को विधिपूर्वक दान मे देकर और शेषधन पत्नी शीलवती और अन्यान्य ब्राह्मणो को दान कर सर्वथा विरक्त हो गया।[१०४]

इसी प्रकार एक अन्य स्थल द्रष्टव्य है- 'राजा चन्द्र केतु पुत्र के साथ चिर-काल पर्यन्त विद्याधर साम्राज्य की लक्ष्मी का उपभोग किया तथा अन्त मे विरक्त होकर, अपने साम्राज्य का भार अपने पुत्र को सौप करके अपनी रानी के साथ तपोवन मुनि के आश्रम मे चला गया। उसका पुत्र कालकेतु भी राज्यसुख का पूर्णत उपभोग किया और अन्तत उसने भी सासारिक सुख को परिणामत रसहीन अनुमान कर मुनिराज तपोवन के आश्रम मे निवास करने लगा। वहा तपस्या के प्रभाव से परम् ज्योति प्राप्त कर शिव का सामुञ्ज लाभ किया।[१०५] अब मै मोह का त्यागकर प्रभु की शरण मे जाता हूँ।[१०६] वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम द्वारा सुकृत, धर्म एवं मोक्ष की प्राप्ति हेतु चेष्टा करना और जीवन के अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु साधना करना विहित है।

भारतीय सस्कृति मे पुरुषार्थ चतुष्ट्य अर्थात् धर्म, अर्थ,काम एव मोक्ष का साधन करना मनुष्य का परम कर्तव्य है। भौतिक दृष्टि से देखा जाय तो सभी पुरुषार्थो का मूल अर्थ है। अर्थ के माध्यम से धर्म, काम और मोक्ष सभी प्राप्तव्य है। 'कथासरित्सागर' मे भी पुरुषार्थ के कतिपय अंकन प्राप्त होते है जो तत्कालीन सामाजिक स्थिति के नितान्त अनूकूल था। वह युग शनै शनैः भारतीय सस्कृति के मूलाधारो से पतित हो रही थी। भारतीय सस्कृति परमोदात्त एवं परम शिव की जीवनेषणा के प्रति भ्रमित अवधारणा से आक्रान्त होने लगी थी। धर्म एवं मोक्ष की अवधारणा काम एवं अर्थ के लास से लसित होकर अवसानोन्मुख हो रही थी। अर्थ सबका आधार बन चुका था- ईश्वर वर्मा वर्ष पर्यन्त यमजिह्वा के स्वर मे रहकर शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् सोलहवा वर्ष प्राप्त होने पर पिता के घर वापस आ गया। उसने पिता से कहा-धर्म एव अर्थ मे दोनो पुरुषार्थ अर्थ से ही सिद्ध होते है। अर्थ की उपासना से श्रेष्ठतर अन्य कोई उपासना नही है।[१०७] इस काल मे तपश्चर्या का भी महत्व स्वीकार्य था- 'तुमने जो उस मेरे ककाल को इस तीर्थ मे फेक दिया, यह अत्यन्त उत्तम कार्य किया, क्योकि तुम मेरे पूर्व जन्म के मित्र हो उसी पूर्व जन्म के तप-प्रभाव से मै ज्ञानी तथा राजा हुआ।[१०८]

निष्कर्षत कथा सरित्सागर के अनुशीलन से स्पष्टत परिज्ञात होता है कि उसमे भारत वर्ष की प्राचीन समाजगत सगठनात्मक शक्तिधारक वर्णव्यवस्था की प्रतिष्ठा

रही और सामाजिक स्थिति की पवित्र सुदृढता मे वर्ण-व्यवस्था को पूर्णत मान्यता प्रदान की गयी थी। तद्नुसार ही वर्णों के धर्म-कर्म एव आचार-विचार निष्पन्न होते एव तद्सापेक्ष समाज की परम्परागत अनुक्रमित नीतियो का संचरण, समाज की उदात्त। इयत्ता की संवाहिका थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य स्व-स्व कर्मो के अनुपालन, सम्पादन मे निरलस सलग्न रहे। वर्ण व्यवस्था विहित चारो वर्णो से इतर भी कतिपय जातियॉ अवश्य रही-किन्तु उनका विशेष अवदान नही प्रतीत होता, जिसका एकमात्र कारण उनका वनवासिनी होना माना जा सकता है। कथा सरित्सगार मे समाज के एक सुव्यवस्थित स्वरूप का अंकन मिलता है- विद्वान, शूरवीर, पराक्रमी, सम्पत्तिशाली, महासेठ, योद्धा, ज्योर्तिविद् वैद्य, काष्ठकार एवं तन्तुवाय जिनमे प्रमुख थे। द्विजाति वर्ग, धर्म, अर्थ, काम एव मोक्ष, पुरुषार्थ चतुष्ट्य के साधक तथा उनमे से क्षत्रिय वर्ण उनके सरक्षण मे सतत् तत्पर रहे।

संदर्भ एवं पाद-टिप्पणी

१ भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास डा० विमल चन्द पाण्डेय/पृष्ठ ९५

२ वही/पृष्ठ ९७

३ वही/पृष्ठ १७-१८

४ सहस्त्रशीर्षा पुरुष त्रिपादस्यामृतदिवि।।
-ऋग्वेद १०/९०/१, २, एव १२

५ एतै वे देवा प्रत्यक्ष यद् ब्राह्मणा। -तैत्तरीय सहिता/१-७ ३१

६ यावती वै नमर्स्कुयात।। -आरण्यक/३-१५

७ दैव्यो वै वर्णो ब्रह्मणा। - तैत्तरीय आरण्यक/१, २, ६
ब्रह्म हि पूर्व श्रयात -ताण्डय आरण्यक/११, १२
स्वधर्मो ब्राह्मणा प्रतिग्रहश्चेति -कौटिल्य/३-५

८ इण्डिका/अश ११/ मित्र सार्धुदान - अशोक अभिलेख ३
ब्राह्मण समणान -अशोक अभिलेख ८
वामन समनेसु कपन वलाकेषु -स्तम्भलेख ७

९ ब्राह्मण प्रथमो प्रादुर्भूता वर्णा प्रादूर्भूता।
-महाभारत/१२/३४२–२१

द्विपदा ब्राह्मणो वर। भूमिचरा देवा ।।
-महाभारत। ४-२-१५ तथा १२/३९-२

१० भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास डॉ० विमल चन्द्र पाण्डेय/पृष्ठ २७

११ हिस्ट्री आफ इण्डिया इलियट और डाउसन/वाल्यूम १/पृष्ठ ६

१२ उत्तमाङ्गोद्भवाज्यैष्ठयाद्ब्रह्मणश्चैव ब्राह्मणा प्रभु ।। -मनु०/१-९३
सर्वे स्व ब्राह्मणोऽर्हति।। -वही/१-१००
अविद्वाश्चैव यथाग्निर्दैवत महत् ।। -वही/९-३१७
ब्राह्मण दशवर्त तयो पिता -मनु०२-१३५
सर्वेषाम् प्रभावे ते ब्रह्मणा की भागिन।

मै विद्या शुचयो दान्तास्तथा धर्मो नहीयते॥

महर्षि ब्राह्मणव्य राज्ञा नित्यमित स्थिति
इतोषा नुवर्णाना सर्वभावे हरेमृप ॥ -मनु०८/३८१

शत ब्राह्मणमाक्रुश्य द्वादशको दम ॥ -मनु० ८/२६७-६८

म्रियमाणोऽप्याददीत न राजा विषये वसन् ॥

श्रुत्रवृत्ते विदित्वास्य राष्ट्रमेव च॥ -मनु०७/१३३, १३५-३७

वेदमेवाभ्यसेन्नित्य उच्यते॥ -मनु०४/१४७

१३ सर्वान्परित्यजेदर्थान्स्वाध्यायस्य ०कृतकृत्यता॥ -मनु०४/१७

१४ न लोकवृत्त जीवेद्ब्रह्मणजीविकाम् ॥ -मनु०४/११

नहेतार्थान्प्रसङ्गेन नार्त्यामपि यतस्तत ॥ -मनु० १/१५

तप श्रुत च योनिश्च ब्राह्मणलक्षणम्॥ - पतञ्जलि

१५ सर्वापराधेष्वपीडनीयो ब्राह्मण वासये दारकेषु व।

- कौटिल्य/४-८

१६ प्रायश्चिन्ते विभीर्षान्ति विकर्मस्यास्तु येहिज
ब्रह्मणा चपरित्यक्ता तेषाम्ध्यतदादिशेत्॥
दद्गर्हितनार्च पाति कर्मणा ब्राह्मणधनम्।
तस्योत्सर्पेण युद्धपतिजप्येन तपस्वैच॥ - मनुस्मृति/९२-९३/१२२

१७ हिरण्य भूमिमश्व गौरिव सीदति॥ - मनुस्मृति/४/१८८-९१

१८ शस्त्र द्विजातिभिर्ग्राह्य न दुष्यति॥ - मनुस्मृति ८/३४८-४९

१९ आपदि व्यवहरेत विशेषेण विक्रीणीयात - आपस्तम्ब/१, ७, २०, १३-१२

२० हिन्दू धर्मशास्त्र का इतिहास काणे/भाग २/ पृष्ठ २३१-३२

---

२१ देवद्विजसपर्या हि कामधेनुर्मता सताम् ।
कि हि न प्राप्यते तस्या शेषा सामादिवर्णना ॥ - कथासरित्सागर/लम्बक ३/ तरग ३/१३४

२२ ततोऽसामान्यतद्रूपलोभलुण्ठितलज्जया।
तयाप्यूचे स विनमद् वक्त्रया मुनिपुङ्गव ॥

एषा यदीच्छा डलचो नमाखसारो न चेदयम् ।
तद्देव दाता नृपति पिता मे याच्यतामिति॥ - कथासरित्सागर/लम्बक ६/ तरग २/८१-८२

२३ स दरिद्रश्चतुर्वेदो गुणैर्युक्तस्तदन्तिकम्
प्रतिग्रहार्थी प्राविक्षत्तदा द्वा स्थनिवेदित ॥

सा तस्मै वेदसख्याकान् ददौ सौर्वपुभुजान् ।
अर्चिताय व्रतक्षामैरङ्गैर्विरहपाण्डुरै ॥ -कथासरित्सागर/लम्बक ७/ तरग ४/१०२-१०३

२४ तेन सम सा जिगमिषुरसहा विरहस्य मदनमालापि।
त्यक्ष्यन्ती त देश ब्राह्मणसादकृत वसति स्वाम् ।। -वही/१५७

२५ क्रमात्स वृद्धि सम्प्राप्त श्रीदत्तो ब्राह्मणोऽपि सन्।
अस्त्रेशु बाहुयुद्धेषु बभूवाप्रतिमोश भुवि।।

द्वावेतस्याथ मिश्रत्व विप्रस्यावन्तिदेशजौ।
क्षत्रियौ बाहुशाली च वज्रमुष्टिश्च जग्मतु ।।

बाहुयुद्धजिताश्चान्ये दाक्षिमात्या गुणप्रिया ।
स्वयवरसुहृत्त्वेन मन्त्रिपुत्रास्तमाश्रयन् ।।

-कथासरित्सागर/लम्बक २/ तरग २/१५ और १९-२०

२६ उदतिष्ठत्समाकृष्य सोऽथ खड्ग मृगाङ्ककम् ।
सापि स्त्री राक्षसीरुप घोर स्व प्रत्यपद्यत।। -वही/वही/वही/७३

२७ स च शूरोऽतिरुपश्च वेदविद्यान्तगो युवा।
कलाशस्त्राविद्विप्र सिषेवे त नृप सदा।।

अथवोचत्स राजा त वियुद्ध यदि वेसित्स तत् ।
एक मे बन्धकरण शून्यहस्त प्रदर्शय।।

गृहाण देव शस्त्राणि मयि प्रहर च क्मात् ।
यावत्ते सर्धयामीति स विप्र प्रत्युवाच तम् ।।

तत स राजा खड्गादि यद्यदायुधमग्रहीत् ।
तत्तत्प्रहरतस्तस्यहुणसर्मावहेलया।।

तेनैव बन्दधकरणेनापहृत्यापहृत्य स ।
बबन्ध राज्ञो हस्त च गात्र चाप्यक्षतो मुहु ।। -कथासरित्सागर/लम्बक ८/ तरग ६/८ और २५-२८

२८ एतद्दिव्य वच श्रुत्वा स महीपालमेव मत् ।
चन्द्रस्वामिसुत नाम्ना चकार रचितोत्सव ।।

क्रमाच्च स महीपालो विवृद्धो ग्राहितोऽभवत् ।
शस्त्रावेद विद्यासु सम सर्वासु शिक्षित ।। -कथासरित्सागर/लम्बक ९/ तरग ६/८-९

२९ आक्षीणकोषनिचयप्रभवप्रभावात् ।
सम्भूतभूरिगजवाजिपदातिसैन्य ।

दानप्रसाद मिलिता खिलपार्थिवाना।
रुन्धन्बलैरवनिमुज्जयिनी जगाम।।

प्रख्याप्त तस्या तदशोकवत्या प्रजास्वीशील समरे च भूपम् ।
जित्वा महासेनमपास्य राज्यात्पृथ्वीपतित्व स समाससाद।। -कथासरित्सागर/लम्बक ८/ तरग ६/ २४८-२४९

सोऽपि श्रीदशनस्तत्र वृद्धि प्राप्त पितुर्गृहे।
प्रकर्ष वेदविद्यासु प्रापस्त्रेषु च वीर्यवान् ।। -कथासरित्सागर/लम्बक १२/ तरग ६/६९

ज्ञानविज्ञानिशूरेभ्यो नान्यमिच्छति सा पतिम् ।
इति तेनापि सोऽप्युक्त सूरमात्मानमभ्यधात् ॥

ततो दर्शितश्सत्रास्त्रश्रिये तसमै द्विजौऽनुजाम् ।
देवस्वामी स शूराय दातु ता प्रत्यपद्यत॥ -कथासरित्सागर/लम्बक १२/ तरग १२/२०-२१

३० लाइफ आफ द ब्राह्मणाज इन अर्ली मेडिवल इन्डिया एज नोन फ्राम कथासरित्सागर अर्पणा चट्टोपाध्याय (जनरल आफ ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट/वाल्यूम १६/ सन् १९६६/पृष्ठ ५२-५९)

३१ -कथासरित्सागर/लम्बक १२/ तरग ७/१५४-१५५
वही/वही/ तरग ६/६९ , वही/वही/ तरग १२/२०-२१

३२ अथ प्राङ्मुखसौवर्णभद्रपीठप्रतिष्ठित न पृथिवीमिमाम् ॥
-राजतरगिणी/तरग ३/ २३९-२४२

३३ द्विजस्तिब्याभिधो वीर कापुरुषोचितम् ॥ -राजतरगिणी/तरग ७/ ६७५-६७६
पर व्यायाम विद्याविद्रुते व्ययादर्यत् ॥ -राजतरगिणी/तरग ७/ १०७-७३
लवराज्ययशोराजद्विजौ त्रय परम् ॥ -राजतरगिणी/तरग ८/ १३४५
रणे पूर्णव्रणाश्यानशोणितो त्रातुमक्षमम् ॥ -राजतरगिणी/तरग ७/ ३०१८-१९

३४ शस्त्रास्त्र युद्धकुशलो वभूव कृतिनावर । - वृहत्कथा/गुच्छ/१ ५ ६१०
अशोकदन्त शस्त्रास्त्रकल्प विद्याविशारद ॥ - वही/५ ५ १२३

ततो विदूषकोऽवादी दहमेतत्करोमि भो ।
आनयामि निशि च्छित्वा मासास्तेषा श्मशानत ॥

ततस्तद्दुष्कर मत्वा तेऽपि मूढास्तमब्रुवन् ।
एव कृते त्वमस्माक स्वामी नियम एष न ॥

प्रविवेश च तद्वीरो निज कर्मेव भीषणम् ।
चिन्थितोपसिथताग्नेयकृपाणैकपरिग्रह ॥

डाकिनीनादसवृद्धगृध्रवायस-वाशिते।
उलकामुखमुखोल्काग्निविसफारितचितानले॥

ददर्श तत्र मध्ये च स तान् शूलाधिरोपितान् ।
पुरुषान्नासिकाछेदभियेवोर्ध्वीकृताननान् ॥

तेनापगतवेतालविकाराणा स नासिका ।
तेषा चकर्त्त बद्धवा च कृति जग्राह वाससि॥
-कथासरित्सागर/लम्बक ३/ तरग ४/१४३-१४४, १४६-१४८, १५१

यह विदूषक ब्राह्मणकथा - वृहत्कथामजरी मे भी - गुच्छ ५ मे विदूषक कथा अकित है।

३५ तत्रैवाधीतविद्योऽस्य स सुत प्राप्तयौवन ।
द्वितीयोऽशोकदतख्यो बाहुयुद्धमशिक्षत॥

क्रमेण च ययौ तत्र प्रकर्ष स तथा यथा।
अजीयत न कैनापि प्रतिमल्लेन भूतले॥ -कथासरित्सागर/लम्बक ५/ तरग २/११९-१२०

३६ मामद्यलोकयात्रा त्व शिक्षयैतेन साम्प्रतम्।
इति जल्पन्स तत्तस्यै स्वर्णमर्तितवान् द्विज ।।

प्रहसत्यथ सत्रस्थे जने किञ्चिद् विञ्चिन्त्य स ।
गोकर्णसदृशौ कृत्वा करावाबद्धसारणौ।।

तारस्वर तथा साम गायति स्म जडाशय ।
यथा तत्र मिलन्ति सम विटा हास्यदिदृक्षव ।।

ते चावोचन्शृगालोऽय प्रविष्टोऽत्र कुतोऽन्यथा।
तच्छीघ्रमर्धचन्द्रोऽस्य गलेऽस्मिन्दीयतामिति।। - कथासरित्सागर/लम्बक १/ तरग ६/५६-५९

३७ निर्ययुस्ते च ससक्तकलहा लोलनिष्ठुरा ।
भयकार्कश्यकोपाना इह हि च्छान्दसा द्विजा ।। - कथासरित्सागर/लम्बक ३/तरग ४/१०८

३८ अथवा दैवससिद्धावासृष्टेर्विदुषामपि।
कामक्रोधो हि विप्राणा मोक्षद्वारर्गलावुभौ।।
तदेव कामकोपादिरिपुषड्वर्गवञ्चिता ।
मुनयोऽपि विमुह्यन्ति श्रोत्रियेषु कथैव का।। - कथासरित्सागर/लम्बक ३/तरग ६/१३०, १३४

३९ स चापुत्रो बहून्विप्रान्सङ्घट्य प्रणतोऽब्रवीत् ।
तथा कुरुत पुत्रो मे यथा स्यादचिरादिति।।

ततस्तमूचुर्विप्रास्ते नैतत्किञ्चन दुष्करम्।
सर्वहि साधयन्तीह द्विज श्रौतेन कर्मणा।।

तथा च पूर्वमभवद्राजा कश्चिदपुत्रक ।
पञ्चोयेषट्याच तस्यैको जन्तुर्नाम सुतोऽजनि।
तत्पत्नीनामशेषाणा तूतनेन्दूदयो दृशि।। -कथासरित्सागर/लम्बक २/तरग ५/५५-५८

४० कथासरित्सागर/लम्बक १/तरग ५/४६

४१ स्वानुगैर्लुण्ठित नगरेऽप्यगात् ।। -राजतरगिणी/तरग ८/ २०६०-६१

४२ -राजतरगिणी/तरग ७/ ३९५-३९७

४३ पार्थ परमदुर्मेघा नगराधिकृत कृत ।। -राजतरगिणी/तरग ७/१०८

४४ क्षत्रस्यातिप्रवृद्धस्य ब्राह्मणान्प्रति प्रायम रणे।। - मनु स्मृति ९/३२०-३२३

४५ शौर्यतेजो स्वभावजम् ।। - महाभारत/ ६ ४२, ४३
क्व चारण्य क्व क्लेशयस्त्रहि।। - रामायण/अयोध्या/१०६-१८-२१

४६ तदर्थ कुपितायात तस्या भ्रातरमुथधतम्।
स सहस्त्रायुध नाम विद्या स्तम्भित व्यधात।।

मातुल च सहायात तस्य सस्तभ्य सानुगम् ।
चक्रे मुण्डितमूर्धान तत्कान्ताहरणैषिणम् ।। - कथासरित्सागर/लम्बक ८/तरग १/५८-५९

४७ कथासरित्सागर तथा भारतीय सस्कृति डॉ० एस० एन० प्रसाद/ पृष्ठ ७३-७४

४८ कृतकल्पतरु गार्हस्थ्य काण्ड/गार्हस्थ्य काण्ड/पृष्ठ २५१-२५८

४९ स्वकर्मब्राह्मणस्य पितृपूजन। -देवल

५० क्षत्रिस्याध्ययन यजन दान शस्त्राजीवो भूतरक्षण च।-कौटिल्य/३-६

५१ वितस्तापुलिने बाणलिङ्गे विहारेण व्यभूषयत् ।। -राजतरगिणी/तरग ८/३३४९-५२

५२ गृहीतसर्वनैरश्य स्थगिताश्वा पदे पदे।। - राजतरगिणी/तरग ७/१६१६-१८

५३ अनुजानीहि मा तात दिशो जेतु व्रजाम्यहम् ।
अजिगीषु पतिर्भूमेर्निन्ध्य क्लीब इव स्त्रिय ।।

धर्म्या कीर्तिकरी सा च लक्ष्मीरिह महीभुजाम् ।
या जित्वा पराराष्ट्राणि निजबाहुबलार्जिता।।

कि तेषा तात राजत्व क्षुद्राणामभिभुतये।
स्वप्रजामेव खादन्ति मार्जारा इव लोलुपा ।।

इत्यूचिवान् स तेनोचे पित्रा सागरवर्मणा।
नूतन पुत्र राज्य ते तत्तावत्त्व प्रसाधय।।

नास्त्यपुण्यमकीर्त्तिर्वा प्रजा धर्मेण शासत ।
अनवेक्ष्य च शक्ति स्वा सैन्यमस्ति च ते बहु।।

वत्स यद्यपि शूरस्त्व सैन्यमस्ति च ते बहु।
तथापि नैव विश्वासो जयश्रीश्चपला रणे।।

इत्यादि पित्रा प्रोक्तोऽपि तमनुज्ञाप्य यत्नत ।
समुद्रवर्मास ययौ तेजस्वी दिग्जिगीषया।।

क्रमेण च दिशो जित्वा स्थापयित्वा वशे नृपान् ।
प्राप्तहस्त्यश्वहेमादिराययौ नगर निजम् ।। - कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरग २/३७०-७७

५४ वासुदेव उपाध्याय सो० इ० हि० इ०/पृष्ठ ६१,

५५ आराजपुत्रचण्डाल कर्तुमनृण पतिम्।। - राजतरगिणी/तरग ७/४५८
तदस्मत्तो वृणीष्वान्य वर यमभिवाञ्छसि
यदा त्वामर्थयिष्येऽहमुपयुक्त तदा वरम् । -कथासरित्सागर/लम्बक ७/तरग ४/७०

५६ क्षत्रिय को क्षात्रकर्म के अन्तर्गत दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है। प्रथम वर्ग मे राजा सामान्त उनके सम्बधी तथा विशिष्ट राजपुरुष आते थे। तत्कालीन समाज मे इनका प्रमुख प्रमुख स्थान था। दूसरा वर्ग सैनिको तथा योद्धाओ का था। राज्य की सुरक्षा के लिए सेना मे इनकी नियुक्ती की जाती थी

कथासरित्सागर तथा भारतीय सस्कृति डॉ० एस एन प्रसाद/पृष्ठ ७४
एपिग्राफिया इण्डिका/१९,१७- निम्न अभिलेख मे यह साक्ष्य है।

५७ रघु दिग्विजय (रघुवश) कालिदास।

५८ एतच्छ्रुत्वा जगादैन पुनर्यौगन्धरायण ।
स्फीतापि राजन्कौबेरी म्लेच्छससर्गगर्हिता।। -कथासरित्सागर/लम्बक ८/तरग १/५८-५९

५९ राजन्युध्यस्व नि शङ्क शत्रूञ्जेष्यसि सङ्गरे।
इत्युद्गता च गगनात्सोऽथ शुश्राव भारतीम् ।।

त्त प्रहृष्ट् सनह्य तेषा निजबलान्वित ।
राजा चमरवालोऽग्रे युद्धाय निरगाद्द्विषाम् ।।

त्रिशद् गजसहस्त्राणि त्रीणि लत्राणि वाजिनाम् ।
कोटि पादभटाना च सत्यासीद्वैरिणा बले।।

स्वबले च पदातीना तस्य लक्षाणि विशति ।
दश दन्तिसहस्त्राणि हयाना लक्षमप्यभूत् ।।

प्रवृेत्तु महायुद्धे तयोरुभयसेनयो ।
यथार्थनाम्नि वीराख्ये प्रीतहारेऽग्रयायिनि।।

स्वय चमरवालोऽसौ राजा तत्समराङ्गणम् ।
महावराहो भगवान्महार्णवमिवाविशत् ।।

ममर्द् चाल्पसैन्योऽपि परसैन्य महत्तथा।
यथाश्वगजपत्तीना हयाना राशयोऽभवन् ।।

- कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरग ४/२१६-२२२

६० लुब्धो यशसि न त्वर्थे भीत पापान्न शत्रुत ।
मूर्ख परापवादेश न चु शास्त्रेषु योऽभवत् ।।

अल्पत्व यस्य कोपेऽभून्न प्रसादे महात्मन ।

चापे च बद्धमुष्टित्व न दाने धीरचेतस ।। -वही/लम्बक ९/तरग ५/३०-३१

६१ प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते स नृप सैन्ययोर्ग्यो ।
शौर्यदर्पाद्गजारूढ प्रविवेशाहव स्वयम् ।।

धनुर्द्विर्वतीय दृष्ट्वा त दलयन्त द्विषच्चमूम् ।
महाभटाद्या पञ्चापि राजानाऽभ्यपतन्समम्।। -वही /लम्बक १०/तरग २/ ७-८

६२ तत्प्रजा रक्ष धर्मेण समुन्मलय कण्टकान्।
हस्त्यश्वास्त्रादियोग्याभिश्चललक्ष्यादि साधय।

भुड्क्ष्व राज्यसुखे देहि धन दिक्षु यश किर।
कृतान्तक्रीडित हिस्त्र मृगयाव्यसन त्यज।। -वही/लम्ब १२/तरग २७/४१-४२

६३ कार्याकार्यविभाग प्राग्बोद्धव्यो विजिगीषुणा।
असाध्य यदुपायेन तदकार्य परित्यजेत् ।। -वही/लम्बक १२ /तरग ३५/ १२१,

६४ चेलुश्चानुचारास्ते ते प्रवीरा परिवार्य तम।
भक्ता भीताश्च गन्धर्वचाजविद्याधराधिपा ।।

सेनापतेर्हरिशिखस्यादेशानुविधायिन ।
चण्डसिह सम मात्रा धनवत्या सुमेधसा।। -इत्यीदि-वही/लम्बक १५/तरग १/३५-३९,

६५ त्वया च दृष्टा नाद्यापि जिगीषा सुखसङ्गिना।
तदुद्युक्तो भवालस्यमृत्सृज्य मयि तिष्ठित।।

विजस्याग्रतो गत्वा त्वमङ्गाधिपति रिपुम्।
अस्मा-प्रतिकृतारम्भ निजदेशाद्विनिर्गतम्।। -वही/लम्बक १२/ तरग ४/१०५-६,

६६ म्लेच्छाक्रान्ते च भूलोके निर्वषट्कारमङ्गले।
यज्ञभागादिविच्छेदाद्देवलोकोऽवसीदति।। -कथा०/ लम्ब १८/ तरग १/२२

६७ चत्वारो वर्णा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य मूडा तेषा पूर्व पूर्ण जन्मत श्रेयस्व/- आपस्तम्भ १ १ १ ५

६८ शत क्षत्रियो ब्राह्मणा क्रोश, अध्यर्थ वैश्य ।
ब्राह्मणास्तु क्षत्रियो पञ्चाशतातद्धर्म वैश्य - गौतम २१/६-१०
शत ब्रह्मणमाक्रुशय क्षत्रियो द्वादशको दम ।। -मनु०/८-२६७-६८

६९ गोक्ष्योवृत्ति समास्थय पिता क्रिन्योपजीविन ।
स्वधर्मान्मानुभतिष्ठुतिते हिजा वैश्यतागता।। -महा०/१२/१८८/१-१८
(अर्थात ब्राह्मण जो निजधर्म त्याग, गोपालन आदि वृत्तियो मे प्रवृत्त हो जाय वह वैश्या को प्राप्त है।)

७० वैश्योधर्नाजन कुर्यात्। -वही/५/१३२-२०,
कृषिगोरक्ष्यवाणिज्य वैश्यस्य कर्म स्वभावजम्।। - वही/६,४२,४४

७१ बौधायन/२,२,८०

७२ अस्तीह बहुरत्नाढ्या मथुरेति महापुरी ।।
तस्यामभूद् वणिक्पुत्र कोऽपि नाम्ना यइल्लक ।
- कथा०/ लम्बक ३/ तरग १/८४-८५

७३ वभूव देवदास्याख्य पुरे पाटलिपुत्रके।
पुरा कोऽपि वणिक्पुत्रो महाधनुकुलोद्गत् ।। -वही/लम्बक ३/तरग ५/१६,

नगर्या पुष्करावत्या गूढसेनाभिधो नृप ।
आसीत्तस्य च जातोऽभूदेक एव किलात्मज ।।

भ्राम्यतोपवने जातु दृष्टस्तेनैकपुत्रक ।
वणिजो ब्रह्मदत्तस्य स्वतुल्यविभवाकृति ।।

दृष्ट्वा च सद्य सोऽनेन स्वयवरसुहृत्कृत ।।
-वही/लम्बक ६/तरग २/११३-१४ व १६,

७४ रुद्रो नाम वणिग्देव नगर्यामहि विद्यते। - लम्बक ९/तरग ४/८६

चक्रो नाम वणिक्पुत्रो धवलाख्येऽभवत्पुरे ।
सोऽनिच्छतोरगात्पित्रो स्वर्णगीप वणिज्यया।। -लम्बक ९/तरग ६/१४०,

तथा च भवता पूर्व भ्रातरौ दौ वणिक्र सुतौ।
धर्मबुद्धि स्तथा दृष्टिबुद्धि क्वचन पत्र ने॥

तावर्थार्थ पितुगृहात् गत्वा देशान्तर सह।
कथचित स्वर्णदीनार सहस्त्रग्व्य मापुत ॥ - लम्बक १०/ तरग ४/१११-१२

७५ एव भवत्युपायेन कार्यमन्यच्च मे शृणु।
आसीत्कोऽपि तुलाशेष पित्र्यर्थात्प्राग्वणिक्सुत ॥

अय पलसहस्त्रेण घटिता ता तुला च स ।
कस्यापि वणिजो हस्ते न्यस्य देशान्तर ययौ॥

-लम्बक १०/तरग ४/२३७-३८,

७६ उपाध्यायमथाभ्यर्थ्य तयाकिञ्चन्यदीनया।
क्रमेण शिक्षितश्चाह लिपि गणितमेव च॥

-लम्बक १/तरग ६/३२

७७ योगनन्दोऽथ विजने सशोको व्याडिमब्रवीत्।
शूद्रीभूतोऽस्मि विप्रोऽपि कि श्रिया स्थिरयापि मे॥

-लम्बक १/तरग ४/११४

७८ शूद्रस्तु वृत्तिमाकाङ्क्षन्क्षत्रमाराधयेद्यदि।
धनिन वाप्युपाराध्य वैश्य शूद्रो जिजीविषेत्॥ -मनु० १०/१२१

एवमुक्ततवा तेषा शुद्रविट् क्षत्रियास्त्रय ।
रूप शौर्य बल चैव शशसु पृथगात्मन ॥ -लम्बक ९/तरग २/१०५

७९ कथासरित्सागर/लम्बक ६/तरग १/११९-२०

८० एकस्तत्राभ्युपाय स्याद्यत्सुहृन्मेऽस्ति नापित ।
ईदृद्विवज्ञानकुशल स चेत्कुर्यादिहोद्यमम्॥

इत्यालौच्यैव सा तस्य नापितस्यान्तिक ययौ।
तस्मै मनीषित सर्व तच्छशसार्थसिद्धिदम्।

तत स नापितो वृद्धो धूर्त्तश्चैवमचिन्तयत्।
उपस्थितमिद दिष्ट्या लाभस्थान ममाधुना॥

-लम्बक ६/तरग ६/१३५-१३९,

८१ हरिणाखेटके जातु भ्राम्यन्नुदयनोऽथ स ।
शबरेण हठ्ठाक्रान्तमटव्या सर्पमैक्षत ॥
सदय सुन्दरे तस्मिन्सर्पे त शबर च स ।
उवाच मुच्यतामेष सर्पो मद्वचनादिति॥
तत स शबरोऽवादी ज्जीविकेय मम प्रमो।
कृपणोऽह हि जीवामि भुजग खेलयन् सदा॥
-लम्बक २/ तरग १/७४-७६, लम्बक ४/ तरग २/१२० व १५० भी।

८२ तत्र वत्सेश मित्रस्यप्राम्भाग्वासिन ।
गृह प्रलिन्दाख्यास्य पुलिन्दाधिप तरगात॥

ते सज्जन स्थापथित्वाच यथातनाशमिष्यत ।
वत्सराजस्य रक्षार्थ मूरिसैन्य समन्वितम्॥ -लम्बक २/तरग ३/४५-४६,

तत्राहमुपहारार्थमुपनीतो निजस्य तै ।
प्रभो पुलिन्दकाख्यस्य देवी पूजयतोऽन्तिकम्।

स दृष्ट्वैवार्द्रहृदय शबरोऽप्यभवन्मयि।
वक्ति जन्मान्तरप्रीति मन स्निह्यदकारणम्॥ -लम्बक ४/ तरग २/६४-६५,

के यूयमिति पृच्छन्त मत्वा गृहपति स तम्।
भीत पान्था स्म इत्याह विष्णुदत्त पुलिन्दकम्॥

स चान्त शबरो गत्वा दृष्ट्वा भार्या तथास्थिताम।
चिच्छेद सत्य सुप्तस्य तज्जारस्मासिना शिर ॥ -लम्बक ६/ तरग ६/६८-६९

८३ किमेतदिति सम्भ्रान्त त जाभ्येत्यैव तत्क्षणम्।
राजचपुत्रो गजारूढो निर्भयाख्यो व्यजिज्ञपत् ॥

देवाग्रतोऽतिमहती भिल्लसेनाभिधाविता।
तैवार्रणा न पञ्चाशन्मात्रा भिल्लै रणे हता॥ -आदि/आदि/ लम्बक ९/तरग १/१६३-६८,

८४ अस्ति वारिनिधेर्मध्ये द्वीपमुत्स्थलसञ्ज्ञकम्।
तत्र सत्यव्रताख्योऽस्ति निषादाधिपतिर्धनी॥

तस्य गीपान्तरेष्वस्ति सर्वेष्वपि गतागतम्।
तेन सा तस्येष्टसिद्धये॥ -कथा०/लम्बक ५/तरग २/३३-३६

८५ तत्र सागरवीराख्यो वास्तव्यो वास्तव्यो धीवराधिप ।
नगरेऽम्भोधिनिकटे तस्यैको मिलितोऽभवत्॥

तेनाब्धिजीविना साक सोऽथ गत्वाम्बुधेस्तटम्।

तड्ढौकित यानपात्रमारुरोह प्रियासख ।
ततो ऽब्धौ———————कतिचिग्गणिक्॥ -कथा ०/लम्बक ९/तरग २/३२०-२२,

८६ कि चेह धर्मव्याधाख्य मासविक्रयजीविनम्॥
गत्वा पश्य तत श्रेयो निरहङ्कारमाप्स्यसि ॥ -कथा०/ लम्बक ९/तरग ६/ १८१,

८७ नगरीनिर्गता दृष्ट्वा शङ्काशीघ्रगति च ताम्।
मृदङ्गहस्तो मोषाय डोम्ब कोऽप्यन्वगादद्धुतम्॥

न्यग्रोधस्य तल प्राप्य सा दृष्ट्वा तमुपागतम्।
डोम्ब सिद्धिकरी धूर्त्ता सदैन्येवेदमब्रवीत्॥
पादाघातेन डोम्बोऽथ सोऽपि पाशे व्यपद्यत॥-लम्बक २/तरग ५/९६-१०२,

८८ पञ्चपट्टिकनामाह शूद्रो विज्ञानमस्ति मे
वयामि प्रत्यह पञ्च पट्टिकायुगलानि यत्॥ -लम्बक ९/ तरग २/ ९९,

८९ मूर्खो दृष्टव्यलीकोऽपि व्याजसान्त्वेन तुष्यति।
तथा हि तक्षा कोऽप्यासीद् भार्याभूत्तस्य तु प्रिया।।- लम्बक १०/ तरग ६/१०४,

तस्य राष्ट्रे नृपस्यावा तक्षाणौ भ्रातरावुभौ।
मयप्रणीतदार्वादिमायान्त्रविचक्षणौ ।।-लम्बक ७/ तरग ९/२२

९० कथासरित्सागर तथा भारतीय सस्कृति डॉ० एस० एन० प्रसाद/पृष्ठ ८४
(पाद टिप्पणी -१)

९१ इति तत्कटकस्थेभ्य सामन्ते भ्यस्तत शपु ।
राजादेश तदाराज्ञो तत्रारुजैव भिलिख्य सा।।

सन्धि विग्रहकायस्थेना इतेनार्थ- समन्वयै ।
उपाशु काव्यालकार व्यसृज्यल्लेश्वहार का ।।

-आदि-आदि/लम्बक १० / तरग ८/९०-९४,

प्रदर्श्य तस्मै लेखाश्च यथावृत्त तमब्रुवन्।
सोऽथ बुद्ध्वा तदुद्भ्रान्त क्रुद्धस्तानेवमब्रवीत।।

नैते मत्प्रहिता लेखा इन्द्रजाल किमप्यद ।
यूय च न किमेतावदपि जानीथ बालिशा ।।

-आदि-आदि/लम्बक ७/तरग ८/१०८-११३

९२ स्कन्दकग्रामकायस्थमासवृत्त्यादिसग्रहै ।
अन्यैश्च विविधायासव्यधान्द्रामान्स निधनान्।।

मुख्येन गुणिना राज्ञा धनहान्या प्रथापहा ।
मूर्खेण येन कायस्था दास्या पुत्रा प्रवर्तिता ।।

तथा कायस्थभोज्या भूर्जाता तत्प्रत्यवेक्षया ।
यथा सजायतेवर्ण हरणादिव भूभुजाम्।।

- राजतरगिणी/ तरगी ५/ १७५ एव १८०-१८१,

९३ कायस्थप्रेरणादेतैर्दैवेनाद्य प्रवर्तितै ।
आयासै श्र्वासशेषैव प्राणवृत्ति शरीरिणाम्।।

तदाक्ष पटल गत्वा रङ्ग कोपान्तम द्रवीत्।
रुङ्गहेलु दिण्णेति दासी सुत न लिख्यते ।।
-वही तरग ५/१८४ व ३९८/इसके अतिरिक्त तरग ४/६२१,२९,३०/तरग ६/८,३८,१३० १३६/तरग ७/४५, और तरग ८/२३,८३।

९४ इति मन्मातृवचन श्रुत्वा तौ हर्षनिर्भरौ।
व्याडीन्द्रदत्तौ ता रात्रिमबुध्येता क्षणोपमाम्।।

अथोत्सवार्थमम्बायास्तूर्ण दत्वा निज धनम्।
व्याडिनैवोपनीतोऽह वेदार्हत्व ममेच्छता।। -लम्बक १/तरग २/७३-७४,

९५ बालस्यैव तवाकाण्डे कोऽय पुत्र मतिभ्रम ।
उपयुक्ते हि तारुण्ये प्रशम सद्भिरिष्यते।।

कृतदारस्य धर्मेण राज्य पालयतस्तव।
भोगान्भोक्तुमय कालो न वैराग्यस्य साम्प्रतम् ।। -लम्बक ९/तरग १/३१-३२,

९६ त प्रतीत स्वधर्मेण ब्रह्मदायहर पितु ।
स्त्रद्विवण तल्प आसीनमर्हयेत्प्रथम गवा।।

गुरुणानुमता।छ स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि ।
उग्हेत द्विजो भार्यो सवर्णो लक्षणान्विताम्।। -मनु० ३/३-४,

९७ वही/३/४,

९८ एकाश्रुभ्याम् त्वाचार्या पितृभ्य इति। - बौधायन धर्मसूत्र/२६,२९/४२-४३ एव ब्रह्मचारी गृहस्थो भिक्षु वैखानस्य गौतम-३

९९ ततो यथावद्ववृतेस्तया वत्सेश्वरस्य च।
व्यग्रो गोपालकोऽन्येद्युस्तत्रोद्वाहमहोत्सवे।

रतिवल्लीनवोद्भिन्नमिव पल्लवमुज्ज्वलम्।
पाणि वासवदत्ताया सोऽथ वत्सेश्वरोऽग्रहीत्।। -लम्बक २/तरग ६/२६-२७, लम्बक ४/तरग ३/७६

१०० नन्दत्स्वपि च यौगन्धरायणादिषु मन्त्रिषु।
गगनादुच्चचारैव काले तस्मिन् सरस्वती।।

अनेन भवितव्य च दिव्य कल्पमतन्द्रिणा।
सर्वविद्याधरेन्द्राणामचिराच्चक्रवर्त्तिना ।।

कामदेवावतारोऽय राजनजातस्तवात्मज ।
नरवाहनदत्तञ्च जानीह्येनमिहाख्यया।।

इत्युक्त्वा विरत वाचा तत्क्षण नभस क्रमात्।
पुष्पवर्षैर्निपतित प्रसृत दुन्दुभि स्वनै ।। -लम्बक ४/तरग ३/७३-७५,

१०१ चन्द्रस्वामिन् महीपालो नाम्ना कार्य सुतस्त्वया।
राजा भूत्वा चिर यस्मात् पालयिष्यत्यय महीम्।।

एतद्दिव्य वच श्रुत्वा स महीपालमेव तम्।
चन्द्रस्वामिसुत नाम्ना चकार रचितोत्सव ।। -लम्बक ९/तरग ६/६-८

१०२ यथा वायु समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तव ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमा ।।

यस्मान्त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्येष्ठाश्रमो गृही।।

स सधार्य प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता।
सुख चेहेच्छता नित्य योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियै ।।

ऋषय पितरो देवा भूतान्यतिथयस्तथा ।
आशासते कुटुम्बिभ्यस्तेभ्य कार्य विजानता।। -मनु० ३/७७-८०,

१०३ एव गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विज ।
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रिय ।।

गृहस्थस्तु यदा पश्येग्लीपलितमात्मन
अपत्यस्यैव चापत्य तदारण्य समाश्रयेत्।।

सत्यज्य ग्राम्यमाहार सर्वचैव परिच्छदम्।
पुत्रेषु भार्या निक्षिप्य वन गच्छेत्सहैव वा।। -मनु० ६/१-३,

१०४ जगाद च कियद्दु कमनुभूतमहो मया।
असारविरसेष्वेषु भोगेष्वासक्तचेतसा।।

तदिदानी वन गत्वा हरिं शरणमाश्रये।
येन स्या नैव दु खाना भाजन पुनरीदृशाम्।।

ततोऽर्धमर्पयित्वादावेक साध्व्यै स्वकोषत ।
शीलवत्यै द्विजेभ्योऽर्ध दत्वान्यद् भोगनिस्पृह ।

पाप भञ्जनसज्ञाय ब्राह्मणाय यथाविधि।
ददौ गुणगरिष्ठाय निज राज्य स भूपति ।। -कथा०/ लम्बक ७/तरग २/१०५-९,

१०५ भुक्त्वा च तत्र गगनेचरचक्रवर्त्तिलक्ष्मी सुतेन सह तेन चिर स राजा।
तस्मिन्निवेश्य निजराज्यधुर विरवतो देव्या सम मुनितपोवनमाश्रित्तोऽभूत्।।

आलोच्य भावानवसाननीरसान्सश्रित्य चान्ते स मुनीन्द्रकाननम्।
ज्योति पर प्राप्य तप प्रकर्षत सायुज्यमीशस्य जगाम धूर्जटे ।।
-कथा०/लम्बक १७/तरग ६/२१३ एव २१६,

१०६ हन्त मोह विहायैत स्व प्रभु शरण श्रये।
इत्यालोच्य द्विज सूर्य स स्तोतुमुपचक्रमे।।

तुभ्य परापराकाशशायिने ज्योतिषे विभो।
आभ्यन्तर च बाह्य च तम प्रणुदते नम ।

त्व विष्णुस्त्रिजगद्व्यापी त्व शिव श्रेयसा निधि ।
सुप्त विचेष्टयन्विश्व परमस्त्व प्रजापति ।। -लम्बक ९/तरग ६/२८-३०,

१०७ अथात्रेश्वरवर्मा स यमजिह्वागृहे कला ।
वर्षेणैकेन शिक्षित्वा पितुस्तस्य गृह ययौ।।

प्राप्तषोडशवर्षश्च पितर तमुवाच स ।
अर्थाद्धि धर्मकामौ न पूजार्थादर्थत प्रथा।। -लम्बक १०/ तरग १/ ६९-७०

१०८ स करङ्कश्च यत्छिप्तस्तीर्थे तत्र मम त्वया।
युक्त तद्विहित त्व हि मित्र मे पूर्वजन्मनि।।

एष भेषजचन्द्रश्च तथाऽसौ पद्मदर्शन ।
एतावपि च तज्जन्मसङ्गतौ सुहृदौ मम।।

तत्तस्य तपसो मित्र प्राक्तनस्य प्रभावत ।
जातिस्मरत्व ज्ञान च राज्य चोपनत मम।। -लम्बक ७/ तरग ६/ १०४-६,

चर्तुथ अध्याय

कथासरित्सगार मे प्रतिबिम्बित सामाजिक जीवन

- स्त्रियो की दशा,
- खान-पान
- परिधान
- अलङ्करण/वेशभूषा
- मनोरजन के साधन।

कथासरित्सगार में प्रतिबिम्बित सामाजिक जीवन

महाकवि गुणाढ्य विरचित पैशाची भाषा-निबद्ध 'बड्ढकहा' का सस्कृत रूपान्तर 'कथासरित्सागर' कवि सोमदेव भट्ट की रचना है। कश्मीर नृपो के अन्त·पुर सरस,शृङ्गार-प्रधान और कामरसोद्रेक साहित्य के पोषक रहे। रानिया, राजकुमारिया ऐसा सरस साहित्य पढने मे मधुर रुचि रखती थी। नृपति अनन्त की महारानी सूर्यमती के आदेश पर सोमदेव ने यह रचना प्रस्तुत की थी। रचना का विषय रागानुराग-समन्वित प्रेमकथाए है, जहॉ पर शृंगार की तरगिणी तरगायित होकर जनमानस के हृदय को आह्लादित करती दिखायी पडती है। ऐसी स्थिति मे शृङ्गार रस-रसित, सयम-तट का अतिक्रमण कर उच्छृखला हो उठी है। जिसका परिणाम है शृङ्गार भूमि नारी की मनसा, वाचा एवं कर्मणा अनियंत्रित प्रकृति और प्रवृत्ति । उनके साथ ही समाज की नैतिक गति भी उच्छृंखला हो उठी, यहॉ पर नारी की चारित्रिक उदात्तता के दर्शन ही नही होते। सामाजिक-नियमन की आचार संहिता का निर्माणकर्ता वर्णव्यवस्था का मूर्धन्य विद्वान् ब्राह्मण विधान भले ही बना दे किन्तु उसका अनुपालन कराने मे शासक' का सहयोग

अनिवार्य है। तत्कालीन नृप-समाज स्वय कामरसोद्रेक से आक्रान्त हो उठा था फिर सम्पूर्ण समाज की क्या स्थिति होगी, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। प्रस्तुत सदर्भ मे तत्समाज मे नारी का चारित्रिक परिवेश इस प्रकार द्रष्टव्य है -

नारी समाज

कवि सोमदेव भट्ट ने कथासरित्सागर के अष्टम लम्बक मे सूर्यप्रभा के अन्त पुर की रानियो का प्रकृत प्रतिबिम्ब प्रस्तुत किया है, जिससे प्रथम दृष्ट्या हमारे सम्मुख नारी की चारित्रिक छवि उजागर होती है। यहॉ हम रनिवास मे रह रही स्त्रियो के सवाद का पुनरावलोकन कर अपनी विवेचना की पृष्ठभूमि उपस्थित कर आलोच्य क्रम का सकेत देना चाहते है- स्त्रियां परस्पर नृप की शृङ्गारप्रियता और विलासिता पर स्व-स्व विचार व्यक्त कर रही है- 'आर्यपुत्र स्त्रियो से अधिक आसक्ति रखते है। यह तो बताओ हमारे आर्यपुत्र भला इस सीमा तक स्त्रीलम्पट क्यो है? अनेक पत्नियो के रहते हुए हमेशा नयी-नयी युवतियो को ही ग्रहण करना चाहते है। इस पारस्परिक विविध शंकाओ से पूर्ण जिज्ञासा का निदान-सा करती एक अन्य स्त्री बीच मे बोल पडी-सुनो, ये नृपतिगण बहुपत्नी वाले क्यो होते है? मै बताती हूॅ।[१] वेश,रूप, अवसता चेष्टा-विज्ञान आदि के भेद से अच्छी स्त्रियो के भिन्न-भिन्न गुण होते है, एक ही स्त्री मे सभी गुण हो यह तो सम्भव नही। कर्णाट, लाट, सौराष्ट्र और मध्यदेश आदि की स्त्रियो मे भिन्न-भिन्न गुण

और पृथक्-पृथक् विशेषताए होती है, उन-उन गुणो एव विशेषताओ से वह पुरुष का मनोरंजन करती है। कतिपय स्त्रियॉ तो अपने शरच्चन्द्र सदृश मुख से मोहती है, कुछ स्वर्ण-घट तुल्य उन्नत और कठोर स्तनो से चित्त को आकर्षित करती है, कुछ कामदेव के सिहासन सम अपने जघनस्थल के बल पर आकर्षण का केन्द्र बनती है, एव कतिपय अन्य सौन्दर्य एव आकर्षक चेष्टाओ द्वारा मन हर लेती है। कुछ स्त्रिया तप्त कांचनवर्ण वाली होती है। कुछ प्रियगु पुरुष के समान श्यामवर्ण की होती है। एव कुछ लालिमायुक्त गौरवर्णा होती है जो देखते ही हृदयो को अनायास ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है।[२]

स्त्रियो के विभिन्न रूप वर्ण कथन के पश्चात् वह निपुण स्त्री आगे स्त्रियो की अवस्था , फिर चेष्टा आदि की भी सुष्ठु परिगणना प्रस्तुत करती है- कुछ नववय के कारण सुन्दर होती है। कुछ पूर्णत विकसित यौवना होने से मनोरम लगती है। कुछ प्रौढावस्था होने पर रस छलकाती है, और कुछ हाव-भाव विलास से सौन्दर्य की छवि छिटकाती है। किसी का हसना आकर्षक होता है तो कोई कोप की मुद्रा मे मन मोहती है। यही नही कोई गजगति वाली तो कोई हंसगामिनी होने के कारण सुन्दरता विखेरती है। कुछ रमणियॉ मधुर वचनो से कानो मे रस घोलती है तो कुछ अपने भ्रू-विलास से हृदय हारक हो जाती है। कोई नृत्य-निपुण, कोई गायन-प्रवीणा तो कोई वास-सज्जा की कला-पारगत होने से सग्राह्य होती है। कोई स्त्री बाह्य रति-विलास चतुरा, कोई अन्तरंग

रति-विलास मे कौशल प्राप्ता होकर मन मोहती है, कोई शृङ्गार रसा तो कोई वार्ता-कुशला होती है। कोई स्त्री पति के चित्त को निज वशीभूत कर सौभाग्यशाली बन जाती है, अर्थ यह है कि सभी स्त्रियो मे पृथक् गुण होते है। सभी गुणो मे से कोई एक विशिष्ट्गुण किसी मे होता है, त्रैलोक्य भर मे कोई भी ऐसी स्त्री नही जिसमे सभी गुण हो। यही कारण है कि नृपतिगण भिन्न-भिन्न रसास्वादन के लिए निरन्तर नयी-नयी नारियो से सान्निध्य स्थापित करते है। सज्जन एव कुलीन जन परस्त्री स्पर्श तक अनुचित समझते है, इसीलिए हमारे आर्यपुत्र अनेक स्त्रियो से विवाह कर इस पाप से मुक्त है। यह हमारे लिए ईर्ष्या का विषय नही होना चाहिए।[३] अन्त पुर की इन स्त्रियो के सवाद मे प्रकारान्तर से यहॉ रूप, गुण, प्रकृति भेद से विविध स्वभावा नारियो का कथन और उनके सौन्दर्य का वर्णन किया गया है।

'यथा राजा तथा प्रजा:' प्राय: राजा के धर्म शासन से प्रजाजन धर्माचार निरत एवं विपरीत स्थिति मे विरत रहते है। राजकुल के इस वर्णित आचार धर्म द्वारा निश्चयत. प्रजाजन प्रभावित रहे। परिणामत समग्र समाज आचार विहीन एवं नैतिक दृष्टि से पतित हो चुका था। नृप का परमधर्म वर्णाश्रम धर्म की रक्षा कदाचित अर्थ विहीन हो गया था। आचार धर्म विनष्ट, संयम का ह्रास एवं उच्छृखला व्याप्त हो चुकी थी। स्त्री मात्र विलास की वस्तु समझी जाती थी, जो पुरुष को भाति-भाति चेष्टाओ से वशीभूत करती और पुरुष उनके मांसल सौन्दर्य का पान करना ही अपना अधिकार मान

बैठा था। कथासरित्सागर मे सोमदेव के स्त्री-चरित्र विषयक विवेचन की कोई तुलना नही है, इस सम्बन्ध मे कवि की दृष्टि बडी पैनी है। नारी चित्रण मे वे पूर्णत गभीर एव सूक्ष्म परिवीक्षक है, उन्होने उनकी प्रकृति एवं क्रिया कलाप का अत्यन्त सार्थक विवरण उपस्थित किया है स्त्री तथा लक्ष्मी कभी स्थिर नही रहती। संध्या के समान राग (प्रेम) वाली होती है। नदी के सदृश इनका हृदय कुटिल ऊँचा-नीचा होता है एव नागिन के समान अविश्वसनीय और विद्युत् की भांति चचल होती है।[४] चंचला स्त्री रक्षा करके भी रोकी नही जा सकती, क्या प्रलयकालीन आंधी हाथो से रोकी जा सकती है।[५] संसार मे कही भी कोई स्त्री को नियत्रण मे नही रख सकता, उसकी रक्षा भी नही कर सकता। कुलीन स्त्री को, उसका अपना ही प्रबल और विशुद्ध हृदय उसकी रक्षा मे समर्थ हो सकता है।[६] चंचलता, साहस और डायनपन स्त्रियो के तीन गुण तीनो लोको के लिए भयोत्पादक है। जैसे मधुकरी नये-नये पुष्पो का अभिलाष करती है, उसी प्रकार स्त्री नये-नये प्रेमी की अभिलाषा रखती है।[७] इस प्रकार सोमदेव भट्ट ने कथासरित्सागर मे स्त्री-स्वभाव उसके आचार-व्यवहार तथा कार्य-कलापो के विषय मे सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभव-जनित विचार व्यक्त किया है।

'कथासरित्सागर मे संग्रहीत कथाओ मे स्त्रियो के अशिव पक्ष का ही अकन विशेषत. प्राप्त होता है। सती साध्वी स्त्रियां अत्यल्प परन्तु चचल, कुलटा, दूषित आचरण वाली स्त्रियो के सन्दर्भ अत्यधिक है। 'दुष्टा स्त्री साहसिक कोई भी कार्य कर

सकती है' यह उक्ति एक व्यभिचारिणी स्त्री के आख्यान का निष्कर्ष है- शत्रुध्न नाम के एक पुरुष ने अपनी स्त्री को निज-प्रेमी सग देखा, उसने उस जार को कृपाण से मार डाला। पत्नी को रोके रखकर रात्रि के अवसान की प्रतीक्षा करने लगा। प्रात काल होने पर अपनी भार्या को लेकर जगल मे चला गया। भार्या को सुरक्षित बैठाकर शव को अधेरे कुए मे फेकने लगा। उसकी उस स्त्री ने पीछे जाकर शत्रुध्न को धक्का देकर कुए मे धकेल दिया।[८] वेद विद्या पारगत विष्णुगुप्त नाम का एक ब्राह्मण था, दूरस्थ देश से आये हुए उसके कई शिष्य थे, विष्णुगुप्त की पत्नी का नाम था कालरात्रि। ब्राह्मण के शिष्यो मे परम प्रिय एक सुन्दरक नाम का शिष्य था। एक बार विष्णुदत्त की वह स्त्री कालरात्रि कुछ सामान क्रय करने के लिए बाजार जा रही थी। उसने सुन्दरक को देखा और उसके पास जाकर बोली- हे सुन्दर, काम से पीडित मुझे स्वीकार कर लो, मेरा जीवन सदा के लिए तुम्हारे अधीन है? सज्जन सुन्दरक ने कहा, माता ऐसा न कहो। गुरुपत्नी संग गमन करना अधर्म है। तुम मेरी माता एवं गुरुपत्नी हो। यह सुनकर वह कालरात्रि पुन बोली- यदि तुम धर्म पर ध्यान देते हो तो मेरे प्राणो की रक्षा करना भी महानधर्म है। सुन्दरक ने कहा, माता हृदय मे इस प्रकार के विचार न लाये। गुरुपत्नी संग गमन करना कहाॅ का धर्म है? कालरात्रि के सुन्दरक की ओर से बार-बार तिरस्कार मिलने पर कालरात्रि ने उसे फटकारती हुई, अपने ही हाथो अपनी चादर को फाड, जाकर पति से वह कहने लगी, देखो सुन्दरक ने मेरी यह दशा कर दी है।[९]

कथासरित्सागर मे कथा सन्दर्भित स्त्रिया कुटिल, कुत्सित हृदया और कामासक्ता, व्यभिचारिणी है। एक से बढकर एक कलुष चरित्रा नारियो के अंकन पढने के पश्चात् ऐसा परिलक्षित होता है कि समग्र समाज ऐसी ही स्त्रियो से व्याप्त रहा। सती, सच्चरित्र नारियो का अकन विरल ही मिलते है। एक नवयुवक बनिया आधी-पानी से बचता हुआ सुवर्णद्वीप के एक तट पर आ रुका, वहॉ उसने सुन्दर भवन को देखा, मूसलधार वर्षा से रक्षा-निमित्त उसमे आश्रय हेतु पहुँचा। वहां उसने ऑखो के लिए अमृत वर्षा सदृश दु ख का शमन करने वाली सुन्दरी को देखा। वह सुन्दरी राजदत्ता उस बनिए को पलंग पर आसीन करा, उससे आलिंगनबद्ध हो गयी। कामातुर स्त्री, एकान्त पुरुष का मिलना तथा पूरी स्वच्छन्दता, जहॉ पञ्चाग्नियां एकत्र हो, वहॉ चरित्र रुपी तृण की बात ही क्या अर्थात् वह तो नष्ट हो जाता है। कामोन्मत्ता नारी किसी भी प्रकार का विचार नही करती। इसलिए उसने विपत्ति मे पडे हुए उस दरिद्र पुरुष को भी स्वीकार कर लिया।[१०] रानी अशोकवती की उत्कट इच्छा और नृप के बहुश. आग्रहोपरान्त ब्राह्मण गुणशर्मा ने रानी को वीणावादन की शिक्षा देना प्रारम्भ किया। वह प्रतिदिन शिक्षा देने लगा। अशोकवती वीणा वादन की शिक्षा देते समय गुणशर्मा के समक्ष विविध कामचेष्टाऍ किया करती। गुणशर्मा उसे अनदेखी करता। एक बार एकान्त मे नाखूनो को गडाती हुई कामातुर रानी गुणशर्मा द्वारा प्रतिरोध करने पर बोली-

'हे सुन्दर, वीणावादन के बहाने मैने तुमको प्राप्त किया है। तुम्हारे प्रति मेरे मन मे घनिष्ठ अनुराग उत्पन्न हो उठा है और तुम अब मेरा उपभोग करो। रानी के ऐसा कहने पर गुणशर्मा ने कहा- 'ऐसा न कहो तुम मेरे स्वामी की भार्या हो। मेरे जैसा व्यक्ति इस प्रकार का कृत्य कर स्वामी के संग द्रोह नही कर सकता। यह सुनकर रानी अशोकवती ने गुणशर्मा से पुन कहा- अरे। नीरस तुम्हारे इस सुन्दर रूप एव कला-नैपुण्य का फिर क्या महत्व ? जो तुम मेरी जैसी कामातुरा प्रेयसी की उपेक्षा कर रहे हो। गुणशर्मा ने हसते हुए सहज भाव से कहा- ठीक कह रही हो, उस चातुर्य से क्या लाभ जो परदारा के अपहरण से निन्दित और मलिन न हो। फिर तो रानी कोपाविष्ट होकर बोली-तुम मेरा कहना न मानोगे तो निश्चित ही मेरी मृत्यु हो जायेगी, परन्तु अपमानित हुई मै तुमको मारकर मरूंगी। मेरी बात न मानने पर तुम अपना भी मरण निश्चित रूप से समझ लो।[११]

कथासरित्सागर के आख्यानो की नारी प्राय विलासिनी, वंचक, छलछद्मधुरीणा, जारसंगमी पूर्णत प्रेयसी चरित्रवाली ही है वह भार्या, अनुरागिणी अथवा शीलवती कदाचित् ही दीख पडती है। सोमदेव ने इसीलिए लिखा है- विलासिनी नारी ससार की स्थिति सदृश अन्तत नीरस दु खदायिनी, प्रत्येक क्षण परिवर्तित स्वभाव बदलने वाली एवं अनित्य सम्बन्धो वाली होती है।[१२] उनका यह अनुमिति प्राय· दृष्टिकोण नही अपितु गम्भीर अध्ययन का परिणाम है- एक आख्यान की नायिका रानी अनंग प्रभा एक के

पश्चात् अन्य क्रमश ग्यारह जनो की प्रेयसी बनी उनमे से किसी भी एक की सुशीलाभार्या न रह सकी। अपने इस विलास स्वभाव के कारण उसने वर्ण, स्तर आदि का स्वप्न मे भी विचार नही किया और क्रमानुक्रम मे खड्ग सिद्ध, हरिहर, नाट्याचार्य, लब्धवर, जुआरी, सुदर्शन बनिया, धीवराधिप, सागरवीर, विजयवर्मा, क्षत्रियपुत्र तथा राजामदनपुत्र से विवाह किया था- नाट्याचार्य ने सारी धन सम्पत्ति ऊँट की पीठ पर लाद दिया, और अनंगप्रभा पुरुषवेष मे घोडे पर आरूढ होकर नाट्यशिक्षक के साथ निकल गयी। उसने पहले विद्याधर की लक्ष्मी का परित्याग किया और राजलक्ष्मी को स्वीकारा उसके पश्चात् नाचने गाने वाले चारण का आश्रय ग्रहण किया। स्त्रियो के ऐसे चंचल मन को धिक्कार है जो भ्रमता ही रहे।[१३]

अनंग प्रभा नृप हरिहर की मंत्री बनकर रही। एक दिन लब्धवर नाम का नया नाट्याचार्य आया। राजा ने उस कलाकार को सम्मानित किया, और रनिवास के नाट्याचार्य पद पर आसीन किया। शनैः-शनैः अनंगप्रभा उस नाट्याचार्य पर अनुरागासक्त हो गयी थी। वह नाट्यशाला मे ही रतिलालसा मे नाट्याचार्य से संगमित हो गयी। कामक्रीडोपरान्त उसने अतिशय अनुरागवती होकर कहा- मै तुम्हारे बिना अब एक क्षण भी नही रह सकती। राजा हरिहर यह सारा वृत्तान्त तथा कृत्य को जानकर मुझे वह कदापि क्षमा न कर सकेगा। इसलिए चलो किसी दूसरे स्थान पर चले। जहॉ राजा को हम लोगो का कथमपि पता न चल सके। तुम्हारे पास राजा द्वारा दिये गये

आभूषण, मेरे पास है। तो चलो वहॉ जहॉ निर्भय होकर रह सके।[१४]

कुलटा स्त्रियॉ अपने प्रणयी से मिलने के लिए उन्हे अपने शयन कक्ष तक पहुॅचने मे उसके लिए क्या-क्या साधन अपनाती रही, कथासरित्सागर मे इसका उल्लेख मिलता है- राजा के चले जाने पर कुछ दिन व्यतीत होने पर एक दिन भवन के गवाक्ष मे रानी ने किसी पुरुष को देखा। देखते ही उस पुरुष ने रानी के हृदय को आकृष्ट कर लिया और कामासक्त रानी ने सोचा मै यह अच्छी तरह जानती हूॅ कि मेरे पति के सदृश सुन्दर पराक्रमी अन्य पुरुष नही है, तथापि इस पुरुष की ओर मेरा मन खिचता जा रहा है, अत जो भी हो, मै इस पुरुष का भोग अवश्य करूंगी। ऐसा निश्चयकर उसने अपनी सखी द्वारा रात्रि के समय खिडकी मार्ग से रस्से की सहायता से ऊपर चढाकर अपने घर मे बुला लिया।[१५]

एक अन्य आख्यान का एक संदर्भित अश- उसके भवन की खिडकी मे रस्सी बंधी चमडे की पिटारी लटकती रहती थी। रात्रिकाल मे जो भी उस पिटारी मे घुसता, उसे ही वह अन्दर बुला लेती। रात्रि व्यतीत होने पर उसी प्रकार बाहर कर देती। मद्यपान मे उन्मत्त वह कही कुछ देखती नही थी। धनदेव किसी बहाने अपने घर गया। उसने वहॉ रस्सियो से बंधी हुई पिटारी देखी। उसमे वह बैठ गया, दासियो ने रस्सी खीचकर उसे भीतर कर लिया।[१६] नीचता की ओर जाने वाली चंचल स्त्रियो को धिक्कार

है, जो दूर से ही मनोरम प्रतीत होती है, गड्ढे मे गिरने वाली नदियो के समान स्त्रियो की रक्षा करना असम्भव है। स्त्रियो के ऐसे निद्य चरित्र वाले सदर्भ आख्यानो को गतिशील बनाते परिलक्षित होते है। स्त्रियो का यह एक पक्षीय चित्रण तत्कालीन समाज का परिवेशगत यथार्थ रहा होगा।

स्त्री के इतिहास-ख्यात रूप वेश्या एवं देवदासी के भी चरित्राकन कथासरित्सागर मे प्राप्त होते है। वेश्या प्राचीन भारतीय समाज मे एक महत्वपूर्ण स्थान की भागी रही है।[१७] राज्य सम्मान प्राप्त। आम्रपाली बुद्ध कालीन समाज की प्रख्यात गणिका रही। सस्कृत भाषा साहित्य मे रूप, गुण, विविध कला सम्पन्न गणिकाओ का उल्लेख है। बसन्तसेना आदि ऐसी कला प्रवीण गणिकाएं थी। राजगृह की प्रख्यात गणिका सालवती रही। सोमदेव भट्ट ने प्रारम्भिक मध्ययुग के वेश्या समाज पर प्रकाश डाला है। उन्होने वेश्या को अर्थलोलुप कहा है- 'वेश्या अर्थ लोलुप होती है। अर्थ के बिना वह कामदेव पर भी प्रसन्न नही होती। ब्रह्मा ने भिक्षुओ का निर्माण करके उनसे लोभ को लेकर वेश्याओ को दे दिया।[१८] उनका हृदय सद्भाव रहित होता है।[१९] वेश्याओ का मुख्य व्यवसाय धन प्राप्त करना होता रहा। इसके अतिरिक्त प्रेमादि की चेष्टाएं मात्र पुरुष को अपने वश मे करने के लिए करती थी। पवित्र प्रेम करने वाली वेश्या निजधर्मच्युत मानी जाती थी। रूपणिका नामक वेश्या लोहजध नामक पुरुष के प्रति अनुरागवती हो गयी, और अन्य पुरुषो के सग समागम का त्याग कर दिया, लोहजंघ भी उसी के घर मे

रहने लगा। यह जानकर वेश्याओ की शिक्षिका मकरदंस्ट्रा ने उसे समझाते हुए कहा-

बेटी, तुम इस दरिद्र से क्या प्रेम करती हो, अच्छे व्यक्ति मुर्दे को भी छू सकते है, परन्तु वेश्या निर्धन को नही छू सकती । कहां सच्चा प्रेम और कहा वेश्यावृत्ति, क्या तुम वेश्याओ के इस सिद्धान्त को भी भूल गयी। बेटी स्नेह करने वाली वेश्या सन्ध्या के सदृश अधिक देर तक नही चमक सकती। वेश्या को भी केवल धन के लिए अभिनेत्री के समान प्रेम दिखलाना चाहिए। इसीलिए तुम इस दरिद्र ब्राह्मण को छोडो, अपना विनाश मत करो।[२०] ऐसी वेश्या का भी अकन है जो धन की लोभी तो है किन्तु दूसरे का धन वापस भी कर देती थी- मदनमाला के पास एक दिव्य पुरुष कुछ दिनो पहले वहा रहकर उसे सोने के पांच अक्षय पुरुष देकर कही चला गया। वह मदनमाला उसके वियोग से पीडित जीवन के दिन वेदना, देह को निष्फल और आहार को चौर भावना समझकर जीवित है। सेवको के आश्वासन देने पर उसने प्रतिज्ञा की है-

यदि वह मेरा प्यारा पति छह महीने के अन्दर आकर मुझे नही संभालेगा तो मै अभागिन अग्नि मे प्रवेश करूंगी।[२१] इसी प्रकार एक अन्य भी अंकन प्राप्त है कि वेश्या भी उदात्त चरित्र वाली होती है- सौहार्द से संतुष्ट राजा विक्रम प्रेम के कारण स्वदेश से आयी मदन माला के पास सुख से रहने लगा। इस प्रकार वेश्या मे भी उदारचरित और वैसी ही सदाचारिणी होती है, जैसी महारानियॉ, अन्य कुलीन स्त्रियो की तो बात ही क्या?[२२]

कथासरित्सागर आख्यानो मे सदर्भित वेश्याओ के सभी रूप-धूर्त, ठग, कपटी, धनलोलुप, सदाशया, उदार आदि का उल्लेख मिलते है। उस प्रारम्भिक मध्यकाल मे नारी का एक देवदासी रूप भी मिलता है। 'ईश्वरवर्मा' काचनपुर नगर मे पहुँचा। नगर के बाहर ही एक उद्यान मे डेरा डाला । भोजनादि से संतुष्ट हो इत्र आदि लगाकर वह नगर मे स्थित एक मन्दिर मे देखा कि नाटक हो रहा था। वह उसमे प्रविष्ट हुआ। उसने वहाँ सुन्दरी नामक एक नर्तकी को देखा जो तरुणाई के तूफान से उछलती हुई लावण्य सिन्धु से उच्छरित तरंग-सदृश प्रतीत हो रही थी।[२३]

इस प्रकार के अंकन कथासरित्सगार मे अन्यत्र भी है, जिनके आधार पर डॉ० एस०एन० प्रसाद ने देवदासी का रूप स्वीकार किया है जो असंगत प्रतीत होता है।[२४] देवदासियो की एक पृथक् कोटि रही है,उनको वेश्या की कोटि मे नही परिगणित किया जाता था। आस्था विशेषवश लोग अपनी कन्या को देवार्पित कर देते थे। वह कन्या देव के समक्ष नर्तन एव गायन करती थी। वह प्राय अविवाहित रहती । इस कारण वह देवदासी कहलाती थी। इस कोटि की देवदासियो का उल्लेख कथासरित्सागर मे न के समान है।

कुट्टनी कथासरित्सागर मे अवश्य चर्चित है। कुछ कालोपरान्त कुट्टनी ने राह मे जाते हुए किसी धन हीन राजपुत्र को देखा एव लोहजंघ को घर से निष्कासित करने की

युक्ति सोचने लगी। वह दौडकर उसके समीप पहुची। एकान्त मे उसे ले जाकर कहने लगी- मेरे घर मे एक दरिद्र कामी-व्यक्ति ने अधिकार जमा रखा है। इसलिए तुम मेरे घर पर आओ और ऐसा उपाय करो कि वह मेरे घर से निकल जाय। इस कार्य के पुरस्कारस्वरूप मेरी पुत्री का उपभोग करो।[२५] कुट्टनी ने कहा-बेटा ईश्वर वर्मा तुम इस बन्दर के बच्चे को ले लो, फिर उस सुन्दरी के घर पूर्ववत् रहना प्रारम्भ कर दो। काम के लिए समय-समय पर इस बन्दर से धन मांगा। करना वह सुन्दरी चिन्तामणि के समान इस बन्दर को अपना समग्र धन वैभव देकर भी तुमसे प्राप्त करना चाहेगी।[२६] कुट्टनी छल-कपट सीखने के लिए किसी कुट्टनी को सौप देता हूॅ जिससे कि यह वेश्याओ से ठगा न जा सके। यह सोचकर यमजिह्वा नामक कुट्टनी के पास गया। उसने वहा मोटी ठुड्डी वाली, लम्बे दातो वाली, चिपटी नाक वाली कुट्टनी को अपनी पुत्री को शिक्षित करते हुए देखा। 'बेटी धन से ही सब की पूजा होती है, विशेषकर वेश्याप्रेमी व्यक्ति धन नही रख सकता। वेश्या को प्रेम से दूर रहना चाहिए। राग वेश्या और सन्ध्या के लिए दोषो का अग्रदूत है।[२७]

कुट्टनीमतम् काव्य मे दामोदर गुप्त ने 'कुट्टनी' का सर्वांग चित्रण किया है- दांत प्राय गिर गये थे। बचे हुए अग्रदन्त बाहर की ओर निकले, टुड्डी झुकी हुई, नासिका भाग मोटा चिपका हुआ, उसके शुष्क शिथिळ स्तनो का ज्ञान बडे-बडे चूचको से होता। उसकी आखे लाल -लाल अन्दर की ओर धसी हुई। कानो की कर्णपाली भूषणहीन और

लम्बी अधपके केश। सोमदेव भट्ट के समकालीक कवि क्षेमेन्द्र ने समयमातृका मे कुट्टनी के गुण स्वभाव का कथन किया है- 'वह बुड्ढी नसो से बंधी हड्डी की ठठरी थी, उस डायन की आते पेट के चमडे से सट रही थी। वह सूखी-साखी हड्डियो से ढॅकी कठपूतना के सदृश प्रतीत होती थी। चमडे से पटे उसके शरीर मे बहुत से छिद्र थे। मानो वह जगत् को ठग विद्या की शिक्षा देने के लिए पिजडाबद्ध पक्षी हो। सब चबा जाने के लिए उसका मुख सदा खुला रहता था। जैसे वह त्रिलोक तौलने के लिए कल प्राप्त की तराजू हो जिसमे हजार तक अकन लगे है।[२८]

इस प्रकार अनुशीलन से पता चलता है कि कथासरित्सागरकालीन समाज मे स्त्रियो का चारित्रिक स्तर अधः पतनोन्मुख ही होता जा रहा था। लम्पट और कामातुरा नारियॉ सामाजिक पवित्रता को दूषित कर रही थी। सम्पूर्ण समाज का नैतिक पतन हो चुका था। अत कवि सोमदेव ने इसलिए निष्कर्षत कहा है- वेश्या मे तथा सिकता मे स्नेह की आशा निरी मूर्खता है। 'तूने मेरी बात नही मानी, आज वेश्या का सच्चा प्रेम तूने देख लिया। पाच करोड मुद्रा देकर अर्धचन्द्र पाया। कौन बुद्धिमान् वेश्या मे और बालू मे स्नेह (प्रेम तथा तेल) चाहता है। अर्थात् वेश्या से स्नेह और सिकता से तेल प्राप्त होना असम्भव है।[२९]

समाज मे सदा से शिव-अशिव, उचित-अनुचित, संगत-असंगत क्रियाकलाप रहे है। यह क्रियाकलाप समाज के हर अक मे व्याप्त और प्रतिष्ठित होने के कारण द्विधा

होकर संचरित रहे। इस कारण कथासरित्सागर के आख्यानो मे सदर्भित नारी समाज के प्रतिबिम्बन का यद्यपि यह अर्थ नही कि तत्कालीन नारी समाज पतितोन्मुख ही रहा क्योकि उस समय भी राज समाज, सामान्य समाज दोनो रहे है। यह तो सर्व ज्ञात है कि राजे-महाराजे सामन्त तथा अन्य श्रीसम्पन्न जन विलासोपयोग के उपकरण अवश्य ही सचित करते रहे, इसीलिए हमारे समाज मे प्रारम्भ से ही गणिकाओ का जन्म हुआ और इन गणिकाओ की परम्परा पर कतिपय विलासिनी स्त्रियॉ अपने स्वचरित्र को विस्मृत कर आर्थिक लाभ के लिए दूषित हो गयी थी, किन्तु इसके विपरीत ऐसी भी गृहणियॉ और रानियॉ, सेठ-पुत्रियॉ और यहॉ तक कि गणिकाएँ भी अकित की गयी है जो स्वचरित्र मे अत्यन्त दृढ और भावो से आन्तरिक रूप मे विशुद्ध चरित्र वाली पतिव्रताएँ कही जा सकती है। कथासरित्सागर का उपर्युक्त आकलन तत्कालीन दरबारी सस्कृति के परिप्रेक्ष्य मे हुआ माना जाना चाहिए। सम्पूर्ण नारी समाज गर्हित और वेश्या प्रवृत्ति का नही था।

खान-पान

आलोच्य कृति मे हमे नागरिको के खान-पान मे प्रयुक्त होने वाले खाद्य वस्तुओ, भोजन निर्मिति एवं यथा रुचि नागरिको के खाद्य, भोज्य, पेय, लेह्य आदि पदार्थो के उपभोग करने के अंकन प्राप्त होते है- ‘वह दिवस के अवसान पर बाजार से आटा खरीदता और वही खप्पर मे उसे गूथकर रोटियॉ बनाता। श्मशान जाकर चिता

की आग मे उन्हे सेकता तथा भगवान् महाकाल के सम्मुख उन्ही के दीप का घी लगाकर खाता था।[३०] कथासरित्सागर मे चावल के भात शब्द का प्रयोग बहुश किया गया है। चावल शुद्ध भात बनाने के लिए, माठा भात (गुड के साथ मिलाकर) खीर बनाने के लिए और नमक मिश्रित भात (खिचडी) बनाने के लिए प्रयुक्त होता था। दिन व्यतीत होने पर वह मिट्टी के पात्र मे भात खाने के लिए उसे देती थी। वहा जाते ही सोने के बर्तनो मे आकाश से दूधभात आदि जो-जो दिव्य भोजन सोचता था, वह-वह उसे उपलब्ध हो जाता।

अर्थवर्मा ने दो तोला घी से सने हुए सत्तू, थोडा सा भात एवं अत्यल्प मास का व्यंजन खाया। आज पर्व का दिन है इसलिए ब्राह्मण के लिए (खिचडी) पकाओ । तब उसकी पत्नी ने कहा - तुम दरिद्र के यहॉ वह कहॉ? सुनकर ब्राह्मण ने पुन कहा- प्रिये संग्रह करने पर भी अत्यल्प संग्रह करने की बुद्धि नही करनी चाहिए। देखो मेरा पति मर गया उसने इस प्रकार कहा। उसके ऐसा कहने पर उस धूर्त मित्र ने सोचा- कहॉ तो मैने इसे आनन्द से खीर पकाती हुई देखा था और कहॉ अभी-अभी इसका पति बिना किसी रोग के मर गया। अवश्य ही इन दोनो ने मुझे देखकर ढोग रचा है।[३१] इस प्रकार तत्समय के समाज मे भोज्य वस्तुओ मे चावल का एक प्रमुख स्थान रहा।

चावल के पश्चात् दूसरी वस्तु था गेहूॅ (गोधूम) जिसके आटे की रोटिया बनायी

जाती थी और आपूपि (का अर्थ माल पुआ) बनाया जाता था। यह मिष्टान्न होता था। मिष्टान्न मे मोदक, खीर एवं आपूपि तीनो परिगणित होते थे। मठाधीशो द्वारा मोदक खाते हुए अकन प्राप्त होता है - वह मूर्ख मठाधीश दिव्य भोजन, लड्डू आदि खाकर कुछ दिनो तक सुखपूर्वक वही रहता रहा।[३२] इस ग्रन्थ मे एक राही द्वारा आपूपि को खरीदकर खाते हुए उल्लेख मिलता है- किसी बटोही ने एक पैसे मे आठ पुए खरीदे। उसमे से छह खा लेने के पश्चात् भी उसका पेट न भरा, पर जैसे ही सातवा पूआ उसने खाया, उसका पेट भर गया। यह देखकर वह चिल्लाने लगा- हाय मै लुट गया। यदि इस सातवे पुए को पहिले खा लिया होता तो शेष पुए नष्ट होने से बच जाते। इस एक पूए से ही पेट भर जाता।[३३]

भूने हुए आटे का प्रयोग भी किया जाता था, जिसे सत्तू की सज्ञा दी गयी। सत्तू आज भी स्वादु भोज्य वस्तु है। यह पानी के सग घोलकर नमक से और घी गुड मिश्रित कर दोनो प्रकार से खाया जाता था- अर्थवर्मा ने दो तोला घी से भुने हुए सत्तू, थोडा सा भात और अत्यल्प मांस का व्यञ्जन ग्रहण किया। यशोवर्मा ने विस्मित हो कर पूछा- व्यापारी क्या तुम इतना ही भोजन करते हो? वणिक् ने कहा- आज मैने तुम्हारे कारण थोडा सा मांस-व्यञ्जन खा लिया एवं दो तोला घी भी सत्तू के साथ ग्रहण कर लिया। सदा तो मै एक कण मात्र घी सत्तू के साथ खाया करता हूँ। सत्तू प्राय यात्रा के समय पाथेय के रूप मे ले जाया जाता था- प्रिये मै राजा की आज्ञा से

वाणिज्य के लिए कही दूर देश को जा रहा हूँ। इसलिए तू पाथेय (मार्ग के लिए भोजन) स्वरूप सत्तू आदि दे दो।[३४] दूध भात खाने मे लोगो की अधिक रुचि रही।[३५]

कथासरित्सागर के आख्यानो मे सन्दर्भ उपलब्ध है कि तत्सामयिक नागरिक शाक और फल आदि भी खाने मे अभिरुचि रखते थे, एतद् विषयक पर्याप्त उदाहरण कथासरित्सागर मे उपलब्ध होते है। उसी समय क्षुधा पीडित होने पर शाक बाडे मे उतर कर सुन्दरक ने वहॉ से उखाडी हुई मूलियॉ खाकर अपनी क्षुधा को शान्त किया। वहॉ पर उसने पूर्ववत् मूलियॉ खायी और कुछ ले जाने के लिए वही रख ली तथा वही छिप गया। सुन्दरक भी प्रात· गोवाट से निकलकर मूलिया बेचकर भोजन के लिए अर्थप्राप्ति-निमित्त बाजार गया। वह मूली बेच ही रहा था कि मालवा की मूलिया बताकर मालवा के सिपाहियो ने उससे मूलियां छीन ली। हम लोग उससे पूछते है कि तुम मालवा से मूली लाकर कन्नौज मे कैसे बेचते हो।[३६] सायकाल उसने एक सरोवर को देखा जो सुन्दर शब्दायमान हंसो के स्वर से मुखरित था। उसका जल निर्मल सुधा के समान मधुर और तृप्ति प्रदान करने वाला था। उसके तट पर आम, अनार, कटहल के सुन्दर वृक्ष थे। वह बडा ही रमणीय स्थल था। उस सरोवर में उसने स्नान किया। भक्तिभाव मे शिवपूजन किया, उसके पश्चात् सुगन्धित-मधुर फलो का आहार किया।[३७]

इन अंकनो का स्पष्ट संकेत है कि शाक और फल भी उस समय आहार मे प्रयुक्त होते थे। इसके अतिरिक्त कन्दमूल एवं अन्य जंगली फलो का आहार किया

जाता था- 'जीवदत्त विश्राम करके तीर्थयात्रा के लिए प्रस्थित हो गया। तत्पश्चात् निर्जन वन मे अनेक कष्टो को सहन करता, जगली कदमूल खाता हुआ पृथ्वी के समस्त तीर्थो का भ्रमण किया।[३८] कथासरित्सागर मे मासाहार से सम्बधित उल्लेख प्राप्त होते है- 'उस नगर मे धर्म व्याघ को ढूढा तो वह दूकान पर बैठा हुआ मांस का विक्रय कर रहा था। मास बेचने वाला होकर भी तुम्हे इतना ज्ञान कैसे है? दूसरो द्वारा वध किये हुए पशुओ का मांस जीविका चलाने के लिए मै बेचता हूॅ- यह मै अपना कर्तव्य मानता हूॅ, धनार्जन के लिए मै यह नही करता।[३९] चाण्डाल और बहेलिए गोमांस तक का भक्षण करते थे- एक बार भवन की छत पर आसीन शक्ति देव ने सिर पर गोमास का बोझ उठाये हुए, चल रहे चाण्डाल को देखकर अपनी पत्नी से कहा- हे वशोदेवी। जो गाय तीनो लोको के लिए बन्दनीय है, उसका मांस यह पापी कैसे खाता है।[४०]

तत्कालीन समाज मे पेय पदार्थ भी लोक प्रिय रहे, इनमे से प्रमुख थे- दूध, गुड, चावल, दुग्ध मिश्रित खीर तथा मदिरा अथवा आसव। दूध और खीर के सदर्भ चर्चित हो चुके है। यहॉ हम मद्यपान के संदर्भ आकलित कर रहे है।- देवता-प्रसाद का बहाना बनाकर प्रधान महावत को छककर मद्यपान करा दिया। किसी उपाय से उसको अपने घर ले गये और खूब मद्य पिलाकर, पद्म के सम्बंध मे पूछा, मदोन्मन्त उसने सारा वृत्तान्त बता दिया। देवस्मिता ने भी उसका भली-भॉति स्वागत किया, मानो प्रसन्नता और सन्तोष प्रकटाने के लिए धतूरे के चूर्ण से मिश्रित मद्य खूब पिलाया।[४१]

इसी प्रकार का एक अकन इस प्रकार द्रष्टव्य है- राजा बरामदे मे बैठकर प्यालो मे धारा से गिरते हुए मद्य को शत्रुओ के मद स्वरूप पी रहा था। उस स्थान पर नृप के लिए सुन्दरियां मद्य के घटो मे राग से उज्ज्वल मद्य को मानो कामदेव के राज्याभिषेक के निमित्त स्वर्णकलशो मे तीर्थो का जल लाया जा रहा है। राजा दोनो रानियो के बीच बैठकर अपने रागपूर्ण चित्त के समान रक्तवर्ण, सुस्वादु, स्वच्छ रानियो के मुखो से प्रतिबिम्बत मद्य का सप्रेम पान कर रहा था। सुरा से पूर्ण अनेक स्फटिक के प्यालो से पूर्ण पान भूमि सुन्दर थी।[४२] इसके अतिरिक्त भी अनेक सन्दर्भ उल्लेखनीय है जहॉ मदिरा-मदिरापान का पता चलता है।[४३] कथासरित्सागर मे न केवल खान-पान के सन्दर्भ अपितु भोजनालय, मदिरालय, मदिरा पात्र आदि के भी उल्लेख प्राप्त होते है। मदिरा, मद्य, आसव मधु विविध नाम भी उल्लिखित है। भोजनालय के लिए आहार भूमि नाम का उल्लेख है- दूसरी सहेली मेरे घर से आकर कहने लगी - चलो उठो भोजनालय मे तुम्हारे लिए, प्रतीक्षा कर रहे है।[४४] वत्सराज की पान का सदर्भ आया है।[४५] मद्यपान की अभिरुचि वस्तुत श्रीसम्पन्नो एव अभिजात्य वर्गो मे ही प्राय रही।

परिधान

कथासरित्सागर मे हमे तत्कालीन समाज के समग्र स्वरूप का अंकन प्राप्त होता

है। आभिजात्य एव अनभिजात्य दोनो ही वर्णो की जीवन शैली प्रतिबिम्बित है। खान-पान एव और परिधान जीवन शैली के प्रमुख अग होते है। खान-पान की ही भाति परिधान भी विभिन्न वर्णो के अनुरूप पृथक् पृथक् रहे। सभी वर्णो के पुरुष स्त्री के परिधान, कुलीन-अकुलीन नृप, सामन्त सैनिक, रानी, महारानी, सेविका सब की पहिचान उनके परिधान से सहजत हो जाया करती थी। परिधानो मे पुरुष उत्तरीय धारण करता था, सिर पर उष्णीश (पगडी) भी रखता था- उसकी चादर के फटे हुए आधे टुकडे को ओढकर वह नल वहॉ से चला गया। उस वन मे रात्रि के समय दमयन्ती को छोडकर आधा दुपट्टा ओढे हुए चला गया और आगे जाकर वन मे लगी हुई आग देखी।[४६] नाग ने नल को वस्त्र का जोडा दिया था- यह अग्निशौच नामक वस्त्र का जोडा लो, इसे तुम जैसे ही ओढोगे तत्काल अपने पूर्वरूप को प्राप्त हो जाओगे। उसे अग्निशौच वस्त्र का जोडा देकर कार्कोटक चला गया।[४७] राजा के अंगरक्षको के परिधान ऐसे होते थे जिससे ही उनको पहिचान लिया जाता- तत्पश्चात् अंगरक्षक वीर सेनापति देववल एवं राजा चमरवल विजय प्राप्त करके निज नगर वापस आये। राजा ने पारितोषिक स्वरूप अपने सेनापति तथा अंगरक्षको को पट्ट बांधकर उन्हे रत्नो से पूर्ण कर दिया।[४८] पहिनने के वस्त्रो से अतिरिक्त ओढने के लिए चादर और ऊनी कम्बल भी प्रयुक्त होते थे।[४९]

स्त्रियो के परिधान मे कञ्चुक का उल्लेख विशेष रूप से मिलता है। एक कन्या

का रूप वर्णन- दमकती हुई धवल कुञ्चुक से लिपटी नागिन के सदृश मस्तक पर दीप्त रत्नो के भूषण एव चोली पहने हुए, लावण्य से परिपूर्ण, मोतियो से व्याप्त सागर-तरगो के समान, सौन्दर्य सम्पन्न मुक्ताहार से युक्त शोभित हो रही थी।[५०] ग्रन्थानुशील से ज्ञात होता है कि स्त्री-पुरुष दोनो ही शृगार प्रसाधन के उपकरणो का उपयोग करते थे। श्री सम्पन्न जनो के तो स्नानादि का भी अत्यन्त मनोरम वर्णन मिलता है। स्नान-क्रिया मे दासियां सहयोगिनी रहती- अन्दर जाकर दासियो के शरीर पर वस्त्राभूषणादि उतार कर कमर मे लपेटने के निमित्त एक वस्त्रखण्ड दे दिया। यह कदाचित् आधुनिक काल के तौलिए जैसा कोई वस्त्र रहा होगा। स्नानोपरान्त शरीर पर अग-राग लेपन किया जाता था। स्त्रियॉ आलक्तक (महावर) का प्रयोग करती थी। शारीरिक कान्तिवर्धन-हेतु अगराग, आभूषण आदि का प्रयोग होता था। प्राप्त रत्नो मे से एक बेचकर अपने लिए भोजन, वस्त्र, इत्र, तेल, आदि शृङ्गार के अनेक उपकरण खरीदा। स्त्रियॉ ऑख मे काजल लगाती थी।[५१]

अलङ्करण

शृंगार प्रसाधन की दृष्टि से कथासरित्सागर मे विविध आख्यान दृष्टिगत होते है। शृंगार प्रसाधन की ही भांति समाज मे अलङ्करण प्रियता भी स्त्री-पुरुष दोनो मे समान रूप से पायी जाती थी। विविध अलंङ्करणो के अंकन प्राप्त होते है- हम दोनो के परस्पर

प्रतिज्ञाबद्ध होने पर लडकी मुह घुमा कर सो गयी। मैने उसकी अगुली मे अंगूठी पहना दी।[५२] आभूषणो पर-नामाकित होते थे, जो रानियॉ धारण करती थी। ऐसा प्रसंग नृप सहस्रानीक एव रानी मृगाकवती की कथा मे आता है, जब मृगाकवती अपने हाथ का ककण पुत्र उदयन को पहनाती है- माता मृगाकवती ने अति स्नेहवश नृप सहस्रानीक के नामोट्टकित ककण अपने हाथ से उतार कर उदयन के हाथ मे पहना दिया। उदयन ने वह ककण सपेरे को देकर उसके द्वारा पकडे गये सॉप को मुक्त करा दिया था। वह संपेरा पकडा गया। नृप सहस्रानीक ने पूछा- तुम्हे यह कंकण कहॉ प्राप्त हुआ।[५३]

अंगूठी पहिनने की परम्परा अधिक थी, यही कारण है कि अगूठी का उल्लेख प्राय किया गया है- देवकन्या ने श्रीदत्त को विषनाश करने वाली एक अंगूठी दी।[५४] पाताल से गंगातट पर निकला हुआ श्रीदत्त खड्ग और अंगूठी देखता हुआ दु:खी और चकित हो गया। श्रीदत्त ने राजकुमारी को अंगुली मे अगूठी पहना दी और मंत्र भी पढा।[५५] हार भी पहना जाता था- स्नान करते हुए उसे चारो द्वारा वाबली मे छिपाये हुए कुछ वस्त्र मिले जिनकी गॉठ मे एक बहूमूल्य हार बधा हुआ मिला।[५६] अंगूठी स्त्री-पुरुष दोनो समान रूप से पहिनते रहे।

समाज मे आभिजात्य-अनाभिजात्य वर्ग दोनो सदा से रहे है। दोनो का सामाजिक स्तर पृथक्, सामर्थ्यनुसार रहता रहा है। श्रीसम्पन्नो के अलंकरण अधिक मूल्यवान् और

सामान्य जनो का सामान्य होता था। कथासरित्सागर मे एक ऐसी वणिक् कन्या के कर्णाभूषण के खो जाने का सन्दर्भ है, जो मोती जटित था- उसी समय बिहार को हलचल मे उस वणिक् की बेटी का मोती जडा हुआ कान का बहुमूल्य आभूषण कही गिर पडा। जाने की शीघ्रतावश उसने उस कर्णाभूषण पर ध्यान नही दिया, प्रेमी से आज्ञा प्राप्त कर अपने घर चली गयी। राज्य करने के पश्चात् उसने बन्धक को दान देकर उस कर्णाभूषण को अपने श्वसुर के पास भेज दिया। वह वैश्य, इस प्रकार अपनी कन्या के कर्णाभूषण को पाकर घबराया हुआ उसके पास गया, उसे दिखाया।[५७]

करधनी, कंकण, हार, घुघरू (पायजेब) भी स्त्रियो के आभूषण थे कथासरित्सागर मे प्राप्त होता है- किसी मूर्ख को भूमि खोदते-खोदते बहुत से आभूषण मिल गये। वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। अपनी भार्या को लाया। उसने उसे पहिनाना प्रारम्भ किया। कटि मे पहिनी जाने वाली करधनी को उसने सिर पर बांध दिया और हार को कमर मे। पैरो की पायजेब उस के हाथ मे तथा हाथो के कंकण को उसने स्त्री के कानो मे लटका दिया।[५८] हार के साथ-साथ 'केयूर' के भी सन्दर्भ है - विद्याधरो को राजा मदनबेग हार तथा केयूर धारण किये हुए दिव्य रूप से उतरा।[५९] ग्रन्थ मे सग्रहीत आख्यानो के घटनानुक्रमान्तर्गत सदर्भित विविध वर्ग के स्त्री-पुरुष मेखला, अंगूठी, कण्ठहार, वलय, केयूर आदि आभूषण धारण करते अंकित किये गये है।

मनोरंजन के साधन

कालोपरान्त नृपति के मत्रियो को पुत्र उत्पन्न हुए- प्रधानमंत्री युगन्धर को यौगन्धरायण, सेनापति सुप्रतीक की रूपण्वान एवं नृप के नर्म सचिव को वसन्तक।[६०] नर्मसचिव प्राय विदूषक नाम से लोकप्रिय होता रहा। विदूषक अर्थात् रसिक, मसखरा, परिहासक - अपनी वेषभूषा, हावभाव, वार्तालाप, क्रियाकलाप-से राजदरबार मे मनोरजक वातावरण की सृष्टि करे। अर्थ यह कि तत्कालीन समाज मे मनोरंजन नागरजनो का व्यसन रहा। कथासरित्सागर की रचना ही कश्मीर महाराज्ञी 'सूर्यमती' के चित्त विनोद हेतु हुई थी। कथासरित्सागर जिस काल की रचना है, राज-दरबारी' सस्कृति का है। राजो-महाराजाओ और सामन्तो का युग था। सामाजिक संस्कृति का भी सूत्र वही से शृखलायित था। उस कारण मनोविनोदना के साधन एव प्रक्रियाएँ वही से उद्भूत परम्परित होकर प्रतिष्ठित हुई। उस समय मनोरंजन के विविध रूप- श्रीमन्तो, आभिजात्यवर्गो के पृथक्, बुद्धिजीवियो के अलग एवं नागरजनो के पृथक्-पृथक् थे। नृप-सामन्तो मे प्रतिष्ठित मनोरंजन का साधन था।

मृगया

राजे-महाराजो, एवं सामान्तो एवं राज्य सम्बद्ध जनो के लिए मृगया अत्यधिक प्रिय था। कथासरित्सागर मे मृगया के अंकन है नरवाहनदत्त अनेक मित्रो के संग गजाश्व

और पदाति सैन्य बल साजकर मृगया- निमित्त प्रस्थित हुआ, यहॉ कवि सोमदेव ने अत्यन्त ही मनोरम चित्र उपस्थित किया है- वह मृगयाक्रीडा-मूलत· नरवाहनदत्त के लिए प्रसन्नता का कारण बन गयी। वह मृगया भूमि विशाल हाथियो के कुम्भस्थलो को विदीर्ण करने वाले, निहत सिंहो के नखो से पतित मुक्ताराशि के कारण ऐसी प्रतीत हो रही थी, मानो उसमे बीज बोये गये है। भालो से हत बाघो के विदीर्ण दाढो से वह मृगया भूमि जैसे अंकुरित हो उठी है। मारे हुए हरिणो के शरीर के स्रवित हो प्रसरित रक्त से ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे रक्त पल्लवो से युक्त हो गयी हो। बाणो से बिधे सूकर समूह के कारण मानो गुच्छपूर्ण हो गयी है और पतित सरभ-शरीर ने जैसे फलवती बना दिये हो। उस मृगया भूमि से सनसनाते हुए बाण छूट रहे थे। ऐसी वह वन की मृगया-भूमि अनेकश शोभाशालिनी बन रही थी।[६१]

मृगया क्रीडा मे केवल भाले ही नही अपितु अन्य भी माध्यम अपनाये जाते थे। नरवाहन दत्त घोडे पर आरूढ वन के दूसरे प्रान्तर मे चला गया। वहॉ अपने गोफण से गोली फेकने की क्रीडा प्रारम्भ कर दी।[६२] कीचड़ मे सने शूकरो के समूह पर वह वाण संधानकर उन्हे मार डालते, उनका पीछा करते भयातुर हो इतस्तत: भागते हुए कृष्णसार मृग ऐसे मालूम होते थे जैसे पूर्वकाल मे विजित दिशाएँ उस नरवाहनदत्त पर कटाक्ष कर रही हो। जंगली भैसो को मारने के कारण उनके तन से स्रवित रुधिर के कारण वनभूमि ऐसी प्रतीत होती कि कमलिनी नृप के स्वागतार्थ उपस्थित हो। भालो से विंधे

मुखवाले सिहो को देखकर नृप आनन्दित होता था। अपने शस्त्र पर विश्वास करने वाले नृप की मृगया-क्रीडा के समय गड्ढो मे छिपे हुए शिकारी कुत्ते और मार्ग पर जाल बिछे रहते थे।[६३]

द्यूत क्रीडा

यह भी राजो-महाराजाओ का ही मनोरंजन था। शनै शनै· अन्य नागर जन भी व्यसनी बन गये। कथासरित्सागर मे शास्त्र मर्यादा के पालक नृपनल मे कलियुग दोष ढूढने मे तत्पर हो गया। अन्तत. एक दिन नल मद्यपान के प्रभाववश बिना सन्ध्या पूजन किये, पाद-प्रक्षालन बिना किये ही शयन करने लगे। अवसर देखकर कलि नृप नल के शरीर मे प्रविष्ट हो जाने के उपरान्त नृप नल धार्मिक मर्यादा का त्यागकर मनमाना करने लगा- जैसे द्यूत क्रीडा, दासियो के संग रमणलीला, असत्य भाषण, दिन मे शयन और रात्रिजागरण, अकारण क्रोध, अन्याय से धनार्जन, सज्जनो का अपमान तथा दुष्टो का सम्मान करने लगा। यह सब मद्यपान और द्यूत क्रीडा का परिणाम है।[६४] ग्रन्थानुशीलन से पता चलता है कि द्यूत-व्यसन समाज मे व्यापक रूप से प्रचलित था-उज्जयिनी नगरी मे ठिण्ठाकराल नामक एक जुआड़ी हुआ। वह प्रतिदिन द्यूत क्रीडा मे हारता था, जीतने वाले उसे एक सौ कौडिया दिया करते थे।[६५] वहॉ उसने द्यूत क्रीडा मे संलग्न देखा, फिर आकर जुआ के स्थान पर सभी जुआडियो को हरा दिया।[६६] राजघरानो मे यह व्यसन राजकुमारो मे प्रारम्भ से ही आ जाता था।

कुमारावस्था मे उसने जुए की विपत्ति से ग्रस्त होकर बहुत कष्ट उठाया था, अत उसने जुआडियो के लिए एक बहुत बडा मठ बनवा दिया है। वहॉ रहने वाले जुआडी अपनी इच्छानुसार भोजन प्राप्त करते है वत्स तुम वही चले जाओ। तुम्हारा कल्याण होगा।[६७] यह द्यूत-क्रीडा यद्यपि हानि कर व्यसन था, तथापि जन समाज इससे आनन्द उठाता । कथासरित्सागर मे एतद्विषयक अनेक आख्यानो का अकन हुआ है।[६८]

जलक्रीड़ा

यह श्रीमानो का अतिप्रिय मनोरजन था। नन्दन वन मे महेन्द्र के समान दीर्घकाल पर्यन्त उद्यान मे अपनी रानियो के साथ विहार करता हुआ राजा सातवाहन जलक्रीडा-निमित्त जल मे अवतरित हुआ। जल विहार काल मे रानिया भी उसे सीचने लगी जैसे हथिनियां हाथी को सीचती हो। काजल घूल जाने से लाल नेत्रो से और पानी से वस्त्रो के अग मे चिपक जाने के कारण स्पष्ट दीखते हुए शरीर के भिन्न अवयवो से वे राजा के मन का अपहरण करने लगी।[६९] एक बार नृप भीम की कन्या दमयन्ती जलक्रीडा के लिए सरोवर मे प्रविष्ट हुई। सरोवर मे उसने कमलनाल खाते हुए एक राजहंस को युक्ति से अपनी चादर फेककर पकड लिया।[७०]

संगीत

श्रीमन्त समाज के लिए यह मनोरंजन का परम प्रिय माध्यम था। सभा मे गीत-

श्रवण का आनन्द लिया जाता था। ग्रन्थ के अंकनो से संकेत मिलता है कि वत्सराज उदयन संगीत प्रेमी और स्वय कुशल वीणावादक रहे -नृप चण्डमहासेन ने उन्हे अपनी पुत्री वासवदत्ता को संगीत-शिक्षा के लिए नियुक्त किया था। उसने निर्देश दिया-हे राजन! तुम इसे गन्धर्व विद्या की शिक्षा दो। इससे तुम्हारा कल्याण ही होगा। वत्सराज उदयन चण्डमहासेन की संगीत शाला मे वासवदत्ता को सगीत की शिक्षा देने लगे। सगीत शाला मे उदयन के मनोविनोदार्थ गोद मे घोषवत्ती वीणा, कण्ठ मे सगीत का स्वर और आंखो के सामने वासवदत्ता ।[७१] राजा उदयन स्वयं वीणा बजाता हुआ रानी वासदत्ता एवं पद्मावती के सग सगीत का सेवन करता। वासवदत्ता के सूक्ष्म तथा मधुर संगीत स्वर की एकता होने पर बजाने के लिए चलते हुए अँगूठे से ही दोनो का भेद लक्षित होता था, अर्थात् गायन और वादन का स्वर एक साथ मिलने पर यह प्रतीत नही होता था कि रानी गा रही है, अथवा वीणा बज रही है।[७२]

सागरदत्त की पत्नी गन्धर्वदत्ता अद्‌भुत वीणा वादिका और गायिका थी अनुपम सुन्दर। वह श्रुतियो मे स्वरो को मिलाती हुई संगीत कला मे सरस्वती के समान तथा सौन्दर्य मे लक्ष्मी के समान थी। उसे देख तथा सुनकर नरवाहनदत्त विस्मित हो गये। नरवाहनदत्त ने कहा-राजपुत्री, तुम्हारी वीणा का स्वर सुन्दर नही प्रतीत हो रहा है। सम्भव है कि तंत्री तार मे कही कोई बाल फसा हो। नरवाहनदत्त ने वीणा बजाते हुए विष्णु संबधी सगीत इतनी मनोहर रीति से गाया कि वहॉ उपस्थित गन्धर्व तक चित्र

लिखित से रह गये।[७३] कथासरित्सागर मे गन्धर्व और विद्याधरो के भी आख्यान होने से सगीत के सदर्भ सहज है।

मल्लक्रीड़ा

कथासरित्सागर के रचना काल पर्यन्त मल्लक्रीडा भी एक मनोरजन का साधन रहा। मल्लो का सम्मान होता था। मल्लक्रीडा के अवसर पर दो मल्ल, मल्ल कला प्रदर्शन की विविध कलाएं प्रदर्शित करते और प्रतिपक्षी मल्ल पर विविध प्रकार प्रहार करते थे, वह 'प्रहार-क्रिया' विशेष संज्ञा से अभिहित होती रही होगी। वाराणसी मल्लो के लिए प्रख्यात थी-महाधनी वणिक् की प्रार्थना पर वाराणसी उसके यहॉ रहना उसने स्वीकार कर लिया। वही चन्द्रस्वामी का पुत्र अशोकदत्त युवावस्था प्राप्त कर मल्ल कला सीखने लगा। शनै शनै: वह मल्ल विद्या मे दक्ष हो गया। संसार के अन्य मल्लो के द्वारा उसको पराजित करना दूभर था। किसी देवयात्रा के मेले मे दक्षिण प्रदेश का एक विख्यात मल्ल वाराणसी आया। वह काशिराज प्रताप मुकुट के समक्ष ही उनने सभी मल्लो को मल्ल विद्या के बल पर पछाड दिया। वह वणिक् के यहॉ निवसने वाले मल्ल अशोकदत्त की प्रशंसा सुन चुका था, अत उसे बुलवाया। दक्षिण प्रदेश का जीता हुआ मल्ल ताल ठोककर अखाडे मे उतरा। अशोकदत्त उस महामल्ल को हाथ मरोड़कर पछाड़ दिया। दक्षिण देश के मल्ल के पछाड दिये जाने पर प्रसन्नतापूर्ण जनरव गूॅज

उठा। काशिराज प्रताप मुकुट ने उसे पुरस्कार स्वरूप रत्न आदि भेट किया। इतना ही नही नृप ने उसे अपना अगरक्षक नियुक्त कर लिया।[७४]

चित्रांकन

चित्राकन भारत की अतिप्राचीन कला रही है। भारतीय साहित्य प्रमुखत. सस्कृत, काव्य, नाटक और कथाकाव्यो मे इसके संदर्भ सामान्य है। कथा मे जहॉ भी राजसभा, राज अन्त.पुर और प्रिय-प्रिया-वियोग के अवसर मिले है, कवि चित्राकन-कला विस्मृत न कर सका, नायक- नायिका का और नायिका नायक का चित्राकन करते मिलते है। कथासरित्सागर की रचना का मूलोद्देश्य रानी सूर्यमती का विनोद हेतु रहा है अत इसमे चित्रांकन के सदर्भ उपब्लध हो जाते है-पद्मावती वासवदत्ता को अपने आश्चर्यमय भवन मे ले गयी। वहॉ राजभवन की दीवारो पर लिखे हुए रामचरित के चित्रो का अवलोकन कर, विरह वेदना को वह सीता के समान सहन करने लगी।[७५] राजा सूर्यप्रभ दिव्य चित्रकला मे दक्ष था। इसलिए वह दिव्य विद्याधरियो के चित्र अकित कर अपनी प्रियाओ मे प्रणय कोप की सृष्टि करता था।[७६] भित्ति चित्र निर्मित करने की परम्परा रही-बिना भित्ति के ही चित्र रचना यदि कर दी जाय तो अत्यन्त आश्चर्य का विषय है।[७७] राजा चित्र लिखा सा पड गया।[७८] चित्रावली दीवार से निकलकर गदा और चक्रधारण किये पुरुष दातो से और अधरोष्ठ मे तथा नखो से स्तनो मे क्षत कर स्त्रियो का उपभोग

करता है, एव पुन उसी दीवार मे लीन हो जाता है।[७९] चित्रपट, चित्रशाला आदि भी सदर्भित है।

पशु-पक्षी पालन

यह भी नगर जीवन का एक प्रिय मनोरजन रहा। नारियॉ पिजडो मे शुक पालती थी और उनके मधुर बोल से मन बहलाती थी। बन्दर के शाव भी मनोविनोद के लिए पालित होते थे। ऐसे अंकन कथासरित्सागर मे उपलब्ध है- विरहकातरा मकरन्दिका को उद्यान का वायु, सौरभ और यहॉ तक कि शुक की मधुरवाणी भी अप्रिय लगने लगी- मकरन्दिका को न तो उद्यान में शान्ति मिलती थी न संगीत मे और न सखियो के बीच मे। वह अब शुको की भी विनोदपूर्ण वाणियो नही सुनती थी, न प्रिय लगती।[८०] मर्कट शिशु पालने और उससे मन बहलाने के भी सन्दर्भ मिलते है- हे सुन्दरी! यदि तू चाहती है तो तेरे प्रिय स्वामी को मै अभी बन्दर का बच्चा बना देती हूँ। इसे साथ लेकर मथुरा चली जा। मै मंत्र और इसकी युक्ति भी बता देती हूँ। इससे तुम एकान्त मे इसे पुरुष बनाकर इच्छानूकुल सगम मे सफल हो सकोगी। सखी का वचन सुनकर वह बन्धुदत्ता मर्कट शिशु लेकर मथुरा गयी।[८१] इसी प्रकार खिलौने और गोली खेलने के भी सदर्भ अंकित है। सोम्प्रभा सखी कलिंगसेना के मनोरजन हेतु एक डोलची मे काष्ठ पुत्तलिकाएँ एवं यत्रमय खिलौने ले गयी।[८२] गोली खेलने का एक संदर्भ-वह

बालक गोलिया खेल रहा था। किसी बहाने से मार्ग मे आती हुई एक तपस्विनी को गोली से मारा।[८३]

उत्सव विहार तथा गोष्ठी

नगर जन ऋतु अनूकूल विविध उत्सवो-इन्द्रोत्सव, वसन्तोत्सव, देवोत्सव आदि उपवन-विहार तथा विदग्ध गोष्ठियो मे आनन्द उठाते थे। आलोच्य ग्रन्थ कथासरित्सागर मे एतद्विषयक सदर्भ अकित है-एक बार इन्द्रोत्सव देखने के लिए हम लोग नगर से निकले, वहाँ हम लोगों ने एक कन्या देखी जो कामदेव के सायक विहीन धनुष के समान थी।[८४] वसन्तोत्सव के अंकन अधिक है। वसन्त में नागर जन अधिक आनन्दित रहते - वसन्तोत्सव की धूम-धाम मे नागरिको के व्यस्त रहने पर तुम रात के प्रथम प्रहर मे मेरे घर आ जाओ। कतिपय समयोपरान्त वसन्तोत्सव के समय राजा सातवाहन उस देवी द्वारा सकेतित उद्यान मे गया। किसी समय वसन्तोत्सव के अवसर पर श्रीदत्त अपने मित्रो के साथ किसी उपवन मे मेला देखने गया। वसन्तोस्तव मे उद्यान मे बैठी मुझे मेरी सखियो ने कहा-इसी नगरी के उद्यान मे वृक्ष-कुंज मे सिद्धिदाता, वर गणेश की मूर्ति है। वह भक्तो की मनोभिलाषा पूर्ण करने वाले है। वसन्तकाल मे उपक्रोश के गगास्नान-गमन का उल्लेख किया गया है।[८५]

नवम् लम्बक मे सोमदेव ने वसन्त का मनोरम रूप वर्णित किया है- वसन्तोत्सव

काल मे दम्पति के जीवन मे मानवती स्त्रियो के मानरूप हाथी का मर्दन करता हुआ एव केसर पुष्पो की छटा धारण वसन्त केसरी के समान सभी नागरजन मदोन्मत्त होकर आनन्दित हो उठते है। इस समय कामदेव विकसित आम्रमजरी रूपी धनुषो की भ्रमरपक्ति-डोरी सज्जित हो जाती है।[८६] ऐसे मादक काल का नागरजन उपवन-विहार के माध्यय से आनन्द रसायित होकर लाभ उठाते है। सोमदेव ने वसन्त काल मे जलक्रीडा का अत्यन्त मनहर चित्र उपस्थित किया है-उपवन मे बहुत समय तक विहारोपरान्त राजा कनकवर्ण स्नान करने के लिए अपनी सभी रानियो के सग गोदावरी नदी मे प्रवेश करके जलक्रीडा करने लगा। जल विहार के कारण इधर-उधर अस्त-व्यस्त होते हुए गीले और सूक्ष्म वस्त्रो से स्पष्ट दिखाई पडते रानियो के अग देखकर तब अत्यन्त हर्षित होता था।[८७]

कथासरित्सागर मे सन्दर्भित विविध आख्यानान्तर्गत चित्रित समाज मध्यकाल का एक समृद्ध, सस्कृत, परम्परित-मर्यादा-समन्वित, वर्ण व्यवस्था-सगभित तत्कालीन स्थितिगत परिवेशानुकूल वर्णाश्रधर्म संपोषित, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि का जीवन और उनके आचार, खान-पान, परिधान एव नारी के प्रति भी प्रकृत-अभिरुचि से युक्त था। रूपसज्जा के प्रति सामान्य जन प्रकृत-अभिरुचि से युक्त था। रूपसज्जा के प्रति नारी के चारित्रिक विकास एव समन्वयन आश्रित था। नारी समाज, राज अन्त पुरीय सस्कृति से प्रभावित विलास-प्रिय रहा। कथासरित्सागर मे नारी को विलास और क्रीड़ा की भूमि-

स्वरूप विशेषत चित्रित करना चाहा है, जो उसके मन-मस्तिष्क पर राज्याश्रयी सस्कृति का प्रभाव रहा होगा। अन्यथा तत्कालीन नारी समाज-चरित्र के शील, औदात्य, सदाशयता, धर्मनिष्ठा एवं पतिनिष्ठा भावो के प्रति सजग एवं अनुप्रेरक था।

नारी, समाज में अपने शील और सौहार्द के कारण ऋतुसबधी उत्सवो मे स्वेच्छानुसार आनन्द एव मनोरजन के विविध साधनो का उपयोग एवं उपभोग करने मे स्वतंत्र थी, उसके ऊपर किसी प्रकार का सामाजिक बंधन नही था। आधुनिक काल की तरह वर्षाकाल मे होने वाले झूला झूलने का उत्सव उस समय भी होता रहा, जो सुरम्य उपवनो मे, वृक्षशाखाओ पर प्रेखा-दोला लगाकर किया जाता रहा। वहॉ कान्ताऍ एव नवयौवनाऍ स्वतंत्र रूप से झूला-झूलकर परस्पर आनन्द मनाती थी।[८८] इससे प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज मे नारीजन की सामाजिक प्रतिष्ठा थी।

संदर्भ एवं पाद-टिप्पणी

१ इति तासु वन्दतीषु जगादैका सविस्मयम्।
ब्रूत स्त्रीलम्पट कस्मादार्यपुत्रो बतेदृश ।

आहितास्वपि भार्यासु भूयसीषु नवा नवा।
अनिश राजपुत्रीर्यत्स गृह्णन्नैव तुष्यति।।

एतच्छ्रुत्वा विदग्धैका तासु नाम्ना मनोवती।
उवाच श्रूयता येन राजानो बहुवल्लभा।।

-कथासरित्सागर/लम्बक ८/तरग ४/१०२-१०४

२ देशरूपवयश्चेष्टाविज्ञानदिविभेदत।
भिन्ना गुणा वरस्त्रीया नैका सर्वगुणान्विता।।

कर्णाटलाटसौराष्ट्रमध्यदेशादिदेशजा।
योषा देशसमाचारै रञ्जयन्ति निजैर्निजै।।

काश्चिद्धरन्ति सुदृश शारदेन्दुनिभैर्मुखै ।
अन्या कनककुम्भाभै स्तनैरुन्नतसहतै ।।

स्मरसिहासनप्रख्यैरपरा जघनस्थलै।
इतराश्चेतरैरङ्गै स्वसैन्दर्यमनोरमै।

काचित्काञ्चनगौराङ्गी प्रियङ्गश्यामलापरा।
अन्या रक्तावदाता च दृष्ट्वैव हरतीक्षणे।। -लम्बक ८/तरग ४/१०५-१०९

३ काचित्प्रत्यग्रसुभगा काचित्सम्पूर्णयौवना।
काचित्प्रौढत्वसुरसा प्रसभ्भ्रिमोज्ज्वला।।

हसन्ती शोबते काचित्काचित्कोपेऽपि हारिणी।
व्रजन्ती गजवत्कापि हसवतकापि राजते।।

आलपन्त्यमृतेनेव काचिदासिञ्चति श्रुतिम् ।
सभ्रविलास पश्यन्ती स्वभावाद् भाति काचन।।

नृत्तेन रोचते काचित् काचिद्गीतेन राजते।
वीणादिवादनज्ञानेनान्या कान्ता च रोचते ।।

काचिद् बाह्यरताभिज्ञा काचिदाभ्यन्तरप्रिया।
प्रसाधनोज्ज्वला काचित् काचिद्वैदग्ध्यशोभिता।।

भर्तृचित्तग्रहाभिज्ञा चान्या सौभाग्यमश्नुते।
कियग वच्मि बहवोऽप्यन्येऽन्यासा पृथग्गुणा ।।

तदेवमहि कस्याश्चिद् गुणः कोऽपि वरस्त्रिय ।
न तु सर्वगुणा सर्वास्त्रिलोक्यामपि काश्चन।।

अतो नानारसास्वादलब्धकक्ष्या किळेश्वरा ।
आहृत्याप्याहरन्त्येव भार्या नवनवा सदा।।

उत्तमास्तु न वाञ्छन्ति परदारान् कथञ्चन।
तन्नार्यपुत्रस्यैष स्याद्दोषो नेर्ष्या च न क्षमा।। -वही/वही/११०-११८

४ न च श्रिय स्त्रियश्चेह कदाचित्तस्यचित् स्थिरा ।। - आदि-आदि/लम्बक ७/तरग ३/१४२-१४३

५ नियन्तु चपला नारी रक्षयापि न शक्यते।
कि नामोत्पातवाताळी बाहुभ्या जातु बध्यते।। - लम्बक ७/तरग २/९३

६ इति जगति न रक्षितु समर्थ क्वचिदपि कश्चिदपि प्रसह्य नारीम्।
अवति तु सतत विशुद्ध एक कुलयुवती निजसत्त्वपाशबन्ध ।। -लम्बक ७/तरग २/१३३

७ भृङ्गीव पुष्प पुरुष स्त्री वाञ्छति नव नवम् ।
अतोऽनुतापो भविता ममेव भवत सखे।। - लम्बक ७ /तरग ३/१७४

८ पुरुषस्तस्य भार्या च बभूव व्यभिचारिणी।
स ददर्शैकदा साय भार्या ता जारसङ्गताम् ।।

जघान त च तज्जार खड्गेनान्तर्गृहस्थितम्।
रात्र्यपेक्षी च तस्थौ स गरि भार्या निरुध्य ताम्।।

तत्काल च निवासार्थी तमत्र पथिकोऽभ्यगात्।
दत्वा तस्याश्रय युक्त्या तेनैव सह त हतम्।
पारिदारिकमादाय रात्रौ तत्राटवी ययौ।

तत्रान्धकूपे यावत्स शव क्षिपति त तया।
तावदागतया पश्चात्क्षिप्त सोऽप्यत्र भार्यया।।

- इत्यादि लम्बक ६/तरग ८/१८२-८८

९ एकदा निर्गता क्रेतु गृहोपकरणानि सा।
ददर्श त सुन्दरक कालरात्रि किलापणे।।

उपेत्य च जगादैन पुनरेव स्मरातुरा।
भज सुन्दरकाद्यापि मा त्वदायत्तजीविताम्।।

एवमुक्तस्तया सोऽथ साधु· सुन्दरकोऽब्रवीत्।
मैव वादीर्न धर्मोऽय माता मे गुरुपत्न्यसि।।

ततोऽब्रवीत्कालरात्रिर्धर्म चेद्वेत्सि देहि तत्।
प्राणान्मे प्राणदानाग्नि धर्म कोऽभ्यधिको भवेत् ।।

अथ सुन्दरकोऽवादीन्मातर्मैव कृथा हृदि।
गुरुतल्पाभिगमन कुत्र धर्मो भविष्यति।।

एव निराकृता तेन तर्जयन्ती च त रुषा।
पाटयित्वा स्वहस्तेन स्वीत्तरीयमगाद् गृहम् ।।

परम सुन्दरकेणेद- - - - - - - -लम्बक ३/तरग ६/१५०-५६

१० वीक्ष्य चेद चतु शाल प्रविश्याभयन्तर मया।
दृष्टा दृष्टिसुधावृष्टिस्त्व तापशमनी शुभे।।

इत्युक्तवन्त पर्यड्के निवेश्यैवालिलिड्ल तम्।
मोहिता राजदत्ता सा मदेन मदनेन च।।

स्त्रीत्व क्षीबत्वमेकान्त पुसो लाभोऽनियन्त्रणा।
यत्र पञ्चाग्नयस्तत्र वार्त्ता शीलतृणस्य का।।

न चैव क्षमते मारी विचार मारमोहिता।

यदिय चकमे राज्ञी तमकाम्य विपद्गतम्।। -लम्बक ७/ तरग २/ ८५-८८

११ राज्ञी विलासहासादि चक्रेऽशोकवती सदा।
एकदा सा कररुहैर्विध्यन्ती विजने मुहु ।।

उवाचच वारयन्त त धीर स्मरशरातुरा।
वीणावाद्यापदेशेन त्व सुन्दर मयार्थित ।।

त्वयि गाढोऽनुरागो हि जातो मे तद्भजस्व माम्।

एवमुक्तवती राज्ञी गुणशर्मा जगाद ताम्।।

मैव वादीर्मम त्व हि स्वामिदारा न चेदृशम्।
अस्मादृश प्रभुद्रोह कुर्याग्रिम साहसात्।।

इत्योूचिवास सा राज्ञी गुणशर्माणमाह तम् ।
किमिद निष्फल रूप वैदग्ध्य च कलासु ते।--परिष्याम्यवमानिता।।-लम्बक ८/तरग६/४८-५६

१२ पर्यन्त विरसा कढटा प्रतिक्षणनिवर्तिनी।
भवस्थितिरिवा नित्य सम्बन्ध हि विलासिनी।। -लम्बक ९/तरग २/ ३८७

१३ ततस्तदैव तेनोष्ट्रपृष्ठार्पितघधनर्द्धिना।
साक सा तुरगारूढा प्रायन्नाट्योपदेशिना।।

सादौ वैद्याधरी लक्ष्मी त्यक्त्वा राजश्रिय पुन।
शिश्रिये चारणर्द्धि सा धिक् स्त्रीणा चपल मन।।

-लम्बक ९/तरग २/२७६-७७,

१४ एकदा तस्य राज्ञश्च निकट मध्यदेशत।
आगाल्लब्धवरो नाम नाट्याचार्योऽत्र नूतन।।

स दृष्टकौशलस्तेन भूभृता वाद्यनाट्ययो।
सम्मान्यान्त पुरस्त्रीणा नाट्याचार्यो व्यधीयत।

तेनानङ्गप्रभा नृत्ते प्रकर्ष प्रापिता तथा।
नृत्यन्त्यपि सपत्नीना स्पृहणीयाऽभवद्यथा।।

सहवासाच्च तस्याथ नृत्तशिक्षारसादपि।
नाट्याचार्यस्य सानङ्गप्रभाभूदनुरागिणी।।

तस्याश्च रूपनृत्ताभ्यामाकृष्ट स शनैरहो।
नाट्याचार्योऽपि कामेन किमप्यन्यदनृत्यत ।।

विजने चैकदानङ्गप्रभा सा नाट्यवेश्मनि।
प्रसह्य नाट्याचार्य तमुपागाद्रतलालसा।।

सुरतान्ते च सात्यन्तसानुरागा जगाद तम्।
'त्वया विना कृता नाह स्थातु शक्ष्याम्यह क्षणम्।।

राजा हरिवरश्चैतद्बुध्वा नैव क्षमिष्यते।
तदेह्यन्यत्र गच्छावो यत्र राजा न बुध्यते।

अस्ति हेमहयोष्ट्रादि धन च तव भूभृता।
नाट्यतुष्टेन यद्दत्तमस्ति चाभरण मा।।
तत्तत्र त्वरित याम स्थास्यामो यत्र निर्भया -लम्बक ९ / तरग २/ २६५-२७४

१५ तस्मिन्प्रयाते यातेषु दिवसेष्वेकदात्र सा।
देवी वातायनाग्रस्था कञ्चत्पुरुषमैक्षत।।

स दृष्ट एव रूपेण तस्याश्चित्तमपाहरत्।
स्मरेणाकृष्यमाणा य तत्क्षण सा व्यचिन्तयत्।।

जानेऽह नार्यपुत्राद्यत्सुरूपोऽन्यो न शौर्यवान्।
धावत्येव तथाप्यस्मिन् पुरुषे बत मे मन।।

तदद्यैव भजाम्येनमिति सञ्चिन्त्य सा तदा।
सख्यै रहस्यधारिण्यै स्वाभिप्राय शशस तम्।।

तयैवानाय्य नक्त च वातायनपथेन सा।
अन्त पुर त पुरुष रज्जत्क्षिप्त न्यवेशयेत्।। -लम्बक १०/तरग१/ १२०-१२४

१६ निष्कास्यते तथैवात्र पश्चिमाया पुनर्निशि।
पानमत्ता च सा नैव निभालयति किञ्चन।।

एषा च तत्स्थिति ख्याति नगरेऽत्राखिले गता।
बहुकालो गतोऽद्यापि न चायाति स तत्पति ।।

एतद्वृद्धावच श्रुत्वा धनदेवस्ततैव सा।
युक्त्या निर्गत्य तत्रागात् सान्तर्दु ख ससशय ।।

दृष्ट्वा स तत्र दासीभि पेटा रज्ज्ववलम्बिताम्।
विवेश स ततस्ताभिरुत्क्षिप्यान्तरनीयत।। -कथा/लम्बक १०/तरग ८/१०१-१०४,

१७ (क) Courtesans had a peculiar position in Ancient India Spending their earnings

-डा० ए० एस० अल्तेकर दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन/ पृष्ठ १८१

(ख) तेन खो पन समयेन राजगहे सालवती नाम कुमारी अभिरूपा होति दस्सनीया पासादिका परमाय वुट्ठापेसि, अथ को सालवती गणिका नचिरस्सेव पदक्खिणा अहोसि नच्चे च गीते च वादिते च, अभिसटा। - महावग्ग/८/३२८

१८ एव तया सेव्यमान कदाचिन्मन्त्रिण रह।
राजा सहचर सोऽत्र त बुद्धिवरमभ्यधात्।।

अर्थार्थिनी न कामेऽपि वेश्या रज्यति त विना।
तासा लोभो हि विधिना दत्तो निर्माय याचकान्।।-लम्बक ७/तरग ४/३८-३९

१९ तत्किमद्यापि वेश्यासु जानन्नप्यनुरज्यसे।
नह्यासा चास्ति सद्भावस्तथा चैता कथा शृणु।।-लम्बक १०/ तरग १/ ५३,

२० किमय निर्धन पुत्रि! सेव्यते पुरुषस्त्वया।
शव स्पृशन्ति सुजना गणिका न तु निर्धनम्।।

क्वानुराग क्व वेश्यात्वमिति से विस्मृत कथम्।
सन्ध्येव रागिणी वेश्या न चिर पुत्रि! दीप्यते।।

नटीव कृत्रिम प्रेम गणिकार्थाय दर्शयेत्।
तदेन विर्धन मुञ्च मा कृथा नाशमात्मन।। -लम्बक १०/तरग १/९०-९६

२१ तत्र प्रतिग्रहार्थी सन् प्रख्यातयशसो गृहम्।
अह मदनमालाया गणिकाया गतोऽभवम्।।

तस्या सकाशे दिव्यो हि कोऽप्युषित्वा चिर पुमान्।
गत क्वाप्यक्षयान् दत्त्वा पुरुषान् पञ्च काञ्चनान्।।

ततस्तग्प्रियोगार्त्ता जीवित विषवेदनाम्।
देह निष्फलमायास नाहार चौरयातनाम्।।

मन्यमाना गतधृति कथञ्चिदनुजीविभि।
आश्वास्यमाना व्यधित प्रतिधा सा मनस्विनी।।

यदि षण्मासमध्ये मा न स सम्भावयिष्यति।
तन्मयाग्नौ प्रवेष्टव्य दौर्भाग्योपहतात्मना ।।

इति बद्ध प्रतिज्ञा सा------ -लम्बक ७/तरग ४/ १०६-११४

२२ तत्र तेन सह बद्धसौहृदस्तस्थिवान् स नरसिहभूभृता।
अन्वितो मदनमालाय तया प्रेमुक्तनिजदेशया सुखम्।

इति देव भवत्युदारसत्तवो दृढरक्तश्च विलासिनीजनोऽपि।
अवरोधसमो महीपतीना किमुतान्य कुलज पुरन्ध्रिलोक ।।

-लम्बक ७/तरग ४/ १५९-६०

२३ नगर तत्र चासन्नबाह्योद्याने समावसत्।
स्नातभुक्तानुलिप्तश्च प्रविश्य नगरेऽत्र स ।।

युवा प्रेक्षणक द्रष्टुमेक देवकुल ययौ।
तत्रापश्यच्च नृत्यन्ती सुन्दरी नाम ळासिकीम्।।

तारुण्यवातोच्छलिता रुपाब्धेर्ळहरीमिव। -लम्बक १०/तरग १/७३-७५

२४ कथासरित्सागर तथा भारतीय सस्कृति डॉ० एस०एन० प्रसास/ पृष्ठ ११९

२५ अथ मार्गगित काचित्क्षीण कोष ददर्शसा।
राजपुत्र परिवृति पुरुसौद्र शस्त्रपाणिभि ।।

उपगम्य द्रुत तच नीलेकस्त जगाद् सा।
निर्धनेन म मैकेन कामुकेनावृत गन्हम।।

तत्वमरगच्छ तमाद्रयतथा च कसयेन स।
गृहा-मम निवर्तेत भदीया च सुता मज्।।

२६ गृहाणेश्वरवर्मस्त्वमेत मर्कटपोतकम्।।

पुनस्तत्सुन्दरीवेश्म प्राग्वद् गत्व दिने दिने।
एव गुप्तनिगीर्णास्तान्मृगयस्यामुतो व्यये ।।

दृष्ट्वा चिन्तामणिप्रख्य सैतमाल च सुन्दरी।
दत्त्वा ते प्रार्थ्य सर्वस्व कपिमेक ग्रहीष्यति। -लम्बक १०/ तरग १/ १४०-४२

२७ तदर्पयामि कुट्टन्या कस्याश्चिदमुमात्मजम्।
वेश्ययाजोपशिक्षार्थ येन ताभिर्न वञ्चयेत ।।

इत्यालोच्य स पुत्रेण सहैवेश्वरवर्णमा।
यमजिह्वाभिधानाया कुट्टन्या सदन ययौ।।

तत्र स्थूलहनु दीर्घदशना भुग्ननासिकाम्।
शिक्षायन्तीं दुहितर कुट्टनी ता ददर्श स ।।

'धनेने पूज्यते पुत्रि सर्वो वेश्या विशेषत ।
तच्च नास्त्यनुरागिण्या राग वेश्या त्यजेदत ।।

द्रोषाग्रदूतो रागो हि वेश्यापश्चिमसन्ध्ययो ।
मिथ्यैव दर्शयेग्श्या त नटीव सुशिक्षिता।।-लम्बक १०/ तरग १/५८-६२

२८ अथ विरलोन्नतदशना निम्नहनु स्थूलचिपिटनासाग्राम् ।
उल्वणचूचुकलक्षितशुष्ककुचस्थानशिथिलकृत्रितनुम् ।।

गम्भीरारक्तदृर्श निर्भूषणलम्बकर्णपाली च।
कतिपयपाण्डुरचिकुरा प्रकटशिरासन्ततायतग्रीवाम् ।। -कुट्टनीमतम्/२७-८

अस्थियन्त्रशिसतन्त्री विरोधिनाम् ।। -समयमातृका, चतुर्थ समय

२९ पुनस्त चाब्रवीन्मित्र नाकार्षीस्त्व वचो हि मे।
तदद्य वेश्यासद्भावो दृष्ट प्रत्यक्षतस्त्वया।।

अर्धचन्द्रस्त्वया प्राप्तो दत्त्वा तत्कोटिपञ्चकम्।
क प्राज्ञो वाञ्छति स्नेह वेश्यासु सिकतासु च।।-लम्बक १०/तरग १/१२७-२८

३० तेनापणात्स गोधूमचूर्ण क्रीत्वा दिनात्यये।
चकारापूपिका क्वापि मृदित्वा कर्परेऽम्भसा।।

गत्वा श्मशाने पक्त्वा ताश्चिताग्नावेत्य चाग्रत ।
महाकालस्य तद्दीपघृताभ्यक्ता अभक्षयत्।।-लम्बक १८/तरग २/ ७४-७५

३१ न्यधाच्च तस्यास्तत्रान्त प्रत्यह सा दिनात्यये।
पापा तादृगवस्थाया भक्तस्यार्धशरावकम् ।।-लम्बक ६/तरग ३ /८८

अपतत् स्वादधृतक्षीरशालिभक्तादिभोजनम्।
चिन्तित चिन्तित चान्यन्मम भोज्यमुपागत्।
तद्भुक्त्वा चाहमभव देवातीवेह निर्वृत ।। -लम्बक ७/ तरग ९/५५-५६,

अर्थवर्मा तु भुङ्क्ते स्म घृतार्धपलसयुतान्।
सक्तन् भक्तमपि स्तोक मासव्यञ्जनमल्पकम् ।।-लम्बक ९ /तरग ४/ १७१

कृसर ब्राह्मणकृते पर्वण्यद्य पचेरिति। -लम्बक १०/तरग ५/ ९९-१००

-लम्बक १०/ तरग ९/ ४९-५०

३२ तत्र दिव्यानि भक्ष्याणि मोदकादीन्यवाप्य स।
भुञ्जानो न्यवसद् भौतो दिनानि कतिचित् सुखम् ।।-लम्बक १०/ तरग ९/ १८६

३३ अय चापूपिकामुग्ध सक्षेपेण निशम्यताम्।
क्रीणाति स्माध्वग कश्चित्पणेनाष्टावपूपकान्।।

तेषां च यावत् षड्भुङ्क्ते तावन्मेने न तृप्तताम्।
सप्तमेनाथ भुक्तेन तृप्तिस्तस्योदपद्यत।।

ततश्चक्रन्द स जडो मुषितोऽस्मि न कि मया।
एष एवादितो भुक्तोऽपूपो येनास्मि तर्पित ।। -लम्बक १०/तरग ६/ २०४-२०६

३४ प्रिये राजाज्ञया दूर स्वव्यापाराय याम्यहम्।
तत्त्वया मम सक्त्वादि पाथेय दीयतामिति।। -लम्बक १० /तरग ६/ १०६

सदा तु धृतकर्ष च सक्तूश्चाश्नामि केवलान्।
अतोऽधिक मे मन्दाग्नेरुदरे नैव जीर्यते ।। -लम्बक ९/तरग ४/ १७४,

३५ घृतकर्षपयोमासभक्तमभ्यधिक च यत्।
भुक्त तत्सर्वमुदरादाचकर्षुश्च तस्य ते।। -लम्बक ९/तरग ८/१८२

३६ तत्क्षण च क्षुधाक्रान्त शाकवाटेऽवतीर्य स।
तत्र सुन्दरकश्चके वृत्तिमुत्खातमूलकै ।।

ततोऽत्र भुक्त्वा कतिचिन्मूलकान्यपराणि च।
नेतु प्रक्षिप्य गोवाटे तत्र तस्थौ स पूर्ववत्।।

ययौ भोजनमूल्यार्थी विपणीमात्तमूलक।
विक्रीणानस्य तस्यात्र मूलक राजसेवका ।।

मालवीया बिना मूल्य जह्रुर्दृष्ट्वा स्वदेशजम्।।

मालवात्कथमानीय कान्यकुब्जेऽत्र मूलकम्।
विक्रीणीषे सदेत्येष पृष्ठोऽस्माभिर्न जल्पसि।।

-लम्बक३/तरग ६/१४३,१६३,१६५,६६ और १६८,

३७ गच्छश्च तत्र कलकूजितराजहसमच्छ सुधासरसशीतलभूरिवारि।
आम्रावलीपनसदाडिमरम्यरोध साय सरो विकचवारिजमाससाद।।

तस्मिन्स्नात्वा हिमगिरिसुताकान्तमभ्यर्च्य भक्त्या।
कृत्सहार सुरभिमधुरास्वादहृद्यै फलैस्तै।

सख्या सार्ध मृदुकिसलयास्तीर्णशय्याप्रसुप्त स्तत्तीरे ता रजनिमनयत्सोऽत्र वत्सेशसूनु।

लम्बक ६/तरग ८/२२४-२५

३८ तत क्रमेण सर्वाणि वृथ्व्या तीर्थानि सोऽभ्रमत्।
विसोढानेककान्तारकष्टो मूलफळाशन ।। -लम्बक ९/तरग २/१४३

३९ विपणिस्थमुपागच्छत् कुर्वाण मासविक्रयम्।
ईदृश ते कथ ज्ञान मासविक्रयिण सत ।।

मास चान्यहतस्याह मृगादेर्वृत्तये परम्।
स्वधर्म चर येनाशु पर ज्योतिरवाप्स्यसि।। -लम्बक ९/तरग ६/१८३-९०,

४० एकदाहर्म्य पृष्ठअस्थो घृतगोमासधारक पश्यायम् पापकृत्कथम् ।।

-लम्बक ९ /तरग ३/१५८-५९

४१ देवपूजा पदेशेन मद्य मदान्वितम् परितोषादिवाहृतम्।।

-लम्बक २/तरग २/१५,८५,१५२,१५९

४२ हर्म्याग्रे निजकीर्त्त्येव ज्योत्स्नया धवले च स।
धाराविगलित सीधु पपौ मदमिव द्विषाम्।।

आजहरु स्वर्णकलशैस्तस्य वाराङ्गना रह।
स्मरराज्याभिषेकाम्भ इव रागोज्ज्वल मधु।।

आरक्तसुरसस्वच्छमन्त स्फुरिततन्मुखम् ।
उपनिन्ये ग्योर्मध्ये स स्वचित्तमिवासवम्।।

ईर्ष्यारुषामभावेऽपि भङ्गरभ्रुणि रागिणि।
न मुखे तत्तयो राज्ञ्योस्तद्दृष्टस्तृप्तिमाययौ।।

समधुस्फटिकानेकचषा तस्य पानभू।
बभौ बालातपारक्तसितपद्मेव पद्मिनी।। -लम्बक ४/तरग १/ ६-१०

४३ -लम्बक७/तरग ३/ ३३, लम्बक वही/तरग ५/२०७, लम्बक वही/तरग ६/४, ११६, लम्बक ८/तरग २/२२९-३०, लम्बक १०/तरग १०/१४१, १४९-५०।

४४ तावदेत्य द्वितीया मा स्वगृहादवदत्सखी।
उत्तिष्ठाहारभौ त्वा पिता मुग्धे प्रतीक्षते।। -लम्बक १०/तरग ३/१०२

४५ समधुस्फटिकानेक चषका तस्य पानम्।
बमो वाला तथा रक्तसित पद्मेव पद्ममिनी।। -लम्बक ४/तरग ३/१०

४६ उत्थाय चैकवस्त्रा ता दमयन्ती विमुच्य स।
छिन्न तदुत्तरीयार्ध प्रावृत्य च ततो ययौ।

अत्रान्तरे स राजा च नलस्तस्मिन् वने निशि।
प्रावृतार्धपटो दूर गत्वा दावाग्निमैक्षत।। -लम्बक ९/तरग ६/३१७,३४०

४७ गृहाण चाग्निशौचाख्यमिद वस्त्रयुग मम।
अनेन प्रावृतेनैव स्व रूप प्रतिपत्स्यसे।।

इत्युक्त्वा दत्ततग्स्त्रयुगे कार्कोटके गते।

नलस्तसमाग्नाद् गत्वा ------- लम्बक ९/तरग ६/३५१-५२

४८ तत प्रविश्य नगर वीरदेवबलौ च स।
क्षत्तृसेनापती पट्ट बद्ध्वा रत्नैरपूरयत्।। -लम्बक ९/तरग ४/ २३३

४९ जाने जहार पृष्ठान्मे स्वप्ने स्त्री कृष्णकम्बलम्।-लम्बक ६/तरग ३/ १६५

५० नागीव विस्फुरद्रत्नमूर्धा धवलकञ्चुका।
अब्धिवीचीव लावण्यपूर्णा मुक्तावलीचिता।। -लम्बक १३/ तरग १/१६५,

५१ गृहीत्वा तत्र तस्यान्तर्वस्त्राण्याभरणानि च।
चैलखण्ड तमेक च दत्वान्तर्वासस कृते।। - लम्बक १/तरग ४/१५२

आपणे रत्नमेक च गत्वा विक्रीत वास्तत।
अध वस्त्रागटागादि क्रीतवान् भोजने तथा।। -लम्बक २/तरग १२/१५०-१५१

तथा च राजलोक तौ रञ्जयामासतुर्यथा।
मदेकप्रवणावेताविति सर्वोऽप्यमन्यत।

तौ चाप्यपूजयद्राजा सचिवौ स्वकरार्पितै।
वस्त्राङ्गरागाभरणैर्ग्रामैश्च सवसन्तकौ।। -लम्बक २/तरग ६/५९-६०

मुखैर्धौर्य ताञ्जनाताम्रनेत्रैर्जह्नजलाप्लुतै।
अङ्गै सक्ताम्बरव्यक्तविभागैश्च तमङ्ना।।

विदलत्पत्रतिलका स चक्रे वनमध्यगा।
च्युताभरणपुष्पास्ता लता वायुरिव प्रिया।।

अथैका तस्य महिषी राज्ञ स्तनभरालसा।
शिरीषसुकुमाराङ्गी क्रीडन्ती क्लममभ्यगात्।।

-लम्बक १/तरग ६/१११-११३

५२ इत्यन्योन्य प्रतिज्ञाते सा शेते स्म पराङ्गमुखी।
स्वाङ्गुलीयमह चास्या सुप्ताया अगुलौन्यघात् ।। लम्बक १८/तरग ५/ १२४,

५३ कष्ट्वा च स्वकरान्माता तस्य स्नेहान्मृगावती।
सहस्रानीकानामङ्क चकार कटक करे।।

विक्रीणानश्च तत्तत्र राजनामाङ्कमापणे।
वष्टभ्य राजपुरुषैर्निन्ये राजकुल च स ।।

कुतस्त्वयेद कटक सम्प्राप्तमिति तत्र स।
राज्ञा सहस्रानीकेन स्वय शोकादपृच्छत।। -लम्बक २/तरग १/७३ व ८४-८५

५४ अङ्गुलीय विषघ्न च सास्मै दैत्यसुता ददौ।
तत सोऽत्र स्थितस्तस्या साभिलाषोऽभवद्युवा।।

खड्गाङ्गुलीयके पश्यन्पातालादुत्थितोऽथ स।
विषण्णो विस्मितश्चासीद् वञ्जितोऽसुरकन्यया।। -लम्बक २ /तरग २/ ५० एव ५३,

५५ सोऽपि तस्यास्तदङ्गुल्या निचिक्षेपाङ्गुलीयकम्।
ततो जजाप विद्यां च तेचन प्रत्युज्जिजीव सा।

तेना सौ सखिभि सार्धमगृहीताङ्गुलीयक।
प्रत्याजगाम श्रीदत्तो भवन बाहुशालिन।। -लम्बक २/तरग २/९७-९९

५६ तत्र तत्प्रत्यभिप्राय वस्त्र हारमवाप्य च।
स चौर इत्यवष्टभ्य निन्ये नगररक्षिभि।। -वही/वही/ १६९,

५७ -वही/वही/८२-८३ तथा ९०

५८ ग्राम्य कश्चित्खनन्भूमि प्रापालङ्करण महत्।
यद्गृहीत्वा स तत्रैव भार्या तेन व्यभूषयत्।।
बबन्ध मेखला मूर्ध्नि हार च जघनस्थले।
नूपुरौ करयोस्तस्या कर्मयोरपि कङ्कणौ।। -लम्बक १०/ तरग ५/२४-२६

५९ एव तयोक्ते गगनात्सोऽत्र विद्याधराधिप।
अवातरद्दिव्यरूपो हारकेयूरराजित।। -लम्बक ६/तरग ७/२११

६० वसन्तकसुत क्रीडासखीत्वे तु तपन्तकम् ।
गोमुख च प्रतीहारधुरायामित्यकात्मजम् ।। -लम्बक ६/तरग ८/११५

६१ वत्सेशेन सम पित्रा वयस्यैश्चाटवी ययौ।
नरवाहनदत्तोऽश्वैर्गजैश्च परिवारित।।

तत्र भिन्नेभकुम्भाना नखोदरपरिच्युतै।
सिहाना हतसुप्तानामुप्तजेव मौक्तिकै।।

व्याघ्राणा भल्लळूनाना दष्ट्रभि साङ्करेव च।
सपल्ळवेव क्षतजैर्हरिणाना परिस्नुतै ।।

निमग्नकङ्कपत्राङ्कै क्रोडै स्तबकितेव च।
शरीरै शरभाणा च पतितै फलितेव च।।

बभूव तस्य निपतद्घनशब्दशिलीमुखा।
प्रीतये मृगयालीलालता शोभितकानना।। -लम्बक ७/तरग ८/ १-७

६२ शनै श्रान्त स विश्रम्य प्रविवेश वनान्तरम्।
तत्रारेभे च गुलिकाक्रीडा कामपि तत्क्षणम्।। -लम्बक ७/तरग ८/१-९

६३ अन्तरा च मिलद्व्याध पळाशश्यामकञ्चुक।
स सबाणासोन भेजे स्वोपम मृगकाननम्।।

जघान पङ्ककलुषान्वराहनिवहान्शरै।
तिमिरौघानविलै करैरिव मरीचिमान्।।

वित्रस्तप्रसृतास्तस्मिन्कृष्णसारा प्रधाविते।
बभु पूर्वाभिभूताना कटाक्षा ककुभामिव ।।

रेजे रक्तारुपणा चास्य मही महषिधातिन।
सेवागतेव तच्छृङ्गपातमुक्ता वनाब्जिनी।।

व्यात्तवक्त्रपतत्प्रासप्रोतेष्वपि मृगारिषु।
सान्तर्गर्जितनिष्क्रान्तजीवितेषु तुतोष स।।

श्वान श्वभ्रे वने तस्मिस्तस्य वर्त्मसु वागुरा।
सा स्वायुधैकसिद्धेऽभूत्प्रक्रिया मृगयारसे।। -लम्बक ८/तरग १/११-१६

६४ -लम्बक ९/तरग ६/९०-९२

६५ अस्यामेवोज्जयिन्या स द्यूतकारोऽभवत्पुरि।
पूर्व ठिण्ठाकरालाख्यो विषमोऽन्वर्थनामक।।

तस्य हारयतो नित्य द्यूते ये जयिनोऽपरे।
ते प्रत्यह द्यूतकारा कपर्दकशत ददु।। -लम्बक १८/तरग २/ ७२-७३

६६ दीव्यन्तमक्षैर्मा तत्र दृष्ट्वाभिज्ञाननिश्चितम्।
ठिण्ठास्थानेत्य सर्वाश्च द्यूतेन जयति स्म स।। -वही/ तरग ५/ २१०,

६७ स च द्यूतविपत्क्लिष्ट कुमारत्वे भृश यत।
अतस्तेन कृत स्फीत कितवाना महामठ।।

लभन्ते कितवास्तत्र वसन्तोऽभीष्टभोजनम्।
तग्त्स तत्र गच्छ त्व भद्र तव भविष्यति।। -लम्बक १२ /तरग ६/१८९-९०

६८ शनैश्च स तनूभूतशोकोऽकृतपरिग्रह।
द्यूतक्रीडाप्रसक्तोऽभूद्दैवात्प्राज्ञोऽप्यबान्धव ।।

अचिरेण च कालेन तस्य क्षीणार्थसम्पद।
तेन दुर्व्यसनेनासीद्भोजनेऽपि कदर्थना।।

एकदा द्यूतशालाया निराहारस्थित त्र्यहम्।
अशक्नुवन्त निर्गन्तु लज्जयानुचिताम्चबरम्।। -लम्बक १२/तरग वही, ७२-७४

६९ असिञ्चत्तत्र दयिता सहेल करवारिभि।
असिच्यत स ताभिश्च वशाभिरिव वारण।।

मुखैर्धौ ताञ्जनाताम्रनेत्रैर्जह्नजलाप्लुतै ।
अङ्गै सक्ताम्बरव्यक्तविभागैश्च तमङ्गना।। -लम्बक १/तरग ६/११०-११

७० जलक्रीडाप्रवृत्तने नलेनाध्यासित सर।
नल स राजा दृष्ट्वा त राजहस मनोरमम्।।

बबन्ध स्वोत्तरीयेण -----लम्बक ९/तरग ६/२४८-४९

७१ वत्सराजाय गान्धर्वशिक्षाहेतो समर्थयत्।
उवाच चैन गान्धर्व त्वमेता शिक्षय प्रभो।। -लम्बक २/तरग ४/२६-२७

७२ स्वय स वादयन् वीणा देव्या वासवदत्तया।
पद्मावत्या च सहित सङ्गीतकमसेवत।।

देवीकाकलिगीतस्य तद्वीणाननदस्य च।
अभेदे वादनाङ्गष्ठकम्पोऽभूद् भेदसूचक।। -लम्बक ४/तरग १/४-५

७३ स्वराञ्श्रुतिषु युञ्जन्त्यास्तस्या ब्राह्मया इव श्रिय।
नरवाहनदत्तोऽभूद्गीते रूपे च निस्मित।।

ततोऽत्र वीक्ष्यते यावद्बालस्तावदवापि स।
तेन सर्वेऽपि ते जग्मुर्गन्धर्वा अपि विस्मयम्।। -लम्बक १४/तरग २/२४-२६

७४ द्वितीयोऽशोकदत्तख्यो बाहुयुद्धमशिक्षत् । आदि–आदि/लम्बक ५/ तरग २/११८-२६

७५ तत्र वासवदत्ता च प्रविष्टा चित्रभित्तिषु।
पश्यन्ती रामचरिते सीता सेहे निजव्यथाम्।। -लम्बक ३/ तरग २/ २७

७६ दिव्यचित्रकलाभिज्ञो लिखन्विद्याधराङ्गना।
कुर्वश्च नर्मवक्रोक्ती कोपयामास ता प्रिया ।। -लम्बक ८/तरग १/ ५२,

७७ तच्छ्रुत्वा तत्रतेऽभूवनवाणिजोऽन्ये साविस्मया।
धीर्ण चित्रीयते कस्माद्भित्तौ चित्रकर्माण।। -लम्बक १/तरग ६/५०

७८ चित्रस्थ इव पृष्टोऽपि नैव किञ्चिदभाषत।। -लम्बक १/तरग ६/१२०

७९ चित्रभित्तेर्विनिर्गत्य गदाचक्रधर पुमान्।
दष्टाधरौष्ठी दशनै क्षतस्तनतटा नखै।।

कृत्वोपभुज्य रात्रौ मा तद् भित्तावेव लीयते।
एतत्किमिति व पृच्छाम्युत्तर मेऽत्रदीयताम्।। -लम्बक १०/तरग १०/६६-६७

८० सोऽतच देवजयो गत्वा तत्सर्व मकरन्दिकाम्।
तथैवाबोधयत्तेन जज्ञे सा विरहातुरा ।।
नोद्याने सा रति लेभे न गीते न सखीजने।
शुकानामपि शुश्राव न विनोदवतीर्गिर।। -लम्बक १०/तरग ३/ १४९-५०,

८१ तद्यदीच्छति सुश्रोणि सोमस्वामी प्रिय स ते।
तदेत मर्कटशिशु सम्प्रत्येव करोम्यमहम्।।

तत क्रीडानिभादेत गृहीत्वा मधुरा व्रज।
मन्त्रयुक्तिग्य चैतद् भवती शिक्षायाम्यहम्।। -लम्बक ७/ तरग ३/ १११-१८

८२ तत सोमप्रभा प्रातस्तद्विनोदोपपादिनीम् ।
न्यस्तदारुमयानेकमायासद्यन्त्रपुत्रिकाम्।।

करण्डिका समादाय सा नभस्तलचारिणी।
तस्या कलिङ्गसेनाया निकट पुनराययौ।। -लम्बक ६/तरग ३/१-२

८३ सा जातु गुलिकाक्रीडा कुर्वन् गुलिकया छलात्।
तापसीं राजतनयो भार्गायातामताडयत्।। -लम्बक १०/ तरग ९/२१६

८४ इन्द्रोत्सव कदाचिच्च प्रेक्षितु निर्गता वयम्।
कन्यामेकामपश्याम कामस्यास्त्रमसायकम्।। -लम्बक १/तरग ४/३

८५ तस्यान्मधूत्सवाक्षिप्तपौरलोके गृह मम।
आगन्तव्य ध्रुव रात्रे प्रथमे प्रहरे त्वया।। -लम्बक १/तरग ४/३५,

तत कदाचिद्ध्यास्त वसन्त समयोत्सवे।
देवीकृत तदुधान स राजा रातवाहन।। -लम्बक १/तरग ४/१०८,

कदाचित्सोऽथ सम्प्राप्ते मधुमासमहोत्सवे।
यात्रामुपवने द्रष्ट जगाम सखिभि सह।। -लम्बक २/तरग २/८७,

पुराह पितृवेश्मस्था कन्या मधुमहोत्सवे।
एवमुक्त्वा वयस्याभि समेत्योद्यानवर्त्तिनी।।

अस्तीह प्रमदोद्याने तरुमण्डलमध्यग।
दृष्टप्रभावो वरदो देवदेवो विनायक।। -लम्बक ३/तरग ६/५४-५५,

८६ एकदा चाजगामात्र विकसत्केसरावलि।
दलयन्मानिनीमानमातडग मधुकेसरी।।

लग्नालिमालामौर्वीका पुष्पेषो कुसुमाकर।
सज्जीचकार चोत्फुल्लचूतवल्लीधनुर्लता।। -इत्यादि- लम्बक ९/तरग ५/१०७-११७,

८७ अम्भोविहारविचलद्वस्त्रव्यक्ताङ्गभङ्गिषु ।
रेमे कनकवर्षस्य तासु तस्य तदा मन।। -लम्बक वही/ वही/ ११८-२१,

८८ नभोविहारसस्कारमदाच्चिक्रीड दोलया। -लम्बक १०/ तरग १०/१३८,

पंचम अध्याय

कथासरित्सागर मे प्रतिबिम्बित आर्थिक स्थिति

- कृषि एव पशुपालन
- व्यवसाय एव उद्योग धन्धे
- वाणिज्य एव व्यापार
- कर एव राजस्व प्रणाली

कथासरित्सागर में प्रतिबिम्बित आर्थिक स्थिति

कथासरित्सागर मे तत्कालीन सामाजिक स्थिति का प्रतिविम्बन विवेचित करते समय खान-पान, परिधान, वस्त्राभूषण, मनोरंजन आदि का एक स्वस्थ स्वरूप उपस्थित किया गया है। विवेचन से स्पष्ट है कि समाज सुसस्कृत, आचार परिष्कृत तथा समृद्ध रहा। जन जीवन सुसंगठित, सुसंगमित और सुखमय था। खान-पान मे गोधूम, चावल, शाक, दूध फल आदि का जन समाज प्राय प्रयोग करता था। जिसका संकेत है कि कृषि और व्यवसाय समुन्नत रहे होगे। गोपालन भी अवश्य होता रहा। आलोच्य ग्रन्थ कथाकाव्य और केवल कथानुकथा का संग्रह है, अत उसमे समाज के सभी पक्षो का सावयव चित्रण कथमपि नही है। यत्र-तत्र आख्यान क्रम मे, घटना एवं घटनान्तर्गत चरित्रो के अनुशीलन-क्रम मे कृषि क्षेत्र अथवा शाकोपवन के आभास अवश्य मिलते है। लेकिन कृषि के उपकरण अथवा उसके ढंग आदि पर किञ्चिदपि प्रकाश नही पडता है इसी परिप्रेक्ष्य मे एतद्विषयक विवेचन द्रष्टव्य है-

कृषि

आख्यानो, कथा-प्रकृति एव विधेय प्रतिपादनार्थ कृषि क्षेत्र एव फसल का अकन ही हमारे लिए उस समय के कृषि कार्य के अस्तित्व का सकेत करते है- 'कोई धोबी अपने क्षीणकाय गधे को पुष्ट करने के लिए बाघ के चर्म से उसे ढककर दूसरो के खेत मे चरने के लिए छोड देता है। वह निर्द्वन्द रूप से खेतो मे फसल यथेच्छ रूप से खाता था। रखवाले उसे बाघ समझकर रोक नही पाते थे।[१] तिवलकार्षिक की कथा से ज्ञात होता है कि - एक मूर्ख किसान था, जिसने तिल बोया था एक बार उने तिलो को भून कर खाया, जो उसे अतिशय स्वादिष्ट लगा। उसने भूने हुए तिलो को ही स्वादिष्ट एव मधुर तेल प्राप्त करने की इच्छा से खेत मे बो दिया। भूने तिल खेत मे उगे ही नही। परिणामत वह उपहास का पात्र बन गया।[२] कथासरित्सागर के अनुशीलन से सकेत मिलता है कि जलाशय के निकट शाक की वाटिकाएँ लगायी जाती थी। जहाँ मूली-कटहल आदि उगाये जाते थे। इसके अतिरिक्त अन्य फलदार वृक्ष भी रहते थे। कालरात्रि के आख्यान मे सुन्दरक ने शाक-वाडे से मूली उखाडी और उसे ही खाकर अपनी क्षुधा शान्त की था।[३] एक अन्य सदर्भ उल्लेखनीय है- मार्ग मे जाते हुए उसने एक सुन्दर-सरोवर देखा, उसमे सुंदर, मधुर शब्द करते हुए हस विचरण कर रहे थे सम्पूर्ण सरोवर ही मुखरित हो रहा था। जल अमृत-सम मधुर तृप्तिदायक था। उसके तट पर आम, अनार एव कटहल के सुन्दर वृक्ष लहलहा रहे थे। सुन्दर मधुर फलो का उसने आहार किया।[४] खान-पान के स्तर से

प्रतीत होता है कि कथासरित्सागर कालीन समाज मे कृषि एक महत्वपूर्ण व्यवसाय के रूप मे अवश्यमेव प्रतिष्ठित रहा होगा।

पशुपालन

दूध, घी और दूध मिश्रित मिष्ठान भोजन इस तथ्य की ओर संकेत करते है कि कथासरित्सागर कालीन समाज मे गाय आदि पशुओ का पालन अवश्य होता था। आलोच्य ग्रन्थ के आख्यानो मे- ग्वाला, गड़ेरिया आदि का अंकन प्राप्त होता है- ग्वालो ने कहा- महाराज हम लोग गौएँ चराते है और निर्जन वन मे खेते है। हमारे बीच देवसेन नामक एक ग्वाला है। वह जंगल मं एक स्थान पर चट्टान पर बैठकर कहता है- मै तुम्हारा राजा हूँ और हमारा शासन चलता है। हम लोगो मे से कोई उसकी आज्ञा का उल्लंघन नही कर सकता।[५] ग्वाले ने कहा - ऐसा करो, यह मेरा काला कम्बल ले लो, लाढी भी ले लो, तब तक यहॉ बैठो जब तक दासी न आ जाय।[६] कथासरित्सागर के इस अंकन से ग्वाले की वेषभूषा का भी परिज्ञान होता है। इसी प्रकार एक मूर्ख ग्वाले का सन्दर्भ अत्यन्त रोचक है। एक गंवार ग्वाला था, उसके पास एक गाय था। वह प्रतिदिन पॉच सेर दूध देती था। उसके घर मे एक उत्सव होने वाला था, अत· उसने गाय दुहना रोक दिया कि उत्सव के ही अवसर पर सारा दूध इकट्ठा दुह लूंगा। उत्सव के दिन जब गाय दूहने गया तो सारा दूध सूख चुका था।[७] एक मूर्ख गडेरिये का आख्यान अत्यन्त

रोचक है- एक धनी गडेरिया था। कुछ ठगो ने उसे विवाह करने का लोभ देकर उससे धन लिया। कुछ दिन बाद उसने पुत्र के लिए उत्सुकता प्रकट किया तथा रोने लगा, पशुपालन करने से जिसमे पशुता आ गयी था, ऐसा वह गडेरिया, धूर्तो द्वारा ठगा गया।[८] कथासरित्सागर मे गडेरिया के लिए 'पशुपाल' शब्द प्रयोग हुआ है।

व्यवसाय एवं उद्योग धन्धे

कथासरित्सागर मे व्यवसाय अथवा उद्योग धन्धो का नामत अंकन न के समान है। आख्यानो के क्रम मे यत्र-तत्र पात्र विशेष के चारित्रिक वर्णन मे उनके गुण विशेष का उल्लेख हो गया है, अथवा घटना क्रम मे वस्तु विशेष के संदर्भ का अंकन होने से, यह निष्कर्ष निकलता है कि तत्कालीन समाज मे वस्तु विशेष का निर्माण अवश्य होता था। षष्ठ लम्बक मे कलिंग सेना-वृतान्त मे 'डोलची' और लकडी की पुत्तलिकाओ का वर्णन प्राप्त होता है। इससे स्पष्टत संकेतित होता है कि उस काल मे काष्ठ डोलची बनती थी और पुत्तलिकाएँ भी निर्मित होती था। निश्चयत: इनके निर्माता भी रहे होगे। अर्थात् यह एक उद्योग के रूप मे गतिशील अवश्य रहा होगा। इसी प्रकार मूर्तियो का, चित्रो का, हार, केयूर, आदि के अकनो से आभासित होता था कि मूर्तिकार, चित्रकार एवं जौहरी थे और वह अपना व्यवसाय करते थे- अपनी सास से एकान्त मे बात करके देवस्मिता ने अपनी सहेलियो के साथ व्यापारी बनिए का सा वेष बनाया। व्यापार करने

के बहाने जहाज पर बैठकर कटाहद्वीप पहुॅची, वहॉ उसका पति ढहरा था। कटाह द्वीप के जौहरी बाजार मे व्यापारियो के मध्य बैठे हुए मूर्तिमान धैर्य के समान अपने पति को देखा।[९] स्पष्ट है कि उस समय आभूषण निर्माण व्यवसाय रहा और इस व्यवसाय वाले जौहरी कहे जाते थे, इनके निवास का नाम जौहरी बाजार रहा। कथासरित्सागर मे चित्रकार के भी संदर्भ प्राप्त होते है। रोलदेव नामक चित्रकार ने राजभवन के द्वार पर चित्रपट मे एक चित्र बनाकर लटका दिया है। राजा ने आदर सहित उसे लाने का आदेश दिया, द्वारपाल चित्रकार को लेकर उपस्थित हुआ। उस चित्रकार ने चित्रभवन मे प्रवेश करके चित्रो को देखने के विनोद मे राजा कनक वर्ण को एकान्त मे देखा। तद्नन्तर सुन्दरी स्त्री के कुचो के बीच शरीर का भार दिये हुए, आसन पर बैठे हुए, हाथ मे पान का बीडा उठाये हुए, राजा से उस चित्रकार ने नम्रतापूर्वक निवेदन किया- आप आज्ञा दे कि चित्र मे किसका रूप अंकित करुॅ, जिससे चित्रकला सीखने का मेरा प्रयास सफर हो। चित्रकार द्वारा ऐसा निवेदन किये जाने पर राजदरबारियो ने कहा- 'तुम राजा का ही चित्र बनाओ' अन्य किसी विरुप का चित्र बनाने से क्या लाभ? चित्रकार ने राजा का चित्र बनाया, फिर दरबारियो ने राजा के अनुरूप किसी रानी का भी चित्र राजा के साथ बना दो। चित्रकार ने कहा- इस योग्य कोई सुन्दर है ही नही।[१०] इसी प्रकार एक मूर्तिकार का भी उल्लेख है- प्रतिदिन पीठ से रगड़ने के कारण वह खम्भा अत्यन्त चिक्कण और सुन्दर हो गया था। एक बार एक चित्रकार और एक मूर्तिकार उधर से निकले। चित्रकार ने सुन्दर और चिक्कण खभा

देखकर उस पर गौरी का चित्र निर्मित कर दिया। मूर्तिकार ने भी क्रीडावश छेनी और हथोडी से उसे खोदकर मूर्ति का एक सुन्दर रूप प्रदान कर दिया।[११]

आख्यान क्रम मे मिस्त्री, बढई, तन्तुवाय भी संदर्भित है, इससे यह ध्वनित होता है कि मिस्त्री, बढई और तन्तुवाय भी अपने-अपने व्यवसाय मे निरत रहे- एक बनिया ने मन्दिर बनवाने के लिए बहुत सी लकडियाँ एकत्र कर रखी थी। वहाँ काम करने वाले मिस्त्रियो ने एक लकडी को आरे से ऊपर की ओर से आधा चीरकर उसके बीच मे एक खूंटा लगाकर उसे छोड दिया, और सांयकाल काम बन्द कर घरो को चले गये।[१२] इस आख्यान से स्पष्ट होता है कि उस समय लकडी-काटने और चीरने का काम करने वाला एक वर्ग था जो मिस्त्री संज्ञा से अभिहित होता था। बुनकर एवं जुलाहे का सदर्भ भी कथासरित्सागर मे उल्लिखित है। इससे यह सूचना प्राप्त होती है कि कपडा बुनना भी एक व्यवसाय के रूप मे उस समय प्रतिष्ठित था।- "मै पञ्चपट्टिक नाम का जुलाहा हूँ और कपडा बुनने का विज्ञान जानता हूँ, और प्रतिदिन पांच जोडे कपडे बुनता हूँ। एक जोडा ब्राह्मण को देता हूँ दूसरा जोडा ईश्वर को अर्पित करता हूँ, तीसरा स्वयं पहिनता हूँ। चौथा जोडा यदि मेरी पत्नी हो तो उसे दूँ तथा पाँचवा जोडा स्वयं बेचकर जीवन निर्वाह करता हूँ।[१३] कथासरित्सागर मे संग्रहीत आख्यानो मे जौहरी, मिस्त्री, चित्रकार, मूर्तिकार और तन्तुवाय सदर्भित है जिससे यह निश्चयत संकेत है कि उस समय चित्रकारी, मूर्ति-निर्मिति, काष्ठ-कला, बुनकरी आदि व्यवसाय एवं उद्योग अस्तित्व मे थे।

वाणिज्य एवं व्यापार

कथासरित्सागर गुणाढ् य की पैशाची भाषा निबद्ध 'बड्ढकहा' (वृहत्कथा) का सार सग्रह है (कथा०/लम्बक०१/तरग१/३) अर्थ यह कि सोमदेव भट्ट रचनाकार नही है। उन्होने मात्र पूर्व की कृति का सक्षिप्त रूप उपस्थित किया है। कथासरित्सागर संक्षेपण है वृहत्कथा का। कदाचित यह वृहत्कथा भी मौलिक रचना नही है यह भी आख्यानो का एक वृहत्संग्रह है। वह समय गुप्तकालीन वृहत्तर भारत के परिवेश का युग था। भारतीय इतिहास का स्वर्णिम युग था। निरन्तर सार्थवाहो का दल समुद्रीमार्ग से द्वीप-दीपान्तरो की यात्राएँ करता रहता था। सार्थवाहो से भरी नौकाओ को ले जाने वाले शत-सहस्त्र कर्मचारी साथ चलते थे। मार्ग की श्रान्ति की शान्ति के लिए अथवा मन बहलाव के लिए परस्पर कथा-आख्यान सुनते सुनाते थे। इस क्रम मे मार्ग लघु हो जाता। आख्यान सुनाने वाले लोक कवि और भाषा ठेठ होती था। इन्ही श्रमजीवियो के बीच सुनी-सुनायी जाने वाली कथाओ को गुणाद्य ने सकलित कर लिया। कथाए गुणाढ्य की कल्पना प्रसूत नही अपितु तत्कालीन सार्थवाह, व्यापारियो द्वारा सुनी-सुनायी जाने वाली तत्देशीय लोकाख्यान- लोक कथाएँ थी। हमारा विश्वास है कि वृहत्कथा एव उसके सारसग्रह रूप कथासरित्सागर का उपजीव्य समुद्र यात्रा करने वाले व्यापारियो-सार्थवाहो द्वारा कही गयी कथाएँ है। अत· हम यह कहेगे कि ये व्यापारी एव सार्थवाह ही उसका जीवन है। ग्रन्थ के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि इस आख्यान-संग्रह की सर्वाधिक कथाएँ नारी-चरित्र से सम्बधित मिलती है

और दूसरे पर वैश्य, वणिक् , व्यापारियो से सम्बध रखने वाली कहानियॉ है। इससे प्रतीत होता है कि उस काल मे वाण्ज्यि-व्यापार समुन्नत था। भारतीय व्यापारी द्वीप-द्वीपान्तरो तक समुद्र मात्राएँ करते थे।

भारतीय वणिक् द्वीपान्तर यात्रा करना और व्यापार द्वारा धनार्जन करना अपना गौरव मानता था। द्वीपो मे सर्वाधिक महत्वशाली द्वीप था 'नारिकेल द्वीप'। यह समुद्र की यात्राएँ करने वालो के लिए विश्राम भूमि, पडाव के समान था- चार दिव्य पुरुषो की कथा मे अंकन है- उन चारो ने पूँछने के पश्चात् अपना परिचय देते हुए बताया- महासागर के मध्य अति सम्पन्न एवं विशाल समुद्र द्वीप है जो जगत मे 'नारिकेल द्वीप' नाम से प्रख्यात है। उसमे चार पर्वत मेनाक, वृषाभ, चक्र और बलाहक है, जो दिव्य भूमि सदृश है। उन चारो पर्वतो पर हम चारो जन निवसते है।[१४] अन्य द्वीप जहॉ की वणिक् जन यात्रा करते है वह है - व्यापारियो द्वारा सुनने के पश्चात् चन्द्रस्वामी जलयान द्वारा कटाह द्वीप गया। वहॉ उसे ज्ञात हुआ कि कनकवर्मा वहॉ से कर्पूर द्वीप चला गया। उसी क्रम मे कर्पूर, सुवर्ण तथा सिहल द्वीप मे वैश्यो के साथ जाने पर भी वह कनकवर्मा को प्राप्त न कर सका।[१५] नारिकेल द्वीप का अंकन सर्वाधिक प्राप्त होता है।[१६] वणिक् जनो को इन यात्राओ मे अनेक विपत्तियो का सामना करना पडता था, लेकिन वह साहस एकत्रकर अपने उद्देश्य की ओर ही उन्मुख रहते थे। समुद्र शूर वैश्य की कथा मे भीषण, समुद्री, तूफान और लूटेरो के आक्रमण का अकन प्राप्त होता है- समुद्रशूर वाणिज्यार्थ सुवर्ण

द्वीप को प्रस्थान करते हुए माल-सामान लेकर समुद्रतट पर पहुॅचकर नाव पर चढा कुछ ही मार्ग शेष रहने पर आकाश मे भयानक मेघ छा गए एवं सागर को क्षुब्ध कर देने वाला भीषण तूफान आ गया। समुद्र की लहरो मे पड गया। साहसकर कूद पडा। तैरते हुए उसे एक शव हाथ लग गया। वह उस पर बैठकर, वायु अनुकूल से सुवर्णद्वीप के तट पर पहुॅच गया।[१७] वह समुद्र शूर पुन वणिक् समूह मे सम्मिलित होकर स्वदेश के लिए प्रस्थित हुआ। मार्ग मे लुटेरो ने वणिक् दल पर आक्रमण कर दिया। व्यापारियो का माल लुटेरे लूट ले गये, व्यापारी मारे गये, वह बच गया, पूरी रात एक वृक्ष पर व्यतीत किया। प्रातःकाल समुद्रशूर को पत्तो के झुरमुट मे एक तेज प्रकाश दिखायी पडा। उसने वहॉ जाकर देखा- एक गीध के कोटर मे बहुत सा धन पड़ा था। उसने घोसले से वह समस्त धन हस्तगत कर लिया। इस प्रकार अनन्त धन की प्राप्ति होने के पश्चात् वैश्य उस वट वृक्ष से नीचे उतरा और आनन्दित मानस चलकर निज नगर हर्षपुर पहुंच गया। अधिक धन की लालसा त्याग वह अपने परिवार के संग सुखपूर्वक निवसने लगा। यह दैवयोग ही है- समुद्र मे उसका डूबना, उसका सारा घन समुद्र मे नष्ट होना, कण्ठहार की प्राप्ति, शव पर बैठ समुद्र पार करना, प्रसन्न द्वीप के राजा से धन प्राप्ति, उसका लूटा जाना और पुन· वट वृक्ष से प्रचुर धन की प्राप्ति।[१८]

अर्थलोभ की कथा से ज्ञात होता है कि कथासरित्सागरकालीन वणिक् जनो का व्यापारिक सम्पर्क न केवल राष्ट्र मे अपितु अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर भी समुन्नत था। चीनी

व्यापारी द्वारा सहस्राधिक अश्वो और विविध भॉति के चीन मे निर्मित वस्त्र विक्रयार्थ लेकर भारत मे आया था - बाहुबल नामक राजा का एक दरबारी था, अर्थलोभी वह अपनी सुन्दर स्त्री मानपरा के माध्यम से वाणिज्य व्यापार का कार्य करता थआ। वह इतना लोभी था कि धन लोभ मे अपनी स्त्री तक को दाव पर भेज देता। वह सुन्दरी हाथी घोडे, रत्न, वस्त्र आदि के विक्रय से प्रचुर धन कमाती थी। एक बार दूरस्थ देश निवासी एक व्यापारी घोड़े आदि सामान के विक्रय निमित्त कांची आ पहुॅचा। उसका नाम था सुखधन। अर्थ लोभ वणिक् ने अपनी पत्नी मानपरा से कहा- सुखधन नामक बनिया दूर देश से यहॉ आया हुआ है, प्रिये। उसके पास बीस हजार चीनी घोडे एवं भांति-भांति के प्रभूत मात्रा मे चीनी वस्त्र है। तुम जाकर उसके पास से पांच हजार घोडे, दस हजार जोडे वस्त्र खरीद लो। उससे हम अपना व्यापार प्रारम्भ करेगे। सुखधन, उस अर्थलोभ से भी कुछ आगे रहा। उसने मानपरा से कहा - यदि तुम एक रात मेरे साथ व्यतीत करो तो मै तमाम घोडे और वस्त्र के जोड़े तुमको बिना मूल्य लिए दे दूॅगा। अर्थलोभ ने पत्नी को तदर्थ धन-लोभ मे अनुमत कर दिया। [१९] आधुनिक युग मे बडे-बडे और प्रतिष्ठित व्यापारिक प्रतिष्ठानो मे बिक्री वृद्धि की दृष्टि से ग्राहको को आकृष्ट करने के लिए विविध मनोरंजनोपकरण रखते है, यह आधुनिक काल की ही नही अपितु सदियो पुरातन परम्परा है, जिसका जीवन्त प्रमाण यह कथा है- जब मानपरा का पति कहता है - 'प्रिये यदि एक दिन मे (रात मे) पाच हजार वस्त्र तथा पाच सौ चीनी घोडे प्राप्त

होते है तो क्या दोष? तुम उसके पास जाओ और प्रात· शीघ्रातिशीघ्र चली आना।[२०]

'कथासरित्सागर' मे वणिक् , बनिया, वैश्य, व्यापारी शब्द समानार्थक है और वह समानार्थ है व्यापारी, अर्थात् वस्तुओ का क्रय विक्रय करने वाला व्यक्ति। बनिया वस्तुत जन्मजात व्यापार-दृष्टि से युक्त होता है। एक वणिक् पुत्र अपनी बुद्धि के बल से मृत मूषक-विक्रय से एक सम्पत्तिशाली सेठ बन गया। चूहे से धनी बने सेठ की कथा अत्यन्त ही रोचक है- सामान्य लिपि ज्ञान और गणित की शिक्षा दिलाने के पश्चात् माता ने अपने एकमात्र पुत्र से कहा- बेटा, बनिये के बालक हो, व्यापार करो। इस नगर मे विशाखिल नामक एक धनी व्यापारी बनिया है। कुलीन घर के दरिद्रजनो को वह व्यापार के लिए सामान देता है, अतः तुम उसी के पास जाओ और मागो। 'बनिया-पुत्र गया। उस समय विशाखिल सेठ ने उस बनिये के लडके से कहा- भूमि पर एक मरा चूहा पडा है, चतुर बनिया हो तो इस सौदे से भी धन कमा सकता है। वणिक् पुत्र ने मृत मूषक ले लिया। मूषक को उठाकर एक डिब्बे मे रखा और सेठ की बही मे लिख दिया। दो अजुली चने लेकर उसने मृत मूषक को एक सेठ की भूखी बिल्ली के भोजनार्थ दे दिया। चने को भुनाकर उसने एक घडा पानी के साथ नगर से बाहर चौराहे पर अड्डा जमा लिया। वह लकड़ी का बोझ लेकर जाने वाले मजदूरो को चना देकर पानी पिलाता और उनसे एक-एक, दो-दो लकडी मांगता। इस प्रकार कुछ दिन मे उसके पास एक गट्ठर लकडिया संचित हो गयी। दैवयोग से लकडिया बिक गयी। उस धन से उसने दो-

तीन, कई लकडहारो से लकडी खरीदकर सचित कर लिया। वर्षाकाल मे लकडियो का जगल से आना बन्द हो गया। उसकी लकडियॉ अधिक दाम पर बिक गयी। उस धन से दुकान स्थापित कर व्यापार से प्रभूत धन अर्जित किया। वह अति सम्पत्तिशाली सेठ बन गया, और सेठ विशाखिल को सोने का मूषक बनाकर भेट किया।[२१]

आलोच्य ग्रन्थ मे यत्र-तत्र व्यापारियो की बुद्धिमता और मूर्खता की भी रोचक कथाएँ मिलती है। एक वैश्य पर्याप्त सामान लेकर धनार्जन के लिए कटाह द्वीप गया। वहॉ उसके सामान की बिक्री हुई और उसने धन प्राप्त किया। सामानो मे उसके पास पर्याप्त मात्रा मे अगरू की लकडियां भी थी। वहॉ के निवासी अगरु के महत्व के अनभिज्ञ रहे, परिणामत· किसी ने क्रय नही किया, वैश्यपुत्र ने अगरु की सारी लकडी जला दिया, कोयला बन गया। अब उसने कोयला बेंचकर सन्तोष किया। यह उसकी निरी मूर्खता रही। कटाह-द्वीप वासियो द्वारा लकडहारो से कोयला क्रय करते देख उस वैश्य ने अगंरु की लकडी को जलाकर कोयला के भाव बेच दिया। वापस आकर मित्रो से बताया तो उसका परिहास हुआ।[२२] एक रूई का व्यापारी था। वह भी पर्याप्त मात्रा मे रूई लेकर बेचने गया। खरीददारो ने यह कहकर कि रूई अच्छी नही है, खरीदा ही नही। वही एक सुनार सोने को आग मे तपाकर बेच रहा था। बनिए ने देखा और सोचा- क्यो न मै भी रूई को आग मे तपाकर शुद्ध करु, फिर बेचू। निश्चय ही मेरी शुद्ध रुई बिक जायेगी। उसने सारी रूई आग मे झोक दी।[२३] लघु व्यापारी अगरु, रूई, वस्त्र आदि के विक्रय से धनार्जन

करते थे।[२४] वणिक वर्ग मे से ही कुछ जौहरी का काम भी करते थे। रत्न परीक्षण उनका मुख्य व्यवसाय था। कनकपुरी और शक्तिदेव के आख्यान मे रत्न परीक्षण का उल्लेख हुआ है - शिव और माधव दोनो ने परस्पर परामर्श करके पुरोहित का सम्पूर्ण धन हडप लिया और स्वतत्र रूप से ससुख रहने लगे। कालोपरान्त पुरोहित कुछ रत्न और आभूषण लेकर जौहरी के यहॉ बेचने गया। वहॉ वह हाथ का एक ककण बेचने लगा। रत्न परीक्षण करने वाले जौहरियो ने उसके परिक्षणोपरान्त पुरोहित से कहा- इस नकली माल का निर्माण करने वाला चतुर कौन है? विविध रंगो से रगे कांच के टुकडो तथा स्फटिक खण्ड को पीतल मे इस दक्षता से जड दिया गया है कि वे असली रत्न प्रतीत हो रहे है। यह सुन घबराया हुआ पुरोहित सभी आभूषण लेकर माधव को दिखाने के लिए गया। माधव ने कहा- ये नकली आभूषण सब तुम्हारे नकली आभूषण है।असली आभूषण पहले ही अलग कर लिया और नकली आभूषण रख दिये हो।[२५] समुद्रदन्त वैश्य की कथा से संकेत मिलता है कि उस समय वणिक् स्त्रियॉ भी पुरुषवेश मे समुद्र की यात्राएँ करती था- एकान्त मे अपनी सास से अपने पति की रक्षा करने का वचन देकर देवस्मिता मे अपनी सखियो के साथ वणिक् व्यापारियो के सदृश वेष बनाया। व्यापार करने के बहाने जहाज पर सवार होकर कटाह द्वीप के तट पर उतरी। उसका पति वही रूका हुआ था। कटाहद्वीप मे जौहरी बाजार मे व्यापारियो के मध्य स्थित मूर्तिमान धैर्य के समान उसने अपने पति को देखा। उसका पति गुप्तसेन पुरुष वेषधारिणी अपनी भार्या को पहचान न

सका किन्तु शक अवश्य हुआ- यह उसी के सदृश कौन है।[२६] ग्रन्थ मे आख्यानान्तर्गत सदर्भित वणिक् की कथाएँ हमे तत्कालीन वाणिज्य-व्यापार की एक स्थिति का समुचित ज्ञान कराते है। आधुनिक काल की ही भांति उस समय भी सेठो, बनियो के यहॉ हिसाब रखने के लिए 'बही' होती थी- ऐसा कहकर मैने उस मूषक को उठाकर एक डिब्बे मे रखा और उस सेठ की बही मे लिख दिया।[२७]

व्यापार के लिए प्रस्थान के पूर्व वणिक् मुहूर्त और शकुन-अपशकुन पर भी विचार करते थे। कथासरित्सागर मे कतिपय अकन प्राप्त होते है। शृगाली का रूदन अपशकुन् माना जाता था और आज भी मान्य है। उस काल मे भी वैश्य व्यापारी वाणिज्यर्थ प्रस्थान काल मे इसका ध्यान रखते थे। कीर्ति सेना के आख्यान मे सन्दर्भ है कि विश्रामोपरान्त पुर्नप्रस्थानकाल मे शृगाली ने अपशकुन कर दिया जिसका परिणाम हानि प्रद रहा। विश्राम के अनन्तर वणिक् दल वन प्रान्तर के मोड़ पर रुका उसी समय यमराज के दूति के समान एक श्रृंगाली ने भयंकर रूप से रोना प्रारम्भ कर दिया। अपशकुन को जानकर वैश्य व्यापारी चोर लुटेरो के भय की शका से सजग हो गये रक्षक दल के सैनिक सन्नद्धसनन्ध्य हो गये। अन्धकार पूर्ण वातावरण मे सभी चारो ओर फैल गये।[२८] भली भॉति सावधान और रक्षा के पश्चात् वणिक् दल आगे की यात्रा पर अग्रसर हुआ परन्तु अपशकुन् अपना प्रभाव कब नही छोडता है? व्यापारियो पर विपत्ति आनी ही थी। अर्धरात्रिकाल मे लुटेरो के एक विशाल दल ने व्यापारियो को घेर लिया। भीषण वर्षाकाल सदृश युद्ध हुआ

कोलाहल करते हुए डाकू काले बादल के समान मालूम पड रहे थे। शस्त्रो के सघर्ष से निकलती अग्नि बिजली का काम कर रही थी। भीषण मारकाट के कारण रुधिर की घोर वर्षा सी प्रारम्भ हो गयी। लूटेरे समुद्रसेन व्यापारी को मारकर उसका समस्त धन लूट ले गये।[२९] वणिक् व्यापारी के समस्त कार्यकलाप मात्र धनार्जन- हेतु होता था, तदर्थ वह उचित-अनुचित, सगत-असंगत सभी साधन अथवा माध्यम का आश्रय स्वीकार लेता था। लोभ उसका प्रकृत गुण है। एक व्यापारी दल समुद्र मे यात्रा कर रहा था। मार्ग मे एक स्थान पर उनका जहाज समुद्र मे फॅस गया। व्यापारी और सार्थवाह किंकर्तव्यविमूढ हो गये। दल मे एक विदूषक नामक ब्राह्मण भी था। जहाज फॅसने पर बनियो ने रत्नो से पूजन कर समुद्र से प्रार्थना भी की किन्तु कोई लाभ नही हुआ। तब बनिया ने आर्त स्वर मे कहा- इस फॅसे हुए जहाज को जो भी छुडा दे, उसे मै अपना धन और अपनी कन्या दे दूँगा। यह सुनकर साहसी विदूषक ने कहा- मै जल मे उतर कर पता लगाऊॅगा। आप लोग मुझे रस्सी से बॉधो और ऊपर से पकड़े रहो। जब जहाज चल पडे तो ऊपर खीच लेना। वह समुद्र मे नीचे उतरा। उसके हाथ मे तलवार थी। समुद्र तल मे विशालकाय पुरुष सो रहा था। उसी की जाघ मे जहाज फॅस गया था। विदूषक ने उसकी जांघ तलवार से काट दी और इस प्रकार जहाज चल पडा। बनिये को धन देना पडेगा यह सोचकर धनलोभ मे रस्सियॉ काट दी और स्वय समुद्र पार हो गया तथा विदूषक समुद्र मे ही गिर गया।[३०]

कथासरित्सागर के आख्यानो का अध्ययन सदर्शित करता है उस काल मे व्यापार का राष्ट्रीय ही नही अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप भी था। अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य समुद्र मार्ग से और राष्ट्रीय व्यापार स्थल मार्ग द्वारा होता था। भारतीय व्यापार दोनो ही मार्गो से समानत उन्नतिशील था। स्थल मार्ग उत्तरापथ और दक्षिणापथ नाम से प्रख्यात रहे। उत्तरापथ मार्ग विशेष स्थान रखता था। इसी मार्ग पर ताम्रलिप्ति के बन्दरगाह से लगाकर उत्तर पश्चिम मे पुष्कलावती तक चला जाता था। इस महापथ मे पुष्कलावती, ताम्रलिप्ति भाग पर तक्षशिला, शाकल, हस्तिनापुर, कान्यकुब्ज, प्रयाग, वाराणसी, वैशाली, गया, राजगृह, पाटलिपुत्र तथा चम्पा आदि भारत के सुप्रसिद्ध नगर थे। जिनमे भारत के अनेक राजवंशो की राजधानियॉ समय -समय पर प्रतिष्ठित हुई थी।[३१] उत्तरापथ मार्ग द्वारा व्यापारी दल के प्रस्थान और वाणिज्य दल के प्रस्थान और वाणिज्य करने का सन्दर्भ कथासरित्सागर मे अकित है- गुहसेन व्यापार-निमित्त कटाहद्वीप की ओर प्रस्थान किया। कटाहद्वीप पहुॅच जाने पर उसने अपने रत्नो को बेचने का कार्य प्रारम्भ कर दिया। उसके हाथ मे एक विकसित कमल था। यह देखकर अन्य वैश्य पुत्र विस्मित हो गये तथा गुहसेन को अपने घर ले गये। मदिरा पान करा कर सारा वृतान्त जान लिया। वैश्य पुत्रो को परिव्राजिका मिली। उसने अपनी एक सिद्धिकरी नाम की शिष्या का सन्दर्भ दिया और कहा कि उसकी कृपा से मुझे प्रभूत धन प्राप्त हुआ है। वैश्य पुत्रो ने कहा- अपनी शिष्या की कृपा से आपको प्रचुर मात्रा मे धन की प्राप्ति हुई कैसे? परिव्राजिका ने बताया- सुनने की अभिलाषा

है तो सुनो- एकबार उत्तरापथ से कोई बनिया यहाँ आया था। एक अन्य आख्यान द्रष्टव्य है- 'निश्चय दत्त एव अनुरागपरा मे वर्णन से भी उत्तरापथ स्थल मार्ग का ज्ञान हमे प्राप्त होता है- उस कामपीडित वैश्य ने एकदिन किसी प्रकार व्यतीत करने के उपरान्त प्रात काल उठकर तत्काल उत्तर दिशा की ओर प्रस्थित हो गया। जाते हुए उसे मार्ग मे तीन बनिया सहयात्री मिल गये जो उत्तरापथ की ओर जा रहे थे।[३२]

वणिक् जन सामान्यत. अर्थलोलूप होते है। कथासरित्सागर का व्यापारी धनार्जन करने के लिए अनुचित माध्यम यहाँ तक कि मध्यस्थ (दलाल) का भी उपयोग करता अंकित किया गया है।[३३] अर्थलोभ वश अपने सहायक हितैषी के संग भी धोखा, छल-छद्म करना अपना धर्म मानता था। अपनी भार्या तक को भी माध्यम ही नही अपितु अर्थलाभ के लिए प्रयोग किया करते थे। यहाँ तक कि धन वस्त्र की प्राप्ति निमित्त दूसरे व्यापारी के हाथो उसे विक्रय कर देते थे।[३४] उसके लिए धन ही जीवन है, उसका धन उनके निज सुख-विलास के लिए ही होता रहा। आलोच्य ग्रन्थ मे ऐसे सन्दर्भो के अकन बहुसंख्यक है इसका अर्थ यह कथमपि नही है कि व्यापारी, वणिक्, वैश्य अथवा बनिया मे औदार्य, सवेदना, सदाशयता का लेश ही नही होता था। उदार संवेदनशील चरित्र एक वैश्य की कथा द्रष्टव्य है- लम्पा नामक एक सुन्दर नगरी मे एक कुसुमसार नामक एक धनिक वैश्य रहता था। अपना वृतांत युवराज नरवाहन दत्त को बताते हुए उसका पुत्र कहता है- मै उसी परम धार्मिक वैश्य का चन्द्रसार नामक पुत्र हुँ। मै उसे शंकर की

आराधना के फलस्वरूप प्राप्त हुआ था। एक बार मै मित्रगण-सग देवयात्रा के लिए गया था। वहॉ मैने भिक्षुको को धनिक बनियो से धन मांगते हुए देखा। मेरे मन मे दान देने की श्रद्धा वश धन उपार्जित करने की इच्छा बलवती हुई। मै पिता द्वारा उपार्जित अतुल धन-लक्ष्मी से संतुष्ट न था। इस कारण मै समुद्र मार्ग से जाकर अन्य द्वीपो मे वाणिज्य करके धनार्जन करने का विचार किया। विविध रत्नो से भरी नाव पर सवार होकर व्यापारिक यात्रा किया। देव तथा वायु की अनुकूलता के कारण मेरी नाव कतिपय देशो के अन्तराल मे निर्दिष्ट द्वीप पर पहुॅच गयी। मेरे जवाहरात की धूम देखकर उस द्वीप के नृप ने, मुझे ठग, अविश्वासी समझकर, धन के लोभ मे बॉध कर कारागार मे डाल दिया।[३५] सभी वणिक् व्यापार के उत्कट अभिलाषी थे।

कर तथा राजस्व

वर्ण व्यवस्था समाज-सगठन की आधारभूमि है तदनुसार द्वितीय वर्ण क्षत्रिय का प्रमुख धर्म वर्ण-व्यवस्था को संरक्षित रखना और राष्ट्र की सुरक्षा करना था। क्षत्रिय नृप का धर्म प्रजा पालन होता है। धर्म शास्त्रकारो ने राजा को अधिकार दिया है कि वह राज व्यवस्था के सचालनार्थ कर भी लगाये- राजा अपने विश्वस्त कर्मचारियो द्वारा प्रजा से वार्षिक कर का संग्रह करे। उसे लोक मे वेदानुसार व्यवहृत करे। अर्थात् कर आदि ले किन्तु निज प्रजा संग पितृ-सम व्यवहार अवश्य करे। खरीदने और बेचने का मूल्य, मार्ग,

भोजन तथा रक्षा का व्यय एव लाभ इसका हिसाब करके व्यापारी से कर लेना चाहिए।[३६] इस राज धर्म का अकन कथासरित्सागर मे भी मिलता है। व्यापारियो के रक्षण, उनके धनादि की लुटेरो से सरक्षित रखने के शुल्क स्वरूप उस काल मे कर-राजस्व ग्रहण होते थे। कतिपय व्यापारी इसे न देना पडे ऐसा भी प्रयास करते थे। मार्ग शुल्क प्रत्येक मार्ग पर प्रत्येक व्यापारी के लिए अनिवार्यत देय था। कदाचित् कुछ मार्ग ऐसे भी थे जो वाणिज्य की दृष्टि से लाभकर थे किन्तु शुल्क की दृष्टि से अलाभकर थे। इस कारण व्यापारियो का दल कम देय शुल्क वाले मार्ग का अनुसरण करने के निमित्त प्रयास करता था- व्यापारी वैश्यो का दल मार्ग शुल्क अथवा चुंगी कर के आधिक्य से बचने की दृष्टि से उस मार्ग को त्याग, दूसरे वन प्रान्तर वाले मार्ग पर अग्रसर होकर उस गतिशील मार्ग का अनुसरण किया। जो अधिकाधिक गमनागमन पूर्ण रहा।[३७] तत्कालीन व्यापारिक मार्ग अबाध पूर्ण न थे। व्यापारी दल क्षण-प्रतिक्षण चोर-लूटेरो के आक्रमण से आशकित रहता था, वह ऐसा मार्ग चुनता था जो ऐसी आपत्तियो से रहित, सुरक्षित हो साथ ही साथ उस प्रान्तर का शासक अथवा राजा उनकी सुरक्षा पर ध्यान देता हो। राजा व्यापारियो से कर ग्रहण करता, उसके बदले मे उनकी सुरक्षा का दायित्व भी निर्वहन करता था। कथासरित्सागर के एक अंकन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है- उस भैरव ने मेरा नाम गोत्र पूंछकर मुझे अनुमति दिया। हे भयकरि। तुम खरदूषण के वश मे उत्पन्न हुई हो तथा कुलीन भी हो, इसलिए समीपस्थ वसुदत्तपुर की ओर जाओ वहॉ का नृप वसुदत्त अत्यन्त

धर्मप्रवण और प्रजापालक है। वह वही जंगल के निकट निवसता है और पूरे प्रान्तर की सुरक्षा-व्यवस्था भी सुदृढ रखता है। मार्ग शुल्क अवश्य ग्रहण करता है परन्तु चोर लुटेरो का निग्रहण करना भी अपना कर्तव्य मानता है।[३८] कथासरित्सागर का एक और अकन इस प्रकार द्रष्टव्य है- वह जगल के छोर पर रहकर अत्यन्त अल्प मार्ग शुल्क ग्रहण करके इस मार्ग से जाने वालो की रक्षा भी करता है। जिसके परिणामस्वरूप अधिकतर व्यापारियो का दल उसी रास्ते जाना हितकर समझता है।[३९]

कथासरित्सागर मे वर्णित समाज सुसम्पन्न रहा समाज के लोगो का जीवन स्तर सुखमय था। वाणिज्य-व्यापार राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समुन्नत था। व्यापार करने वाले वणिक् धन धान्य, वस्त्र, आभूषण, छत्र, जवाहर, अश्व, अगरू आदि लकड़ी एवं सामान्य जनो के उपयोग के वस्तुओ तूल आदि का क्रय-विक्रय करते थे। स्वर्ण तथा स्वर्णनिर्मित आभूषणो का भी व्यापार एक वर्ग विशेष करता था जिसे कथासरित्सागर मे जौहरी नाम से अभिहित किया गया है। अश्वादि का भी व्यापार कथासरित्सागार मे बहुश सदर्भित है। व्यापार मे विनिमय-मुद्राये भी विविध प्रकार की प्रचलन मे थी। जिनमे प्रमुखत दीनार, मोहर, स्वर्ण मुद्रा, सिक्के, कार्षापण, कपर्दक आदि का उल्लेख ग्रन्थ मे संकलित आख्यान-क्रम मे प्राप्त होते है- एक हाथ से माल खरीदकर, तत्काल दूसरे के हाथ विक्रय कर दिया, इस प्रकार बिना धन लगाये ही मध्यस्थ रूप मे ही दीनार अर्जित कर लिया। मात्र इतने बडे कुटुम्ब के लिए उसने राजा से पॉच सौ दीनार प्रतिदिन का वेतन मांगा।[४०]

दीनार का ही अपरनाम कदाचित् मोहर ही व्यवहृत होता था- राजा ने उसके पीछे गुप्तचर लगा दिये- देखो यह दो हाथो वाला इनती मुहरो को कैसे खर्च करता है? उस वीरवर ने पॉच सौ मुहरो मे से एक सौ मुहरो से अपने भोजनादि के प्रबन्धन-हेतु अपनी पत्नी को देता, एक सौ से कपडे, मालाये आदि क्रय करता, एक सौ मुहरे स्नानोपरान्त विष्णु, शिव आदि के पूजन मे व्यय करता था, शेष दो सौ मुहरे प्रतिदिन ब्राह्मण एव भिक्षुओ को दान मे दे देता। इस प्रकार वह पॉच सौ मुहरे प्रतिदिन व्यय कर देता था।[४१] ठिण्ठाकराल नामक उज्जयिनी का द्यूतकार प्रतिदिन हार जाता था। जीते हुए द्यूतकार उसे एक सौ कपर्दक दिया करते थे।[४२]

कथासरित्सागर के अनुशीलन से यह भी संकेत मिलता है कि उस काल तक म्लेच्छ, ताजिक अथवा तुरुष्क (तुर्क) भी व्यापारियो के मार्ग मे विपत्ति के कारण बनते रहे। निश्चय दत्त और अनुरागपता के आख्यान मे व्यापारियो को पकडकर दामो मे दूसरो के हाथ बेच देने का सन्दर्भ कथासरित्सागर मे प्राप्त होता है- वहॉ पर वह उन यात्रियो के साथ ताजिक (म्लेच्छो) लोगो से पकड़ा जाकर दूसरे ताजिक के हाथ दामो मे बेच दिया गया। उसने भी उन चारो को खरीदकर नौकर के हाथो उपहार स्वरूप मुरवार नामक तुर्क के पास भिजवा दिया जब उस ताजिक के और उन तीनो के साथ निश्चयदत्त को लेकर मुरवार के पास पहुँचे वह मर चुका था। अत उन्हे उसके पुत्र को सौप दिया। उस तुर्क के पुत्र ने 'यह मेरे मित्र ने पिता के लिए उपहार स्वरूप भेजा है अत इन्हे

कल प्रात· उन्ही के पास कब्र मे गाड़ दिया जाये' कहा तथा उन्हे कसकर बॉधा फिर एक तरफ रख दिया।[४३] ऐसी स्थिति देखकर निश्चयदत्त देवी भगवती की स्तुति करने लगा। स्तुति करते-करते वह सो गया। स्वप्न मे उसे सुनायी पडा- उठो तुम्हारे बन्धन कट गये है। मार्ग उन साथियो ने निश्चयदत्त से कहा- म्लेच्छो से आक्रान्त उत्तर दिशा को छोड़ो, दक्षिणापथ ही अच्छा है। और इस प्रकार निश्चयदत्त उत्तरापथ की ओर गया।[४४]

कथासरित्सागर के आख्यानो मे घटनानुक्रमान्तर्गत सन्दर्भो के आधार पर हम यह कह सकते है कि तत्कालीन समाज मे जनजीवन सामान्यत सहज ही रहा। लोग अपनी जीविकोपार्जन-निमित्त चित्र निर्माण, मूर्ति-उट्टकण, काष्ठ-कला, गार्हस्थ्य जीवन के उपयोग मे आने वाली वस्तुओ जैसे डोलची और काष्ठपुत्तलिकाये भी बनाते थे। अहिर अथवा ग्वाले गाय पालन करते हुए उनसे दूध प्राप्त करते थे। कथासरित्सागर मे दुग्ध विक्रय करने का उल्लेख भी वही प्राप्त होता है। कृषि का सन्दर्भ यत्र-तत्र है परन्तु कृषि का सांगोपाग विवरण नही मिलता। वणिक् जन राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे संलग्न रहते थे और इस प्रकार सम्पूर्ण वृहत्तर भारत उनके लिए व्यापारिक क्षेत्र सदृश था। विक्रय वस्तुओ मे स्वर्ण, रत्न, जवाहरात, स्वर्णाभूषण, अगरू, तूल आदि थी। वस्त्र और अश्वो का भी क्रय-विक्रय होता था। उस समय उत्तरापथ और दक्षिणापथ दो विशेष व्यापारिक मार्ग थे। व्यापार विनिमय मे दीनार, मुहर, कर्पदक आदि का प्रचलन था। कथासरित्सागर कालीन समाज की आर्थिक स्थिति सुदृढ तो थी लेकिन अस्त-व्यस्त भी थी।

सन्दर्भ एवं पाद-टिप्पणी

१ केनापि रजकेनैत्य गर्दभ पुष्टये कृश।
परसस्येषु मुक्तोऽभूदाच्छाद्य द्वीपिचर्मणा।।

स तानि खादन् द्वीपीति जनैस्त्रासान्न वारित।
एकेन ददृशे जातु कार्षिकेण धनुर्भृता।। - कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरग ६/१९-२०

२ स कदाचित्तिलान् भृष्टान्भुक्त्वा स्वादूनवेत्य तान् ।
भृष्टानेवावपद् भूरीस्तादृशोत्पत्तिवाञ्छया।। - कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरग ५/८

३ तत्क्षण च क्षुधाक्रान्त शाकवाटेऽवतीर्य स।
तत्र सुन्दरकश्चक्रे वृत्तिमुत्खातमूलकै ।। - कथासरित्सागर/लम्बक ३/तरग ६/१४३

४ गच्छश्च तत्र कलकूजितराजहसमच्छ सुधासरसशीतलभूरिवारि।
आम्रावलीपनसदाडिमरम्यरोध साय सरो विकचवारिजमाससाद।।

कथासरित्सागर/लम्बक ७/तरग ८/२२४

५ गोपालकान्स पप्रच्छ ततस्तेऽप्येवमब्रुवन्।।

देव। गोपालका भूत्वा क्रीडामो विजने वयम् ।
तत्रैका देवसेनाख्यो मध्ये गोपालकोऽस्ति न।।

एकादेशे च सोऽटव्यामुपविष्ट शिलासने।
राजा युष्माकमस्तीति वक्त्यस्माननुशआस्ति च।।

अस्मन्मधाये च केनापि तस्याज्ञा न विलड् ध्यते।
एव गोपालकोऽरण्ये राज्य स कुरुते प्रभो०।। - कथासरित्सागर/लम्बक ३/तरग ४/३०-३३

६ यद्येवमतिथिस्तेऽह स्ववेष देह्यमु मम।
यावत् त्वमिव तत्राद्य याम्यह कौतूक हि मे।।

एव कुरु गृहाणेम मदीय कालकम्बलम् ।
लगुड चास्व चैवेह तद्दासी यावदेष्यति।। - कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरग ८/१७-१८

७ सा च तस्यान्वह धेनु पय पलशत ददौ।
कदाचिच्चाभवत्तस्य प्रत्यासन्न किलोत्सव।।

एकवार ग्रहीष्यामि पयोऽस्या प्राज्येमुत्सवे।
इति मूर्ख स नैवैता मासमात्र दुदोह गाम् ॥

प्राप्तोत्सवश्च यावत्ता दोग्धि तावत्पयोऽखिलम् ।
तत्तस्याश्छिन्नमच्छिन्न लोकस्य हसित त्वभूत॥ - कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरग ५/४५-४७

८ तत सोमप्रभा प्रातस्तद्विनोदोपपादिनीम्।
न्यस्तदारुमयानेकमायासद्यन्त्रपुत्रिकाम्॥

करण्डिका समादाय सा नभस्तलचारिणी।
तस्या कलिङ्गसेनाया निकट पुनराययौ॥ -कथासरित्सागर/लम्बक ६/तरग ३/१-२

९ इति देवस्मिता श्वश्रू रह उक्त्वा तपस्विनी।
स्वचेटिकाभि सहिता वणिग्वेष चकार सा॥

आरुह्य च प्रवहण वणिज्याव्याजतस्तत ।
कटाहद्वीपमगमद्यत्र सोऽस्या पति स्थित ॥ - कथासरित्सागर/लम्बक २/तरग ५/१७९-१८०

१० रोलदेवाभिधानेन सिहद्वारेऽत्र तेन च।
एतद्देवाभिलिख्याद्य चीरिकोल्लम्बिता किल॥

तच्छ्रुत्वैवादराद् भूपेनादिष्टानयन स तम् ।
आनिनाय प्रतीहारो गत्वा चित्रकर क्षणात् ॥

स प्रविश्य ददर्शात्र चित्रालोकनलीलया।
स्थित कनकवर्ष त नृप चित्रकारो रह ॥

वरनारीकुचासङ्गसमर्पिततनूभरम् ।
सहेलोदञ्चितकरोपात्तताम्बूलवीटिकम्॥

प्रणम्य चोपविष्टस्य राजान विहितादरम्।
शनैर्विज्ञापयामास रोलदेव स चित्रकृत् ॥

चीरिकोल्लम्बिता देव त्वत्पादाब्जदिदृक्षया।
मया न विज्ञानमदात् तत्क्षन्तव्यमिद मम॥

आदिश्यता च चित्रे किमालिखामीह रूपकम्।
भवत्वेत्कलाशिक्षायत्नो से सफल प्रभो॥

इति चित्रकरेणोक्ते स राजा निजगाद तम्।
उपाध्याय यथाकाम किञ्चिदालिख्यता त्वया॥

ह्लादयमो वय चक्षुर्भ्रान्तिस्त्वत्कौशले तु का।
इत्युक्ते तेन राज्ञाऽत्र तत्पार्श्वस्था बभाषिरे॥

राजैवालिख्यतामन्यैर्विरूपै कि प्रयोजनम्।
तच्छ्रुत्वा चित्रकृत्तुष्ट स त राजानमालिखत्॥

तुङ्गेन नासावशेन दीर्घरक्तेन चक्षुषा।
विपुलेन ललाटेन कुन्तलै कुञ्चितासितै ।।

- इत्यादि कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरग ५/३७-४७

११ तेन स्तम्भ स सुश्लक्ष्ण कालेनाभवदेकत ।
अथागाच्चित्रकृत्तेन पथा रूपकृता सह।।

ततस्तयोर्गतवतोर्महाकालार्चनागता।
विद्याधरसुतैकात्र स्तम्भे देवी ददर्श ताम्।। - कथासरित्सागर/लम्बक ७/तरग ३/८-९

१२ नगरे क्वापि केनापि वणिजा देवतागृहम्।
कर्तुमारब्धमभवद् भूरिसम्भृतदारुकम्।।

तत्र कर्मकरा काष्ठ क्रकचोर्ध्वार्धताटितम्।
दत्तान्त कीलयन्त्र ते स्थापयित्वा गृह यय ।।

- कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरग ४/२७-२८

१३ पञ्चपट्टिकनामाह शूद्रो विज्ञानमस्ति मे।
व्यामि प्रत्यह पञ्च पट्टिकायुगलानि च।।

तेभ्य एक प्रयच्छामि ब्राह्मणाय ददामि च।
द्वितीय परमेशाय तृतीयं च वसे स्वयम्।।

चतुर्थ मे भवेद् भार्या यदि तस्यै ददामि तत्।
शरीरयात्रा विक्रीय पञ्चमेन करोम्यहम्।। - कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरग २/९९-१०१

१४ तेऽप्येव दर्शनप्रीता पृष्टवन्त तमब्रुवन्।
अस्ति मध्ये महाम्भोधे श्रीमद्द्वीपवर महत्।।

यन्नारिकेलद्वीपाख्य ख्यात जगति सुन्दरम्।
तत्र सन्ति च चत्वार पर्वता दिव्यभूमय ।।

मैनाको वृषभश्चक्रो बलाहक इति स्मृता ।
चतुर्षु तेषु चत्वारो निवसाम इमे वयम्।।

- कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरग ४/१४-१६

१५ नीत्वा च रात्रिमन्विष्य वणिजा विष्णुवर्मणा।
स व्याधात् सङ्गति द्वीपं नारिकेल प्रयास्यता।।

तेनैव च सहारुह्य यानपात्र जगाम स ।
चन्द्रस्वामी सुतस्नेहाद् द्वीपमब्धिपथेन तम्।।

तत्र पृच्छन्तमूचुस्त वणिजस्तन्निवासिन ।
वणिक्कनकवर्माख्य काममासीदिहागत ।।

सुरूपावटवीप्राप्तावादाय द्विजदारकौ।
गत कटाहद्वीप तु तद्युक्त स इतोऽधुना।।

तच्छ्रुत्वा स ततो विप्रो वणिजा दानवर्मणा।
पोतेन गच्छता साक कटाहद्वीपमभ्यगात्॥

तत्रापि स द्विजोऽश्रौषीद् गत त वणिज तत।
द्वीपात् कनकवर्माण द्वीप कर्पूरसज्ञकम्॥

एव क्रमेण कर्पूरसुवर्णद्वीपसिहलान्।
वणिग्भिछ सह गत्वापि त प्राप वणिज न स॥

- कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरग ६/५६-६२

१६ आरुह्य देवपुत्रैस्ते साक कृतनिमन्त्रणै।
नारिकेलमगद्द्वीप देवैश्चैव कृतस्पृह॥

तत्र तैरर्चितो रूपसिद्धिप्रभृतिभि कृती।
चतुर्भिर्दिव्यपुरुषै शक्रसारथिना युत॥

मैनाकवृषभाद्येषु तन्निवासाद्रिषु क्रमात्।
अप्सरोभि सम ताभि स्वर्गस्पर्धिष्वरस्त स॥

- कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरंग ४/४९-५१

१७ स वणिज्यावशाद् गच्छन् सुवर्णद्वीपमेकदा।
आरुरोह प्रवहण तट प्राप्य महाम्बुधे॥

गच्छतस्तस्य तेनाब्धौ किञ्चिच्छेषे तदध्वनि।
घोर समुदभून्मेघो वायुश्च क्षोभितार्णव॥

तेनोर्मिगविक्षिप्ते वहने मकराहते।
भग्ने परिकर बद्ध्वा सोऽम्बुधावपततद्वणिक्॥

यावच्च बाहुविक्षेपैर्वीरोऽत्र तरति क्षणम्।
तावच्चिरमृत पुराप पुरुष पवनेरितम्॥

तदारूढश्च बाहुभ्या क्षिप्ताम्बुर्विधिनैव स।
नीत सुवर्णद्वीप तदनुकूलेन वायुना॥

- कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरग ४/१००-१०४

तत्रावतीर्ण पुलिने स तस्मान्मृतमानुषात्।
कटीनिबद्ध सग्रन्थि तस्यावैक्षत शाटकम्॥

उन्मुच्य वीक्षते यावच्छाटक कटितोऽस्य तत्।
तावत्तदन्तराद्दिव्य रत्नाढ्य प्राप कण्ठकम्॥

त दृष्ट्वानर्घमादाय कृतस्नानस्तुतोष स।
मन्वानोऽधौ विनष्ट तद्धन तस्याग्रतस्तृणम्॥ - वही/१०५-१०७

१८ समुद्रशूरो न्यग्रोधमारूढोऽभूदलक्षित॥

हताशेषधने याते चौरसैन्ये भयाकुल

तत्रैव ता तरौ रात्रि दु खार्त्तश्च निनाय स।।

प्रातस्तस्य तरो पृष्ठे गतदृष्टि स दैवत।
दीपप्रभामिवापश्यत्स्फुरन्ती पत्रमध्यगाम्।।

विस्मयात्तत्र चारूढो गृध्रनीढमवैक्षत।
अन्त स्थभास्वरानर्घरत्नाभरणसञ्चयम्।।

जग्राह तस्मात्सर्व तत्तन्मध्ये प्राप कण्ठकम्।
त स य प्राप्तवान् स्वर्णद्वीपे गृध्रेऽहरच्च यम्।।

तत प्राप्तामितधनो न्यग्रोधादवरुह्य स।
हृष्टो गच्छन् क्रमात् प्राप निज हर्षपुर पुरम्।।

- कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरग ४/१२५-१३०

१९ गजाश्वरत्नवस्त्रादिविक्रय य व्यधत्त सा।
त त सोपचय दृष्ट्वा सोऽर्थलोभोऽन्वमोदत।।

एकदा चात्र कोऽप्यागाद् दूराद्देसान्तराद्वणिक् ।
महान्सुखधनो नाम प्रभूताश्वादिभाण्डधृत्।।

त बुद्ध्वैवागतम भार्यामर्थलोभोऽब्रवीत्स ताम् ।
बणिक्सुखधनो नाम प्राप्तो देशान्तरादिह।।

प्रिये वाजिसहस्राणि तेनानीतानि विशति।
चीनदेशजसद्वस्त्रयुग्मान्यगणनानि च।।

तद्गत्वाश्वसहस्राणि पञ्च तस्मात्त्वमानय।
क्रीत्वा सद्वस्त्रयुग्माना सहस्राणि तथा दश।।

यावदश्वसहस्रै स्वैस्तथा तैश्चापि चञ्चभि।
करोमि दर्शन राज्ञो वणिज्या विदधामि च।।

एवमुक्त्वार्थलोभेन प्रेषिता तेन पाप्मना ।
आगान्मानपरा तस्य पार्श्व सुखधनस्य सा।।

मार्गति स्म च मूल्येन तान्वस्त्रसहितान्हयान्।
चितस्वागतात्तस्मात्तद्रूपाहृतचक्षुष ।।

स च ता कामविवशो नीत्वैकान्तेऽब्रवीद्वणिक्।
मूल्येन वस्त्रमेक ते हय वा न ददाम्यहम्।।

वत्स्यस्येका निशा साक मया चेत्तद्ददामि ते।
शतानि वाजिना पञ्च सहस्राणि च वाससाम्।।

इत्युक्त्वा सोऽधिकेनापि ता प्रार्थयत सुन्दरीम्।
स्त्रीष्वनर्गलचेष्टासु कस्येच्छा नोपजायते।।

तत सा प्रत्यवोचत्तमेव पृच्छाम्यह पतिम्।

अत्रापि हि स जाने मा प्रेयेदतिलोभत ।।

इत्युक्त्वा स्वगृह गत्वा पत्यै तस्मै तदब्रवीत्।
यदुक्ता तेन वणिजा रह सुखधनेन सा।।

सोऽथ पापोऽर्थलोभस्ता कीनाश पतिरब्रवीत्।
प्रिये वस्त्रसहस्राणि पञ्च वाजिशतानि च।।

एकया यदि लभ्यन्ते रात्र्या दोषस्तदत्र क।
तद्गच्छ पाश्र्व तस्याद्य प्रभाते द्रुतमेष्यसि।। - कथासरित्सागर/लम्बक ७/तरग ९/७२-८६

२० आनाययच्च भृत्यैस्तद् गृहीत्वा प्रविलोक्य च।
वैद्य तरुणचन्द्र त जगाद निकटस्थितम्।।

नदीतीरेण गच्छ त्वमुपरिष्टादितोऽमुना।
उत्पत्तिस्थानमेतेषा पङ्कजाना गवेषय।। - कथासरित्सागर/लम्बक ७/तरग ६/८५-८६

२१ वणिक्पुत्रोऽसि तत्पुत्र' वाणिज्य कुरु साम्प्रतम्।
विशाखिलाख्यो देशेऽस्मिन् वणिक्चास्ति महाधन ।।

दरिद्राणा कुलीनाना भाण्डमूल्य ददाति स।
गच्छयाचस्व त मूल्यमिति माताब्रवीच्च माम्।।

ततोऽ्हमगम तस्य सकाशं सोऽपि तत्क्षण्।
इत्यवोचत् क्रुधा कञ्चिद् वणिक्पुत्र विशाखिल ।।

मूषकौ दृश्ये योऽय गतप्राणोऽत्र भूतले।
एतेना हि पण्येन कुशलो धनमर्जयेत्।।

दत्तास्तव पुन पाप दीनारा बहवो मया।
दूरे तिष्ठतु तद्वृद्धिस्त्वया तेऽपि न रक्षिता ।।

तच्छ्रुत्वा सहसैवाह तमवोच विशाखिलम्।
गृहीतोऽय मया त्वत्तो भाणडमूल्याय मूषक ।।

इत्युक्त्वा मूषक हस्ते गृहीत्वा सम्पुटे च तम्।
लिखित्वास्य गतोऽभूवमह सोऽप्यहसद् वणिक्।।

चणकाञ्जलियुग्मेन मूल्येन स च मूषक।
मार्जारस्य कृते दत्त कस्यचिद् वणिजो मया।।

कृत्वा ताश्चणकान्भृष्टान्गृहीत्वा जलकुम्भिकाम्।
अतिष्ठ चत्वरे गत्वा छआया नगराद् बहि ।।

तत्र श्रान्तागतायाम्भ शईतल चमकाश्च तान्।
काष्ठभारिकसङ्घाय सप्रश्रयमदामहम्।।

एकैक काष्ठिक प्रीत्या काष्ठे द्वे द्वे ददौ मम।
विक्रीतवानह हानि नीत्वा काष्ठानि चापणे।।

तत स्तोकेन मूल्येन क्रीत्वा ताश्चणकास्तत।
तथैव काष्ठिकेभ्योऽहमन्येद्यु काष्ठमाहरम्।।

एव प्रतिदिन कृत्वा प्राप्य मूल्य क्रमान्मया।
काष्ठिकेऽभ्योऽखिल दारु क्रीत तेभ्यो दिनत्रयम्।।

अकस्मादथ सञ्जाते काष्ठच्छेदेऽतिवृष्टिभि।
मया तद्दारु विक्रीत पणाना बहुभि शते।।

तेनैव विपणि कृत्वा धनेन निजकौशलात्।
कुर्वन्वणिज्या क्रमश सम्पन्नोऽस्मि महाधन।।

सौवर्णो मूषक कृत्वा मया तस्मै समर्पित।
विशाखिलाय सोऽपि स्वा कन्या मह्यमदात्तत।।

- कथासरित्सागर/लम्बक १/तरग ६/३३-४८

२२ जगाम स वणिज्यायै कटाहद्वीपमेकदा।
भाण्डमध्ये च तस्याभून्महानगुरुसञ्चय।।

विक्रीता परभाण्डस्य न तस्यागुरु तत्र तत्।
कश्चिज्जग्राह तद्वासी जनो वेत्ति न तत्र तत्।।

काष्ठिकेभ्यस्ततोऽङ्गारान् दृष्ट्वापि क्रीणतो जनान्।
ल रावाहुपु दग्धवा तदङ्गारानकरोज्जड।।

विक्रीयाङ्गारमूल्येन तच्चागत्य ततो गृहम्।

- कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरग ५/ ३-६

२३ मूर्ख कश्चित् पुमास्तूलविक्रयायापॅ ययौ।
अशुद्धमिति तत्तस्य न जग्राहात्र कश्चन।
तावद्ददर्श तत्राग्नौ हेम निष्टप्तशोधितम्।।

स्वर्णकारेण विक्रीत गृहीत ग्राहकेण च।
तद्दृष्ट्वाऽपि स तत्तूलमिच्छञ्शोधयितु जड।।
अग्नौ चिक्षेप दग्धे च तस्मिंलोको जहास तम्। - कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरग ५/ २८-३०

२४ कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरग ५/ २-३०

२५ गते काले च मूल्यार्थी स पुरोधा किलापणे।
ततोऽलङ्करणादेक विक्रेतु कटक ययौ।।

तत्रैतद्रत्नतत्त्वज्ञा परीक्ष्य वणिजोऽब्रुबनम्।
अहो कस्यास्ति विज्ञान येनैतत्कृत्रिम कृतम्।।

काचस्फटिकखण्डा हि नाना रागोपरञ्जिता।
रीतिबद्धा इमे नैते मणयो न च काञ्चनम्।।

- इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक ५/तरग १/ १७६-१८१

२६ इति देवस्मिता श्वश्रू रह उक्त्वा तपस्विनी।
स्वचेटिकाभि सहिता वणिग्वेष चकार सा।।

आरुह्य च प्रवहण वणिज्याव्याजतस्तत ।
कटाहद्वीपमगमद्यत्र सोऽस्या पति स्थित ।। - कथासरित्सागर/लम्बक २/तरग ५/१७९-१८०

२७ इत्युक्त्वा मूषक हस्ते गृहीत्वा सम्पुटे च तम्।
लिखित्वास्य गतोऽभूवमह सोऽप्यहसद् वणिक्।। -कथासरित्सागर/लम्बक १/तरग ६/३९

२८ चक्रे कृतान्तदूतीव शब्द भयकर शिवा।।

तदभिज्ञे वणिग्लोके चौराद्यापातशङ्किनि।
हस्ते गृहीतशस्त्रेषु सर्वतो रिपुरक्षिषु।।

ध्वान्ते धावति दस्यूनामग्रयायिबलोपमे। – कथासरित्सागर/लम्बक ६/तरंग ३/१०६–१०८

२९. ततो निशीथे सहसा निपत्यैवोद्यतायुधा।
चौरसेना सुमहती सार्थं वेष्टपति स्म तम्।।

निनदद्दस्युकालाग्रं शस्त्रज्वालाचिरप्रभम्।
ततः सरुधिरासां तत्राभूद्युद्धदुर्दिनम्।।

हत्वा समुद्रसेनं च सानुगं तं वणिक्पतिम्।
बलिनोऽथ ययुश्चौरा गृहीतधनसञ्चयाः।। – कथासरित्सागर/लम्बक ६/तरंग ३/११७–११९

३० ततः समुद्रमध्ये तद्यानपात्रमुपागतम्।
अकस्मादभवद्रुद्धं व्यासक्तमिव केनचित्।।

अर्चितेऽप्यर्णवे रत्नैर्यदा न विचचाल तत्।
तदा स वणिगार्त्तः सन् स्कन्ददासोऽब्रवीदिदम्।।

यो मोचयति संरुद्धमिदं प्रवहणं मम।
तस्मै निजधनार्थं च स्वसुतां च ददाम्यहम्।।

तच्छ्रुत्वैव जगादैनं धीरचेता विदूषकः।
अहमत्रावतीर्यान्तर्विचिनोम्यम्बुधेर्जलम्।।

क्षणाच्च मोचयाम्येतद्रुद्धं प्रवहणं तव।
यूयं चाप्यवलम्बधावं बद्ध्वा मां पाशरज्जुभिः।।

विमुक्ते च प्रवहणे तत्क्षण वारिमध्यतः।
उद्धर्त्तव्योऽस्मि युष्माभिरवलम्बन-रज्जुभिः।।

आदि-आदि कथासरित्सागर/लम्बक ३/तरंग ४/२९४-३०७

३१ प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर जीवन : डॉ० उदय नारायण राय पृष्ठ १६

३२ गुहसेनोऽपि तं प्राप कटाहद्वीपमाशु सः।
कर्त्तुं प्रववृते चात्र रत्नानां क्रयविक्रयौ।।

हस्ते च तस्य तद्दृष्ट्वा सदैवाम्लानमम्बुजम्।
तत्र केचिद् वणिक्पुत्राश्चत्वारो विस्मयं ययुः ।।

पप्रच्छुः पद्मवृत्तान्तं सोऽपि क्षीबः शशंस तम्।
प्रव्राजिकामुपाजग्मर्नाम्न योगगकरण्डिकाम्।

कथं शिष्याप्रसादेन भऊ प्राप्तं धनं त्वया।
कौतुकं यदि तत्पुत्राः श्रूयतां वर्णयामि वः।

इह कोऽपि वणिक्पूर्वमाययावुत्तारापथात्।। – कथासरित्सागर/लम्बक २/तरंग ५/८२–९३

इति सञ्चिन्तयन् नीत्वा स्मरार्त्तः सोऽत्र तद्दिनम्।
प्रातिष्ठत ततः प्रातरवलम्ब्योत्तरां दिशम्।।

ततः प्रक्रामतस्तस्य त्रयोऽन्ये सहयायिनः।
मिलन्ति स्म वणिक्पुत्रा उत्तरापथगामिनः।। – कथासरित्सागर/लम्बक ७/तरंग ३/३३–३४

३३. कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरंग ४/१९१

३४ कथासरित्सागर/लम्बक ७/तरंग ९/७२–७५

३५ तस्यां कुसुमसाराख्यो वणिगाढ्यो महानभूत् ।।

तस्य धर्मैकवसतेः शङ्करारधनार्जितः।
एकोऽहं चन्द्रसाराख्यः पुत्रो वत्सेशनन्दन।।

सोऽहं मित्रैः समं जातु देवयात्रामवेक्षितुम् ।
गतस्तत्रापरानाढ्यानद्राक्षं ददतोऽर्थिषु।।

ततो धनार्जनेच्छा में प्रदानश्रद्धयोदभूत् ।
असन्तुष्टस्य बह्वयापि पित्रुर्जितया श्रिया।।

तेन द्वीपान्तरं गन्तुमहमम्बुधिवर्त्मना।
आरूढवान् प्रवहण नानारत्नप्रपूरितम् ।।

दैवेनेवानुकूलेन वायुना प्रेरित च तत् ।
अल्पैरेव दिनैः प्राप तं द्वीप वहनं मम।।

तत्राप्रतीतमुद्रिक्तरत्नव्यवहृतिं च माम् ।
बुद्ध्वा राजार्थलोभेन बद्ध्वा कारागृहे न्यधात्।।

– कथासरित्सागर/लम्बक १२/तरंग १/३६–४२

३६ मनु०/अध्याय/८/८० और १२८

३७ ययौ च स वणिक्सार्थः पुरस्कृत्याटवीपथम् ।
बहुशुल्कभयत्यक्तमार्गान्तरजनाश्रितम् ।। - कथासरित्सागर/लम्बक ६/तरंग ३/१०५

३८ स च नामान्वयौ पृष्ट्वा देवो मामेवमादिशत्।
भयङ्करि कुलीनासि खरदूषणवंशजा।।

तदितो नातिदूरस्थं वसुदत्तपरं ब्रज।
तत्रास्ते वसुदत्ताख्यो राजा धर्मपरो महान् ।।

यः कृत्स्नामटवीमेतां पर्यन्तस्थोऽभिरक्षति।
स्वयं हृणाति शुल्कं निगृह्णाति च तस्करान्।।

- कथासरित्सागर/लम्बक ६/तरंग ३/१३३-१३५

३९. एतामेवाटवी सोऽल्पशुल्कः प्रान्तस्थितोऽवति।
तत्सौकर्याच्च वणिजः सर्वे यान्त्यमुना पथा।। - कथासरित्सागर/लम्बक ६/तरंग ३/१५०

४०. अन्यस्माद् भाण्डमादाय ददावन्यस्य तत्क्षणम्।
विनैव स्वधनं मध्याद्दीनारानुदपादयत्।।

- कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरंग ४/१९१

एवं क्रमेण सर्वेभ्यो नियोगिभ्यः स बुद्धिमान् ।
राजभ्यो राजपुत्रेभ्यः सेवकेभ्यश्च युक्तिभिः।।

बह्वीभिराददानोऽर्थानर्जयामास सर्वतः।
पञ्च कोटीः सुवर्णस्य कुर्वन् राजा सम कथाः।।

ततो रहसि राजानं धूर्त्तमन्त्री जगाद सः।
देव दत्त्वापि नित्यं ते दीनारशतपञ्चकम् ।।

त्वत्प्रसादान्मया प्राप्ताः पञ्च काञ्चनकोटयः।
तत्प्रसीद गृहाणैतत् स्वं स्वर्णमहमत्र कः।।

- कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरंग १०/१२८-१३१

इयन्मात्रे परिकरे वृत्तयेऽर्थयते स्म सः।
प्रत्यहं नृपतेस्तस्माद्दीनारशतपञ्चकम्।। - कथासरित्सागर/लम्बक९/तरंग ३/९२

४१ ददौ च तस्य चारान्स पश्चाज्जिज्ञासितुं नपः।
कुर्यादियद्भिर्दीनारैः किं द्विबाहुरसाविति।।

स च वीरवरस्तेषां दीनाराणां दिने दिने।
शतं हस्ते स्वभार्याया भोजनादिकृते ददौ।।

शतेन वस्त्रमाल्यादि क्रीणाति स्म शतं पुनः।
स्नात्वा हरिहरादीनामर्चनार्थमकल्पयत्।।

द्विजातिकृपणादिभ्यो ददावन्यच्छतद्वयम्।
एवं स विनियुङ्क्ते स्म नित्यं पञ्चशतीमपि।।

– कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरग ३/९४-९७

४२ तस्यं हारयतो नित्यं द्यूते ये जयिनोऽपरे।
ते प्रत्यहं द्यूतकाराः कपर्दकशतं ददुः।। – कथासरित्सागर/लम्बक १८/तरंग २/७३

४३ तत्र तैरेव सहितः पथि प्राप्यैव जातिकैः।
नीत्वा परस्मै मूल्येन दत्तोऽभऊत्ताजिकाय सः।।

तेनाऽपि तावद् भृत्यानां हस्ते कोशलिकाकृते।
मुरवाराभिधानस्य तुरुष्कस्य व्यसृज्यत।।

तत्र नीतः स तद्भृत्यैर्युक्तैस्तैरपरैस्त्रिभिः।
मुरवारं मृतं बुद्ध्वा तत्पुत्राय न्यवेदयत्।।

पितुः कोशलिका ह्येषा मित्रेण प्रेषिता मम।
तत्तस्यैवान्तिके प्रातः खाते क्षेप्या इमे मया।।

इत्यात्मना चतुर्थं तं तत्पुत्रोऽपि स तां निशाम्।
संयम्य स्थापयामास तुरुष्को निगडैर्दृढम्।। – कथासरित्सागर/लम्बक ७/तरंग ३/३६-४०

४४ स्मरतैकां भगती दुर्गामापद्विमोचनीम्।
इति तान् धीरयन् भक्त्या देवी तुष्टाव सोऽथ ताम्।।

'नमस्तुभ्यं महादेवि पादौ ते यावकाह्निकतौ।
मृदितासुरलग्नास्त्रपङ्काविव नमाम्यहम्।।

जितं शक्त्या शिवस्यापि विश्वैश्वर्यकृता त्वया।
त्वदनुप्राणितं चेदं चेष्टते भुवनत्रयम्।।

परित्रातास्त्वया लोका महिषासुरसूदिनि।
परित्रायस्व मा भक्तवत्सले शरणागतम्'।।

इत्यादि सम्यग्देवी तां स्तुत्वा सहचरैः सह।
सोऽथ निश्चयदत्तोऽत्र श्रान्तो निद्रामगादद्रुतम्।।

उत्तिष्ठत सुता यात विगतं बन्धनं हि वः।
इत्यादिदेश सा स्वप्ने देवी तं चापरांश्च तान्।।

प्रबुध्य च तदा रात्रौ दृष्ट्वा बन्धान् स्वतश्च्युतान्।

अन्योन्यं स्वप्नमाख्याय हृष्टास्ते निर्युयुस्ततः।।

गत्वा दुरमथाध्वानं क्षीणायां निशि तेऽपरे।
ऊचुर्निश्चयदत्त तं दृष्टत्रासा वणिक्सुताः।।

आस्ता बहुम्लेच्छतया दिगेषा दक्षिणापथम्।
वय यामः सखे त्व तु यथाभिमतमाचर।। - कथासरित्सागर/लम्बक ७/तरंग ३/४३-५१

उपसंहार

'कथासरित्सागर' गुणाढ्य की पैशाची भाषा निबद्ध 'बड्ढकहा' (वृहत्कथा) का सार संग्रह रूप संस्कृत रूपान्तर है यह उद्घोष स्वयं उसके रचनाकार सोमदेव ने कृति के प्रथम लम्बक मे किया है। साथ ही भारतीय और अभारतीय सभी विद्वान् भी यही स्वीकारते है। बात बडी विचित्र है। गुणाढ्य ने वृहत्कथा की रचना विविध, देश-प्रदेश के व्यापारियो उनके सार्थवाहो तथा अन्य कर्मचारियो द्वारा यात्रा की श्रान्ति मिटाने के लिए मनोरंजनार्थ विश्रान्तिक्षणो, मे कही गयी कौतूहल प्रद एवं चमत्कृत करने वाली, तद्वद्देशी लोककथाओ की कथाओ के चयन-प्रक्रिया द्वारा की। उन कथाओ मे वर्णित चरित्र, परिवेश वद्तद्देशीय लोक एवं उसके जन समूह के रहे। ये कथाएं लोक-प्रचलित आख्यान रहे होगे। इस स्थिति मे कथासरित्सागर यदि वृहत्कथा का सस्कृत रूपान्तर है तो उसके वर्ण्य विषय की अति विस्तृति से हमे विशाल दृष्टिलोक मे विचरना चाहिए। दूसरी ओर यदि यह माना जाय कि यदि सोमदेव ने वृहत्कथा को मूल आधार कल्पित करके कथासरित्सागर मे अपने समय और समाज के भोग का रस तत्त्व एव परिवेशानुगत अनुभवो का समाविष्ट किया है

तो एक काल विशेष की सीमाये, समाज, संस्कृति, परिवेश को केन्द्रित करने का उसका परिवीक्षण सगत है। कवि सोमदेव ने सातवे लम्बक मे वितस्ता सरि को जाह्नवी कहकर वर्णित किया है, अन्य भी स्थल है जहॉ कश्मीर के सन्दर्भ प्राप्त होते है। यदि कहा जाय कि कथासरित्सागर के आख्यान कश्मीर भूमि मे ही रचे-बचे है वही उदय एवं वही अस्त।

दसवी शती के उत्तरार्द्ध एव ग्यारहवी शती का मध्यभाग एक ऐसी कालावधि रही जब कश्मीर मे तीन रचनाकारो का अवतरण हुआ, वह थे कल्हण, क्षेमेन्द्र तथा सोमदेव। इनकी रचनाएँ क्रमश·-राजतरंगिणी, वृहत्कथा मंजरी और कथासरित्सागर है। तीनो ही रचनाकारो ने तत्समायिक समाज पर अपनी आन्वीक्षिकी दृष्टि का क्षेपण किया है। राजतरगणिी के कवि कल्हण ने समाज को राजकुल, राजकर्मचारी एवं राज सम्बन्धित अन्य जनो की पृष्ठभूमि पर अवस्थित होकर देखा है। यदि हम कहे कि कल्हण ने पूरे समाज को राजनीति परिधि मे आवृत्त कर चित्रित करना चाहा है। तो यह कथमपि अनुचित न कहा जायेगा। प्रकारान्तर से, राजतरंगिणी कश्मीर राजाओ का विवरणात्मक ग्रन्थ है। कश्मीरी सस्कृति, परम्परा एवं प्रवृत्तियो अथवा ऐसी कोई घटना स्पष्ट रूप से अकित नही जिससे यह आभास हो सके कि कश्मीर राजवंश, समाज-संस्कृति के प्रति उसकी जागरूकता का परिचय मिले। कवि क्षेमेन्द्र की दृष्टि अधिक उन्मीलित, स्वंत्रत तथा तीक्ष्ण है, कवि स्वत्रंत चेता है। उसने

समाज को अपनी पैनी और आन्वीक्षिकी-प्रक्रिया द्वारा संदर्शित कराने का प्रयास किया है, पूरे समाज का चरित्र चित्रण कर दिया है। कवि सोमदेव की मात्र एक रचना है- कथासरित्सागर एक आख्यान सग्रह। यहां कवि कथा-कथक है, उस परिवेश मे यदि समाज-सस्कृति अभिनिवेशगत प्रतिबिम्बित हो गयी तो हम इसे सयोग कहेगे।

यह निर्विवाद है कि तीनो ही कश्मीरी कवि समाज का विकृत स्वरूप ही वर्णित किया है। तीनो की ही दृष्टि मे सामाजिक विद्रुपण के मूल मे कायस्थ, वेश्या, एवं बनिया रहे है। कल्हण ने कायस्थ को प्रथमत. लिया है, बनिया एवं गणिका को प्रसंगत: ग्रहण किया है, क्षेमेन्द्र ने इन तीनो को समानत: तथा सोमदेव भी तीनो के योगदान स्वीकारते है। कल्हण ने सर्वप्रथम कायस्थ को राजकर्मचारी होने का उल्लेख किया। नृप शंकर वर्मन के राजत्वकाल मे वह गृहकृत्याधिपति के रूपमे पांच दिविरो के अधिकारी रूप मे नियुक्त किया (राज०/५/१६७ व १७६)। क्षेमेन्द्र ने इस दिविर को परिभाषित करते हुए लिखा है- वरदायक कलि ने कहा - दैत्यो का विष्णु द्वारा विनाश होने पर तू आकाश मे रोया (दिविरोदित) इसलिए दिविर नाम से विख्यात होगा। शरीर मे स्याही पोते, सेवाकाल मे चापलूस, लालची और ठग (नर्ममाला/१/२-३२) कथासरित्सागर मे कवि सोमदेव ने भी कायस्थ को प्रशासकीय लेखाधिकारी के रूप मे चित्रित किया है। उसको ग्रहण कर उसने मनोवांछित राज्यादेश तैयार कर दिया था। (लम्बक ७/तंरग ८/९१) कल्हण ने लिखा है, कि

मत्री तुग ने भद्रेश्वर (कायस्थ) को गृहकृत्य बना दिया। उसने देव, ब्राह्मण गौ एव अनाथो की वृत्तिया बन्द कर दी। अतिथि एव नृप के अन्यान्य कर्मचारी भी उसके कोपभाजन बने (राज०/७/३७-४३)।

मध्यकाल मे कश्मीर राज्य एक प्रकार के इन कायस्थो के ही नियत्रण मे रहा। समस्त राजकीय पदो पर कायस्थ आसीन रहे। कारण था उनका बुद्धि चातुर्य, चापलूसी, उत्कोच ग्रहण करना, इसका स्वभाव। वह राज्य मे गृहकृत्य के पद पर आसीन होता। एक प्रकार से गृह मंत्रालय ही उसके अधीन होता। जिसमे मन्दिरो, ब्राह्मणो, निर्धनो को दान पशुओ का चारा एवं कर्मचारियो का वेतन इत्यादि मद होते है। वह विभागीय कर्मचारी स्वयं नियुक्त करता था, अत उसके स्वच्छन्द-आचरण मे बाधक नही हो सकता था। कवि क्षेमेन्द्र ने नर्म माला तथा समयमातृका मे कायस्थ के राज्याधीन पदो एवं कार्यो का सविस्तार विवरण दिया है। क्षेमेन्द्र स्त्रियो के 'शृंगार प्रसाधन' पर भी अच्छा ध्यान दिया है-

शृंगार मे कर्पूर तथा चन्दन का विशेषत: उपयोग होता था, ललाट पर तिलक लगाने की परम्परा थी। चमेली के फूल की आकृति वाला तिलक 'श्रीखण्डोज्जवल मल्लिकातिलक' कहा जाता था। वेश्याए अपनी शृंगार मोती के आभूषण और धमिल्ल जूडा से करती थी। तत्कालीन समाज मे स्त्री-पुरुष दोनो ही आभूषण प्रिय रहे।

गणिकाए मेखला धारण करती थी। जिसमे नूपुर रहते। किंकिणी भी वेश्याओ का प्रिय गहना था। स्त्रियां शंखलतिका एवं विद्रुममालिका धारण करती। हेमबालक् बालिका जिसमे स्थूल त्रिगुणवाल की अर्थात पेच होते थे, प्रिय अलंकरण था। पुरुष कान मे बाला पहनते थे। हेमरथा तथा सजावर्त मणि-जटित कण्ढाभरण धारण किया जाता था।[१] सोमदेव ने भी कथासरित्सागर मे आभूषण-प्रियता का उल्लेख किया है उनके अनुसार स्त्री-पुरुष दोनो हाथो मे अगूठी पहनते थे।[२] जघन स्थल पर मेखला और कण्ठाभरण अर्थात् हार पहने जाते थे।[३] हाथ मे कंकण धारण करने[४] की परम्परा थी। बाहुओ पर केयूर धारण किया जाता था। नारिया ताटक, कर्णाभूषण पहिन ती थी।[५] इससे प्रतीत होता है कि कथासरित्सागर का वर्णन चरित्र और परिवेश सापेक्ष है और कवि क्षेमेन्द्र का अंकन सामान्य सामाजिक परम्परागत। महाकवि क्षेमेन्द्र ने गणिका-प्रवृत्ति का सूक्ष्म दिग्दर्शन कराया है। वह लिखते है- अत्यन्त चालाक, अपने कृत्रिम प्रेम से लोगो को लूटने वाली, वेश्याए अपने कपटा चार से कूबेर तक को भिखमगा बना देती है। कवि ने कला विलास के चतुर्थ सर्ग मे वेश्या की चौसठ कालाओ का भी अकन किया है - लुटेरी, तरगी और नीचो का संसर्ग करने वाली वेश्याएँ ढहाने वाली, तरगो से भरी, चपल और निम्नगा नदियो की तरह है, जैसे नदियाँ समुद्र मे मिलती है उसी तरह वेश्या के हृदय मे चौसठ कलाएँ बसती है यथा - (१) वेशकला, (२) नृत्यकला, (३) गीत कला, (४)

नजारे मारने की कला (बहुवीक्षण कला), (५) काम परिज्ञान कला, (६) फँसाने की कला (ग्रहण कला), (७) मित्रो के ठगने की कला (मित्रवचन कला), (८) पान कला, (९) केलि कला, (१०) सुरत कला, (११) आलिंगन कला, (१२) अतर रति कला, (१३) चुंबन कला, (१४) दूसरे को देखने की कला (पर कला), (१५) निर्लज्जता की कला, (१६) आवेश कला, (१७) घबडाहट दिखाने की कला (सभ्रम कला), (१८) ईर्ष्या दिखाने की कला, (१९) कलह की कला (कलिकेलि कला), (२०) रोने की कला, (२१) मान छोडने की कला (मान सक्षय कला), (२२) पसीना लाने की कला, (२३) भ्रम पैदा करने की कला, (२४) कंपकला, (२५) एकांत मे रहने की कला, (२६) शृगार पटार की कला, (२७) नेत्र निमीलन कला, (२८) नि स्पन्द कला, (२९) मरने की नकल साधने की कला, (३०) विरह से यार को वश मे करने की कला (विरहासहराग कला), (३१) कोप कला, (३२) अपने यार के मना करने अथवा उसकी भलाई के निश्चय की कला (प्रतिषेध निश्चय कला), (३३) खाला से लडने की कला, (३४) अच्छो के घर जाने की कला, (३५) तमाशा देखने की कला (उत्सवेक्षण कला, (३६) अच्छो के घर जाने की कला, (३७) जाति कला, (३८) केलि कला, (३९) चोर कला, (४०) राजसी ठाठ से रहने की कला, (४१) बड़प्पन दिखलाने की कला, (४२) अकारण निन्दा की कला, (४३) शैथिल्य कला, (४४) पेट दर्द या सिर दर्द के बहाने की कला,

(४५) उबटन लगाने की कला (अभ्यग कला), (४६) नीद लाने की कला, (४७) रजस्वला होने के बहाने सेकपडा दिखलाने की कला, (४८) रुखाई दिखलाने की कला , (४९) तेजी दिखलाने की कला, (५०) गले मे हाथ देकर निकाल बाहर करने की कला (गलहस्त कला), (५१) घर के दरवाजे पर ब्योडा चढा देने की कला, (५२) त्यक्त कामी का धन पाने की आशा से उसे वापस बुलाने की कला, (५३) दर्शन कला (५४) यात्राकला, (५५) स्तुति कला, (५६)सार्थ, उत्कट या मौज से घुमने की कला, (५७) हॅसी-मजाक की कला, (५८) घर के कामकाज की कला, (५९) वशीकरण के लिए मंत्र और औषधियो की जानकारी की कला, (६०) पेड लगाने की कला, (६१) बाल सॅवारने की कला (केश-रंजन कला, (६२) भिक्षुओ और तापसो को विविध प्रकार के दान देना, (६३) द्वीप घूमने की कला तथा इन सब कलाओ का अंत होने पर वेश्या (६४) कुटनी का कला साधती है।[६]

ये सारे गुण कवि क्षेमेन्द्र के स्वकल्पित और परिभाषित है किन्तु है समीचीन। क्षेमेन्द्र ने तत्कालीन समाज के विविध पक्षो पर प्रकाश डाला है। समाज का नैतिक पतन हो चुका था। चारित्रिक पावनता के दर्शन कथंचित ही सम्भव थे। स्त्रियो का चारित्रिक पतन अत्यन्त ही क्षोभकारक था। कला विलास मे चित्रण है- कुलटा स्त्रियाँ अपनी वंचक प्रवृत्ति द्वारा लोगो को ठगती और अपना काम साधती, 'वह कहती

कुछ और करती कुछ'। वे घर की खिडकियो से झाकती रहती। ऐसी कुलटाओ की कोटिमे थी- बृद्ध-भार्या, दासी, नियोगी भार्या, नाटक मे अभिनय शीला, स्त्रियॉ, कृपण भार्या, सार्थवाहमार्या, द्यूत एवं मद्यपान-व्यसनी स्त्रियॉ, युवकाभिलाषिणी इत्यादि।[७] स्त्री समाज के नैतिक पतन का ही चित्रण विशेष रूप से सोमदेव ने कथासरित्सागर मे भी किया- जार से संगमन के लिए स्त्रिया खिडकी से रस्सी की सहायता से अपनी सखी अथवा सेविकाओ से ऊपर अपने कक्ष मे बुला लेती थी। यद्यपि सोमदेव ने नारी चित्रण का पूर्ण प्रयास किया है- उन्होने राजकुमारियो, महारानियो, गणिकाओ, कुलटाओ सबको आख्यानुक्रम मे संदर्शित किया है, किन्तु क्षेमेन्द्र की आन्वीक्षिकी दृष्टि उनके पास कहॉ? क्षेमेन्द्र ने कायस्थ सुन्दरी का रूप अकित किया है- उस चोर लेखक की हवा से अहोरात्रि सुलगती आंच से जन रूपी वन को भस्म कर डाला। शीघ्र ही उस रईस के घर मे गहने, माला से सज्जित पान चर्वण मे तत्पर, दर्पण देखने वाली, राजमार्ग पर दृष्टि गड़ाने वाली, उससे अलग उसकी घर की रानी जैसा घमण्ड करने लगी। हार मुझे भार मालूम पडता है, स्वर्णकाताटंक मुझे प्रिय नही, मोटी सोने की करधनी (कमर सूत्रिका) को धिक्कार, केवल सुन्दर एकावली ही मेरे लिए प्रियकर है। उसकी इस अभिमान पूर्ण बात के किसको विस्मित नही करती। वाह रे काम मे सफलता प्राप्त कराने वाली भगवती स्याही, अहो, बलवती लक्ष्मी के लिए आश्रय-भूत लेखनी, जो टूटे

तथा जुडे हुए पत्थर के बर्तन मे कभी मागी गयी कच्ची शराब पीता था, वही आज चादी के प्याले मे कस्तूरिका मधु पीती है। महल पर बैठी उस कायस्थ सुन्दरी को नीचे से देखकर पडोसियो की लडकियो ने उसे एक कुलीन समझा।[८]

इस चित्रण मे तत्कालीन समाज को खोखला करने वाले वर्ग विशेष जो 'कायस्थ' संज्ञा से अभिहित होता रहा, उसके छल छद्म, पिशुनता, परद्रोह इत्यादि गुणो का आभास मिलता है। ऐसे असाधारण दुर्गुणो पर आकर यह कायस्थ किन-किन रूपो, किन-किन भेषो, किन-किन व्यापारो द्वारा पूरे समाज का नियन्ता बना हुआ था एवं किस प्रकार कश्मीर की शासन-सूत्र संचालन कर रहा, सबका, सम्यक् चित्रण कविवर क्षेमेन्द्र ने उपस्थित किया है- उसके प्रमुख रूप रहे- पिशुन, परिपालक, गजदिविर, लेखकोपाध्याय मार्गपति, ग्राम-दिविर, अधिकर्ण भट्ट, नगरादिकृत, सस्यपाल आदि।

नियोगी- इस शब्द का प्रयोग क्षेमेन्द्र ने अधीक्षक के अर्थ मे किया है। गृहकृत्य के अधीन सात नियोगी होते थे। गृहकृत्य की सभा मे वे उपस्थित रहते थे। सरदी मे लगान वसूली के समय उन्हे गहरी रकम मिलती थी।

पिशुन- चाक्रिक, पुंश्चलक, गृहकृत्य के अधीन भेदिये होते थे जिनका काम गृहकृत्य को मंदिरो इत्यादि मे इकट्ठी रकम की खबर देना होता था। ऐसे ही एक

भेदिये का क्षेमेन्द्र ने जीता-जागता चित्र खीचा है। उस नियोगी कार्यदूत के पैरो मे अशुभ था, मंदिर लूटने की कतरब्योत मे वह होशियार था। उसका इतना प्रभाव था कि गृहकृत्य ने स्वयं उठकर उसको स्थान दिया। उसकी कृपा से ही दूरस्थ होते हुए भी नियोगी हजारो आखे और कान वाले हो जाते थे। उसने आते ही विजयेश्वर, वाराह और मार्तण्ड के मंदिरो के इकट्ठी सपत्ति का ब्योरा बतलाया और परिचालक द्वारा उसके हरण की युक्ति बतायी।

परिपालक- यह अधिकारी गृहकृत्य का सहायक होता था। लगता है इसका चुनाव उसकी कठोरता पर ही निर्भर होता था। अपवादो से वह न डरने वाला, पातको ने नि·शंक, अपनी बुद्धि के बल ही प्रसिद्ध होता था। ब्रह्महत्या और गोहत्या उसके लिए कुछ न थी। उसकी गर्दन अकडी थी तथा निगाह टकटकी लगाए। वह मोटा ताजा और क्रोधी था। उसने पीले-हरे रग की पगडी (शिर·शाटक) और कुरता (कचुक) पहन रखा था। परिपालक बनने पर वह असंख्य प्यादो के साथ वसूलियाती (अधवेला) के लिए निकला। उसी आज्ञा से मंदिर लूट लिये गये तथा सिपाहियो ने घरो के दरवाजे तोड़कर, बरतन भांडे लेकर स्त्री और बच्चो को रोते बिलखते छोड दिया।

लेखकोपाध्याय- यह अधिकारी परिपालक का प्रधान लेखक होता था और

इस बात मे हमेशा प्रयत्नशील रहता था कि उसके मालिक का भला हो। उसके पास गुप्त कागज-पत्र रहते थे। लेखकोपाध्याय बनने के पहले वह भूखा-नंगा था। दुपट्टी फटी पुरानी थी, और सूखे जूते मगनी के थे। पर गरीब होने पर भी उसे अपनी मुंशीगीरी का गर्व था। पति के लेखकोपाध्याय बनने पर भी उसकी गरीब पत्नी ने गणेश की पूजा की। अपने मालिक के हुक्म से उसने जबर्दस्ती वसूलियाती के लिए हुक्मनामे लिखे। परिपालक को जो कुछ भी सामान की जरूरत पडती थी उसके लिए वह हुक्म जारी करता था। लेखपत्रो को पढते हुए वह अजीब तरह से मुँह बनाता था। वह हिसाब-किताब लिखने मे पटु होता था।

गंजदिविर- यह अधिकारी परिपालक के नीचे अर्थ विभाग का अध्यक्ष होता था। वह परिपालक के सामने आय-व्यय का छमाही चिट्ठा (शरत्षण्मास कल्पना) पेश करता था। आय मद्धे उसमे साढे चार लाख दिखलाया गया था। देव ब्राह्मणो की वृत्तियॉ वह काटने वाला था। उसे इस बात की शेखी थी कि जिन-जिन अधिकारियो ने उसका विरोध किया, उन्हे भाग जाना पड़ा। उसने परिपालक को सलाह दी कि किस तरह मंदिरो की सपत्ति हडप ली जाए क्योकि उसे पार्षद खाये जा रहे थे- उसने यह भी सलाह दी कि मंदिर मे जमा धान की खरीद बेच से भी परिपालक रकम पैदा कर सकता था।

मार्गपति अथवा व्यापारी- यह अधिकारी विषय अथवा परगने का अधिपति होता था। वह ग्रामो की देखभाल, उनके हिसाब-किताब का निरीक्षण तथा सडको की देखभाल करता था। वह दीवानी और फौजदारी मुकदमो को सुनने भी सुनता था। नगर मे वेश्याओ को लेकर जो खून-खराबी होती थी उसकी वह जांच पडताल करता था तथा वह बराबर नागरिको के चरित्र स्खलन पर भी निगाह रखता था। समय-समय पर उसे सैनिक कर्तव्य भी पालन करने पडते थे।

सस्यपाल- इस अधिकारी के क्या कर्तव्य होते थे, इसका तो ठीक पता नही चलता पर शायद यह फसलो की निगरानी करता था।

प्रासादपाल- लगता है यह देव मंदिर का कोई अधिकारी था, जिसके जिम्मे मदिर का प्रबंध होता था। ऐसे ही एक प्रासादपाल को मंदिर के गर्भ-गृह मे घुसा कर लूट लिये जाने का उल्लेख है। एक अधिकरण भट्ट का पहले ग्राम गणेश मदिर के प्रासादपाल होने का भी उल्लेख है।

दूत- क्षेमेन्द्र के काव्यो मे दूत शब्द का प्रयोग हरकारे के अर्थ मे हुआ है। अधिकरण भट्ट एक समय संधि-विग्रहिक कायस्थ चक्रिका (कार्यकारिणी) का एकसा मामूली दूत था, जो दंग देश मे अनेक बार आने-जाने से भट्ट बन बैठा। उसकी बॅधी कमर, फटा कंबल और धूल से सने पैर उसके मामूली पद के द्योतक थे।

दूत को हरकारे के अर्थ मे धावक भी कहते थे। कश्मीर के पर्वतीय प्रदेश मे रक्षा अट्टालको के सैनिक बचाव के लिए दगाधियो को नियुक्ति होती थी। घाटी मे इनका सबध स्थापित करने के लिए धावको की बडी आवश्यकता होती थी।

बंधनपाल- आधुनिक जेलर, चोरी का माल लेकर छिपाने पर सिपाहियो ने (शठचेटक) कंकाली को बॉधकर कारागृह (बंधन) मे बंद कर दिया, पर यहां उसने बंधन-पाल से मित्रता कर ली और एक दिन जब वह नशे मे बेहोश था, उसकी जीभ काटकर तथा अपनी बेडियॉ हटाकर वह भाग खड़ी हुई।

अदालती कागज-पत्र के संबंध मे भी कई शब्द आये है। धनधारणपत्रिका मे शायद मतलब भरण पोषण की रकम के संबंध का एकरारनामा था उज्जासपत्रिका मे, लगता है, दी जाने वाली रकम और वस्तुओ की पूरी फिहरिस्त वसूल करने वाले का नाम के सहित होती थी।

अश्वशालादिविर- यह अधिकारी घुड़साल का प्रबध करता था। खूब कागज पत्र लिखकर वह दिन भर लोगो को लूटता था और रात भर खूब सोकर सबेरे नहा कर दाह मिटाता था।

अदालत- समयमातृका मे एक जगह तत्कालीन दीवानी अदालत का चित्र खीचा गया है। कंकाली ने अपने पति अश्वशाला दिविर का घर बेचना चाहा।[१]

कवि क्षेमेन्द्र कायस्थ के उन गुणो का व्याख्यान भी अपनी मति-गति के अनुसार करना नही भूले है जो उनकी कुलागत गुणवत्ता सिन्धु से उच्चरित होकर उन्हे सर्वथा अमर किये हुए है-[१०]

मोह कायस्थो के मुख और लेख मे बसता है। उसके देखते ही भरी फसल नष्ट हो जाती है। जनता के लिए वह मानोकाल है। कायस्थ रूपी कालपुरुष लाठियो से लोगो को पीटकर हिसाब लगाते हुए भूर्जपत्र लिए हुए घूमते रहते है। कायस्थ की कलम से झरती हुई मसि की बूँदे मानो राज्यश्री के आसू हो। उसके कुटिल अंकन्यास लोगो को ठगते है तथा उसकी भूर्जपत्र पर लिखी टेढी-मेढी लिपि (कुटिलालिपि) मानो कुडली मारे सर्प की तरह लगती है। चित्रगुप्त का वह बुद्धिमान वशज रेखा मात्र से हेरफेर से सहित को रहित कर देता है। उसकी गुप्त कलाओ का कोई पता नही पा सकता। टेढी लिपि लिखना (वक्र विन्यास कला), गुप्त आकडो की जानकारी, हर बात मे दखल देना (सततप्रवेश), लोगो को अपने वश मे करना (संग्रहलोक), व्यय बढाना, लेने वाली वस्तु को पहले से ही बॉटने की ब्योत बॉधना (ग्राह्यपरिच्छेद कला), कर्ज लेना-देना (देयवनादान), बाकी निकालने की तरकीब (शेषस्यविवेककला) जसा-जत्था हजम करना (संकलितराशिसर्वभक्षणकला), उपज छिपाना (उत्पन्नगोपनकला), माल खराब कर देना और गायब कर देना (नष्टविशीर्णप्रदर्शन कला), खरीद कर खाने की नकल करना (क्रयमाणैर्भरणकला), योजनाए दिखलाकर

चिट्ठे मे घाटा दिखलाना (योजनाचार्यादिभि क्षयकला) तथा कागज-पत्र जला देना, कायस्थ की कलाएँ है।

कथासरित्सागर मे वणिक् अथवा बनिया की लोभ-प्रवृत्ति, धनार्जन-हेतु, उचित अनुचित माध्यमो, साधनो का आश्रय ग्रहण करने वाला एव निजकार्य सिद्धि के उपरान्त, सिद्धि मे सहायक बनने वालो को ही धोखा देना। आदि विश्वासघाती का उल्लेख हुआ है। समुद्रतल मे जहाज फस जाने पर जो जहाज का परिचालित करा सके, वह मेरी सम्पत्ति के अर्द्धभाग का अधिकारी बनेगा और मै उसके साथ अपनी पुत्री का व्याह भी कर दूंगा। घोषणा सुनकर जब वीरवर विदूषक ने स्वय को रस्सियो के सहारे समुद्रतल पर उतार, जहाज के अवरोधक विशालकाय पुरुष की जांघ तलवार से काटकर उस जहाज को मुक्त करा दिया तो उस विश्वासघाती वैश्य ने रस्सी काटकर उसे ही समुद्र मे डुबा दिया। यह कथमपि विस्मयकारक नही, यह तो वैश्य का सहज गुण-स्वभाव है।

हम संकेत कर चुके है कि राजतरगिणी का कल्हण राजसभा, राजकुल-सस्कृति के परिप्रेक्ष्य मे अपने समय का समाज देख और परख रहा है, कथासरित्सागर का कवि सोमदेव आख्यानान्तर्गत घटनानुघटना के परिवेशगत चारित्रिक आलोक मे समाज की छवि देखता है। किन्तु तीसरे कवि क्षेमेन्द्र ने अपनी पैनी स्वतंत्र दृष्टि से समाज-समग्र देखते दृष्टिगत होते है। उनकी दृष्टि-सीमा मे समाज के सभी पक्ष

साक्षात् होते है। वह प्रत्येक वर्ग के क्रिया-कलापो का अध्ययन करते है एव उसके निहितार्थ का सामाजिक शिव-अशिव के परिप्रेक्ष्य मे परिणामपरक भाव भूमि पर अवतरित करते है। उन्होने यदि समाज के नैतिक स्तर को विद्रूपण करने वाला विलासी एव विलासियो का चित्र उपस्थित है किया तो वह आर्थिक स्थिति को जर्जर करने वाले व्यापारियो-वणिको एव स्वर्णकारो की वृत्ति-प्रवृत्ति का भी आकलन करना विस्मृत नही करते। उन्होने अपनी कृति 'कलाविलास' मे कहा है- सत्व, प्रशय, और तप इत्यादि से विजित होकर लोभ ने व्यापारियो अर्थात बनियो के हृदय मे आश्रय ले लिया। इसीलिए वह लोभी हो गया और तदर्थ वह कार्य-अकार्य पर विचार नही करता क्षेमेन्द्र बनिये ने इस गुण को भली भाति परखा है —

"एक चतुर बेईमान बनिए के सबध मे 'कला विलास' से कुछ और सूचनाए मिलती है। वह खडिया हाथ मे लेकर हिसाब किताब करता था। जब जमा करने वाला देश यात्रा से लौटने पर अपनी जमा की हुई रकम वापिस मागता था तो वह उसे पहचानने से भी इन्कार कर देता था और कहता था- बता, तूने कब किसे कहां रकम दी। मेरे प्रसिद्ध कुल मे भला कोई रकम क्यो जमा करेगा और फिर जमा करके उसे छिपायेगा क्यो, खैर किस दिन तूने रकम जमा की, उस दिन का लेखा स्वयं देख ले। अरे, मेरे पुत्र के पास खाता रहता है। पुत्र के पास जाने पर वह उसे पिता के पास भेज देता था। राजा के पास फरियाद करने

पर भी बनिया रकम जमा करने की बात नकार गया।"

कवि क्षेमेन्द्र ने बनिया के प्रमुख गुणो का उल्लेख अपने देशोपदेश मे भी किया है- जमाधन डकार जाने वाला, छिपाने मे निपुण, ब्याज कलारूप रात्रि का यक्ष, धन पैदा करने का अभिलाषी बनिया गुरु के यहा जाता है, इसका अर्थ यह नही कि वह मोक्षार्थी है अपितु धनार्जन के लिए उपयुक्त युक्ति जानने का इच्छुक है। झाड से पडी धूल से धूसरित विकराल, गुड, शहद, धी तथा पीले तेल से सने हाथो वाला ग्राहक को ठगने वाला बनिया हाट मे पिशाच का साक्षात् रूप है। भीषण दुर्गन्धपूर्ण, धन बटोरने से गन्दे, हाट की जंजीर से बंधे, विधाता ने ऐसे बनिए को श्री गुरुनाथ के बहने का (माल खाने का) पनाला बनाया है।[११] बनिया याचको के लिए अधा, बंधक की रकम पर ब्याज से मुक्ति चाहने वालो के लिए बहरा और विक्रय वस्तु के लिए अल्प मूल्य लगाने वाले के लिए गुंगा होता है।[१२]

समाज की आर्थिक स्थिति के आधार रूप वाणिज्य व्यवसाय के दोनो स्तम्भ बनिया एवं सोनार की प्रवृत्ति-वृत्ति तथा प्रकृति का जितना सुन्दर चित्रण क्षेमेन्द्र की रचनाओ मे है। उसी स्तम्भ को कथासरित्सागर मे सम्यक् स्थान नही प्राप्त हो सका है। क्षेमेन्द्र ने सोनारो की बचक वृत्ति पर आन्वीक्षिकी दृष्टि डाली है-

वे सोना चुराने मे दक्ष होते है। सोना लेते समय उनका कस मद्धिम (मंदरुचि) बैठता है पर बेचते समय तेज (पुरुषकषा)। सोना तौलते समय वे चिकने (सोसस्नेह), चिपचिपे (स्वच्छ) मोम भरे (सिक्थक मुद्र), रेतीले (बालुका प्राय) बटखरे काम मे लाते है। वे दोपरती (द्विपुटा), खुली (स्फोटविपाका), सोना पी जाने वाली (सुवर्ण रसपायिनी), तमैली (सुताम्र) तथा सीसे और कांच चूर्ण ग्रहण करने वाली धरियां (मूषा) व्यवहार करते है। उनकी तराजू सोलह तरह की होती थी- यथा बाके काटेवाली (वक्रमुखी), नीची ऊंची (विषमपुटा), छेदीली(सुषिरतला), पारा भरी (न्यस्तपारदा), नरम पत्तर से बनी (मृद्वी), बगल कटी (पक्षकटा), गाठ पडी डोरी वाली (ग्रथिमती), मोम भरी, बहुत सी डोरियो वाली (बहुगुणा), आगे झुकी (पुरोनम्रा), हवा से डगमगाती (वातभ्राता), हल्की (तन्वी), भारी (गुर्वी) तेज हवा मे धूल इकट्ठा करने वाली (परुषवात धृतचूर्णा), निर्जीवा और सजीवा। उनकी पूके यथा धीमी, जोरदार, बीच से टूटती हुई, फुफकार भरी, तथा सी-सी भरी साभिप्राय होती है। वे छल्लेदार धुॅवासी, चटकती, चिनगारीदार तथा पहले से तॉबा मिली आग व्यवहार मे लाते है। प्रश्न करना, विचित्र बाते करना, भीतर की ओर दुपट्टे का पल्ला खीचना, सूरज देखना, हॅसना, मक्खी हॉकना, तमाशा देखना, अपनो से खिलवाड, जलपात्र तोड़ना, बार-बार बाहर जाना उनकी चेष्टाएं। सोना लूटने की उनकी निम्नलिखित जुगते है- गढे घाट वाले गहने को आग मे तपाना, हलकी गोबर की आंच मे लवणक्षार के गुनगुने लेप

से कृत्रिम वर्ण के प्रकाशन मे बाग्रता एक पलडे मे कान्त लौह लगाने से खाली तराजू भी भरी दिखलाने की कला, लाख भरते समय (प्रतिवद्वेजतुयोग्ये) चुपके से सोने के कण गायब करना, ओप (उज्जवलन) के समय पत्थर पर ज्यादा सोना घिस देना, एक समान विचित्र आभरणो को सफाई से बदल देना, चासनी मे मिलावट, खोने और चोरी जाने का बहाना, कमी पूरा करने की मॉग तथा सारा माल लेकर चंपत हो जाना।[१३]

अन्ततः कथासरित्सागर का समग्रत अनुशीलन हमे एक ऐसी सामाजिक संस्कृति का प्रतिबिम्ब उपस्थित करता है जिसमे नैतिक स्तर पतनोन्मुख, भव-भूति-संचयन, आत्मसुख-हेतु ही पूर्ण प्रयासोन्मुखी प्रवृत्ति के दर्शन होते है। तत्कालीन समाज मे नैतिक मान्यताएँ, परम्परां, आस्थाएँ विशृंखलित होती जा रही थी। सोमदेव ने समाज समग्र प्रतिच्छवित करने का प्रयास तो किया है किन्तु उनकी दृष्टि अशिव पक्ष पर ही विशेषत केन्द्रित प्रतीत होती है। सर्वाधिक पतन नारी-समाज का प्रतिबिम्बत है जो कदाचित उस काल की नियति बन गयी थी क्योकि ऐसे ही चित्रण समकालीन साहित्य राजतरगिणी तथा महाकवि क्षेमेन्द्र की कृतियो- कलाविलास, नर्ममाला, देशोपदेश, वृहत्कथामजरी मे भी है। हां लोकमानस मे इहलोक एव परलोक की कल्पना एवं उसकी आस्था जीवित रही। तीर्थ यात्रा और देवयात्राए की जाती थी यहां तक कि तीर्थ स्थानो मे प्राण विसर्जित करना श्रेयस्कर माना जाता था। यहां

तक कि शासक वर्ग भी इससे अछूता नही था। उनकी ऐसी अवधारणा की पृष्ठभूमि मे मनोवैज्ञानिक सत्य भी छिपा हआ है। नरेशो का अधिकांश जीवन कुप्रथाओ के पोषण, अन्यान्य और दुराचार के मध्य व्यतीत होता था। मन मे वे अशान्त रहते थे। किये हुए अनाचारो ने ग्लानि को जन्म दिया होगा। उससे मुक्ति के लिए उन्होने आत्महत्याओ को ही श्रयेस्कर समझा होगा। (कथा०/लम्बक २/ तरंग ४/१०६, लम्बक ५/ तरग २/ ३ तथा लम्बक ६/ तंरग ७/१४०)। कालान्तर मे कदाचित् उसने धर्म स्वीकृति ग्रहण कर ली होगी।[१४]

सोमदेव ने कथासरित्सागर मे सागर की विविध तरगो की भाति विविध प्रकृति, वृत्ति समन्वित पुरुष की तद्तदभावी कार्यकलापो के समुच्चय रूप को दृष्टि मे रखकर त्रिगुणात्मक सृष्टि-अनुकूल सत्, रज, तम गुणानुमी पुरुषो- सज्जन, दुर्जन, ओज एवं शौर्य भूमि वीरो आदि सबको चित्रित किया है। कथासरित्सागर इतना विशाल ग्रन्थ है कि उसमे जितनी सीमा तक रमे, उतनी ही भाति-गति से आलोडन करे तब कही किसी कथा सीप का उर्जस्थलबिम्ब प्रतिभास देगा। जिसकी रश्मि आभा मे समाज का शिव रूप अनावृत्त हो सकेगा। जैसे सभी पुरुष आंख वाले एवं कान वाले होते है, सबके मन का आवेग पृथक होता है। जिस प्रकार कुछ जलाशय गले तक जल वाले, कुछ कटि-पर्यन्त जल वाले और कुछ ऐसे होते है, जहा चाहे जितनी बार अवगाहन किया जाय, गहराई की अनुमिति असम्भव है- यह तो कथारूप

सरिताओ का आश्रयभूत, सिन्धु है फिर इतनी सहजता से उसका अवगाहन कर मुक्ता संचय कैसे सम्भव है, तात्पर्य यह है कि ग्रन्थ मे सकलित आख्यानो मे घटनानुक्रम-संगमित और परिवेशगत पात्र के चारित्रिक विश्लेषण मात्र से तत्कालीन समाज के शिवाशिव रूप का विनिश्चय नही किया जा सकता।

सन्दर्भ एवं पाद-टिप्पणी

१ क्षेमन्द्र और उनका समाज डॉ० मोती चन्द्र/पृष्ठ ६९-७०।

२ कथा०/लम्बक १८/ तरग /१६४

३ कथा०/लम्बक / तरग /२६

४ कथा०/लम्बक ४/ तरग १/९०

५ वही/लम्बक २/ तरग २/८२

६ क्षेमेन्द्र और उनका समाज डॉ० मोती चन्द/पृष्ठ १०६ कलाविलास/सर्ग ४

७ क्षेमेन्द्र और उनका काव्य . डॉ० मोती चन्द/पृष्ठ ५६-५८ (नर्म माला सर्ग १ और समय रात्रि का/ समय १)

८ क्षेमन्द्र और उनका समाज डॉ० मोती चन्द्र/पृष्ठ ५५ (कथा विलास /सर्ग ५/१-१८)।

९ क्षेमन्द्र और उनका समाज डॉ० मोती चन्द्र/पृष्ठ ५४।

१० वही/(नर्म माला/१४१-१५८)

११ वही/(कलाविलास/सर्ग २/३)

१२ क्षेमन्द्र और उनका समाज डॉ० मोती चन्द्र/पृष्ठ ६२-६३ (कलाविलास/सर्ग ८/४-१८)।

१३ कथासरित्सागर और भारतीय सस्कृति डॉ० एस एन प्रसाद/पृष्ठ १०९-११०।

मूल तथा सहायक ग्रन्थ

अर्थशास्त्र - कौटिल्य कृत (सम्पा ० एव अनु ०) आर० पी० कागले तीन खण्डो मे, बम्बई,१९६२, १९७२, १९६५, शामशास्त्री, मैसूर, १९२९

अभिज्ञानशाकुलन्तम् - कालिदास कृत (सम्पा ०) शारदा रञ्जन रे, कलकत्तास १९०८

अमरकोश - अमरसिह कृत (सम्पा ०) ए० डी० शर्मा तथा एन० जी० सरदेसाई पूना १९४९, गुरुप्रसाद शास्त्री, वाराणसी, १९५०

अभिधानचिन्तामणि - हेमचन्द्र कृत, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, १९६४ निर्णय सागर प्रेस, शक १८१८

अपराजितपृच्छा - भुवनदेव कृत-गायकवाड ओरिएण्टल सिरीज अ० ग्रें- १९५०

आख्याकमणिकोश - प्राकृत टेक्स्ट सिरीज, वाराणसी, १९६२,

अलकारसर्वस्व - रुय्यक-शारदा ग्रन्थमाला-१४

अग्निपुराण - अनु० आर० एल० मित्रा, तीन खण्ड, १८७६

आर्यञ्जुमूलकल्प - अनु०टी० गणपतिशास्त्री, त्रिवेन्द्रम, १९२०

आर्या शप्तशती - गोवर्धनाचार्य कृत, काव्यमाला, १८८६

औशनस स्मृति - स्मृतीनां समुच्चय मे सकलित (सम्पा०) वी० जी० आप्टे, आनन्दाश्रम सस्कृत ग्रथावली, ग्रन्थाङ्क ४८, पूना, १९२९

औचित्यविचारचर्चा - क्षेमेन्द्र कृत-काव्यमाला ६, बम्बई १८८६

कविकण्ठाभरण - क्षेमेन्द्र कृत-काव्यमाला ४ बम्बई १८८७, हरिदास सस्कृत सिरीज २४, बनारस, १९३३

कलाविलास - क्षेमेन्द्र कृत काव्यमाला प्रथम

कथासरित्सागर - सोमदेव कृत (अनु०) ट्वायनी, लदन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् , पटना

कथासरित्सागर (खण्ड १) हिन्दी अनुवादक श्री केदारनाथ शर्मा सारस्वत (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् , पटना, सन् १९६०)

कथासरित्सागर (खण्ड २) हिन्दी अनुवादक श्री केदारनाथ शर्मा सारस्वत बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, सन् १९६०

कथासरित्सगार (खण्ड ३) हिन्दी अनुवादक, श्री प्रफुल्ल चन्द्र ओझा 'मुक्त' (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना १९६३ सस्कृति सस्थापना, बरेली सन् १९६६)

कर्णसुन्दरी - बिल्हण कृत अनु० दुर्गाप्रसाद, के० पी० परब, बम्बई १८८८

कथाकोषप्रकरण - जिनेश्वरसूरी कृत, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, १९४९

कर्पूरमञ्जरी - राजशेखर कृत (अनु०) स्टेन कोनो, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी १९०१

कामसूत्र - वात्स्यायन कृत (सम्पा०) गोस्वामी दामोदर शास्त्री, बनारस, १९२९ अनु० देवदत्त शास्त्री, वाराणसी १९६४, सम्पा० दुर्गाप्रसाद, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, द्वितीय सस्करण

कादम्बरी - बाणभट्ट कृत निर्णयसागर प्रेस, सस्करण १९४८

कात्यायनस्मृति - व्यवहार पर (सम्पा०) पी० वी० काणे, बम्बई १९३३

कप्फिणाभ्युदय - शिवस्वामी कृत (अनु०) गौरीशकर, लाहौर, १९३७

कामन्दकनीतिसार - कामन्दक कृत (सम्पा०) टी० गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम १९२९ ज्वाला प्रसाद मिश्र, वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई, स० २००९

काव्यमीमांसा - राजशेखर कृत-गायकवाड ओरिएन्टल सिरीज

काव्यप्रकाश - मम्मट कृत-चौखम्बा सस्कृत सिरीज, १९२७

काव्यानुशासन - हेमचन्द्र कृत-खण्ड दो, श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई, १९३८

कीर्तिकौमुदी - सोमेश्वर कृत (अनु०) ए० वी० कथावटे, गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल बुक डिपो, बम्बई, १८८३

कृत्यकल्पतरु - लक्ष्मीधर कृत, दानकाण्ड (१९२४), तीर्थविवेचनकाण्ड (१९४२) राजधर्मकाण्ड (१९४३), गृहस्थकाण्ड (१९४४) मोक्षकाण्ड (१९४५) ब्रह्मचारीकाण्ड (१९४८), श्राद्धकाण्ड (१९५०) , नियतकलाकाण्ड (१९५३) गायकवाड ओरिएटल सिरीज, बडौदा

कुमारपालचरित - जयसिह कृत, निर्णयसागर प्रेस, १९२६

कूर्मपुराण - बिब्लियोथेका इण्डिका, एशियाटिक सोसाइटी ऑव बगाल, १९९० (सम्पा०) आनन्दस्वरूप गुप्त, काशिराजन्यास, वाराणसी, १९७२

कुट्टनीमतम् - दामोदरगुप्त कृत (अनु०) प० दुर्गाप्रसाद, काव्यमाला ३

खण्डनखण्डखाद्यम् - श्रीहर्ष कृत (अनु०) मदनमोहन लाल, बनारस, १९१७

गृहस्थरत्नाकर - चण्डेश्वर, कलकत्ता, १९२८

गीतगोविन्द - जयदेव, निर्णयसागर प्रेस, १९२९, दिल्ली १९५५

गौतम धर्म सूत्राणि - (अनु०) यू० सी० पाण्डेय, चौखम्बा सस्कृत सिरीज, १९६६

चतुर्वर्गसग्रह - क्षेमेन्द्र कृत-(अनु०) प० दुर्गाप्रसाद एव के० पी० परब, काव्यमाला ५,बम्बई १८८८

चतुर्वर्गचिन्तामणि - हेमाद्रि कृत-एशियाटिक सोसाइटी ऑव बगाल, १९२९

चौरपञ्चाशिका - बिल्हण कृत-(अनु०) एस० एन० तडपत्रिकर, ओरिएन्टल बुक एजेन्सी, १९४६

चारुचर्याशतक - क्षेमेन्द्र कृत-(अनु०) प० दुर्गाप्रसाद एव के० पी० परब, काव्यमाला-२, बम्बई १८८६

जातकमाला - आर्यशूर कृत (सम्पा०) पी०एल० वैद्य, बुद्धिस्ट सस्कृत टेक्स्ट्स, स० २१, दरभगा, १९५९

तत्रलोक - अभिनवगुप्त कृत खण्ड ८ (अनु०) प० मुकुन्दरामशास्त्री कश्मीर सिरीज ऑव टेक्स्टेस ऐण्ड स्टडीज, २३, बम्बई १९१८

तत्रवार्तिक - कुमारिल कृत, बनारस सस्करण

तत्त्वसग्रह - कमलशील कृत- गायकवाड ओरिएटल सिरीज, स० [illegible], १९३९

दशावतारचरित - क्षेमेन्द्र कृत (अनु०) प० दुर्गाप्रसाद एव के० पी० परब, काव्यमाला २६, बम्बई १८९१

दर्पदलन - क्षेमेन्द्र कृत-काव्यमाला ६ बम्बई १८९०

देशोपदेश - क्षेमेन्द्र कृत-(अनु०) प० मधुसूदन कौल शास्त्री, कश्मीर स० टे० सि० पूना, १९२३

दाकार्णव - अनु०एन० एस० चौधरी, कलकत्ता संस्कृत सिरीज, स० [illegible], १९३५

दशकुमारचरित - दण्डिन कृत (सम्पा०) एस० आर० काले बम्बई १९१७

दायभाग - जीमूतवाहन कृत द्वितीय सस्करण सिद्धेश्वर प्रेस, कलकत्ता १८९३

देशीनाममाला - हेमचन्द्र कृत (अनु०) आर० पिस्चल, बाम्बे सस्कृत सिरीज, स० [illegible] १९३८

दोहाकोश - सिद्ध सरहपाद कृत (अनु०) पी० सी० बागची, यूनिवर्सिटी ऑव कलकत्ता १९३५

गयाश्रय महाकाव्य - हेमचन्द्र कृत दो खण्डो मे, बाम्बे सस्कृत सिरीज, १९१५

देवलस्मृति - सम्पा० वी० जी० आप्टे, आनन्दाश्रय सस्कृत ग्रन्थावली ग्रन्थाङ्क ४८, पूना १९२९

ध्वन्यालोक - आनन्दवर्धन कृत, बम्बई १९१७

नर्ममाला - क्षेमेन्द्र कृत (अनु०) प० मधूसूदन कौल शास्त्री, कश्मीर सस्कृत टेक्स्ट्स सिरीज, पूना, १९२३

नीतिकल्पतरु - क्षेमेन्द्र कृत (अनु०) वी० पी० महाजन भण्डारकर ओरिएटल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना १९६५

नीलमतपुराण - अनु० वेद कुमारी जे० के० ऐकडमी ऑव आर्ट, कल्चर ऐण्ड लैन्वेज श्रीनगर, १९९८

नारदस्मृति - अनु० सैक्रेड बुक ऑव द ईस्ट जिल्द ३३ ऑक्सफोर्ड १८८९ (पुनर्मुद्रण) दिल्ली १९७७

नैषधीयचरितम् - श्रीहर्ष कृत-निर्णयसागर प्रेस, १९३३

नारदीयमनुसहिता - अनु० के० शम्बशिवशास्त्री, त्रिवेन्द्रम सिरीज, १९२९

नरसिह पुराण - बम्बई १९११

नाट्यशास्त्र - भरत कृत (टीका) अभिनवगुप्त, गायकवाड ओरिएटल सिरीज, स० [illegible]

नवसाहशाङ्कचरित - पद्मगुप्त कृत-बाम्बे सस्कृत सिरीज स० [illegible] १८९५

नीतिवाक्यामृत - सोमदेव कृत-मानिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, बम्बई १८८७-८८

नीतिसार - कामन्दक कृत (अनु०) आर० मित्रा, कलकत्ता १८८४

नीतिशतक - भर्तृहरि सिधी जैन ग्रन्थमाला, बम्बई १९४८

पञ्चतन्त्र - (सम्पा०) एस० पी० शास्त्री बनारस १९३८

पञ्चसिद्धान्तिका - वराहमिहिर कृत (सम्पा०) जी- थिबौत एव सुधारक द्विवेदी, वाराणसी १८८९

पराशरस्मृति - (सम्पा०) श्री वासुदेव, वाराणसी, १९६८

परमार्थसार - अभिनवगुप्त कृत (सम्पा० एव अनु०) एल० डी० बर्नेट-जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, १९१०

पद्मपुराण - सृष्टि काण्ड-आनन्दाश्रम सस्कृत सिरीज, पूना, १८९४

पराशरस्मृति - माधवाचार्य की टीका-एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल, कलकत्ता

परिशिष्टपर्वन - हेमचन्द्र कृत अनु० एच० जैकोबी, कलकत्ता, १८८३

पवनदूत - धोयी कृत सस्कृत साहित्य परिषद ग्रन्थमाला, स० १३ कलकत्ता, १९२६

प्रबन्ध चिन्तामणि - मेरुतुग कृत अनु० के० एस० शास्त्री, गवर्नमेन्ट पब्लिकेशन त्रिवेन्द्रम, १९३६, आर० एस० मिश्रा, बनारस, १९५५

प्राचीन गुजरात काव्यसग्रह - गायकवाड ओरिएटल सिरीज, स० ँछ्छ, १९२०

प्राकृत व्याकरण - हेमचन्द्र-बम्बई १९०५

पृथ्वीराजरासो - चन्दवरदाई कृत अनु० एम० वी० पाण्ड्रा एव श्याम सुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी ग्रन्थमाला सिरीज, बनारस, १९१३

पृथ्वीराजविजय - जयानक कृत (अनु०) जी० एच० ओझा एव सी० गुलेरी, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, १९४१, बडौदा, १९२०

पुरुष परीक्षा - विद्यापति कृत-दरभगा सस्करण

बोधिसत्त्वावदान कल्पलता - क्षेमेन्द्र कृत (अनु०) शरतचन्द्र दास एव प० एच० एम० विद्याभूषण बिब्लियोथेका इण्डिका, खण्ड प्रथम कलकत्ता, १८८८

बोधिसत्त्वभूमि - शङ्करभाष्य सहित (सम्पा०) अनन्ताकृष्ण शास्त्री, बम्बई, १९३८

ब्रह्माण्ड पुराण - (सम्पा०) जे० एल० शास्त्री दिल्ली, १९७३, बेकटेश्वर प्रेस, बम्बई १९१३

वृहज्जातक - वराहमिहिर कृत (सम्पा०) सीताराम झा, बनारस, १९३४ (सम्पा०) बी० वी० रमन, बगलौर, १९५७

वृहत्कथाशलोक सग्रह - बुधस्वामिन् कृत वी० एस० अग्रवाल गरा अध्ययन तथा पी० के० अग्रवाल गरा मूल पाठ सहित सम्पादित, वाराणसी, १९७४

वृहत्सहिता - वराहमिहिर कृत, भट्टोत्पल कृत भाष्य सहित (सम्पा०) सुधाकर द्विवेदी दो खण्डो मे, बनारस १८९५-९७

बृहस्पतिस्मृति - (सम्पा०) के० वी० आर० आयगर, गायकवाड ओरिएण्टल सिरीज, बड़ौदा, १९४१

बृहत्कथामञ्जरी - क्षेमेन्द्र कृत, काव्यमाला ६९,१९०१

वृहत्कथाकोश - हरिषेण कृत-सिधी जैन ग्रन्थमाला स० १७, ए० एन० उपाध्ये, बम्बई १९४३

भोजप्रबन्ध - बल्लाल कृत (अनु०) जे० एल० शास्त्री, पटना, १९६२

भविष्यपुराण - बेकटेश्वर प्रेस, बम्बई सस्करण

भागवतपुराण - गीता प्रेस, गोरखपुर वि० स० २०११

मत्स्यपुराण - (सम्पा०) हरिनारायण आण्टे, सैक्रेड बुक्स ऑव द हिन्दूज सिरीज, पूना, १९०७

मनुस्मृति - कुल्लूक कृत महाभाष्य (सम्पा०) प० गोपाल शास्त्री नेने वाराणसी १९७० भारुचि कृत भाष्य (सम्पा०) जी० एल० झा एशियाटिक सोसा० बगाल, १९३२

महाभारत - सम्पा० वी० एस० सुक्थकर एव एस० के० बेल्वल्कर, भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना। गीताप्रेस गोरखपुर (तृतीय सस्करण) स० २०२६

मार्कण्डेय पुराण - क्षेमराजच श्रीकृष्ण दास गरा प्रकाशित बम्बई १८६२

मुद्राराक्षस - विशाखदत्त कृत (सम्पा०) आर० के० ध्रुव, पूना १९३०

मूलसर्वास्तिवाद विनयवस्तु - (सम्पा०) एस० बागची, दो खण्ड, बुद्धिस्ट सस्कृत टेक्स्ट्स सख्या-१६, दरभगा, १९६७

मालिनीविजयोत्तरतम् - अनु० प० मधुसूदन कौल, कश्मीर सस्कृत टेक्स्ट्स सिरीज-३७ बम्बई १९२२

मानसार - अनु० पी० के० आचार्य, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, १९३३

मानसोल्लास - दो खण्ड,गायकवाड ओरिएण्टल सिरीज, १९२६ एव १९३९

मिताक्षरा - विज्ञानेश्वर कृत-निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९०९, सैक्रेड ब्रुक्स ऑव द हिन्दूज सिरीज, इलाहाबाद १९१८

महावीरचरितम् - भवभूति कृत (अनु०) काशीनाथ, बम्बई १९०१

महाराज पराजय - यशपाल-गायकवाड ओरिएण्टल सिरीज सं० नवम

यशस्तिलकचम्पू महाकाव्य - सोमदेव सूरी कृत (सम्पा० एव अनु०) सुन्दरलाल शास्त्री वाराणसी, १९६०

युक्तिकल्पतरु - भोज कृत-अनु० ईश्वरचन्द्रशास्त्री, कलकत्ता, १९१७

याज्ञवल्क्यस्मृति - मिताक्षरा भाष्य सहित (सम्पा०) नारायण शास्त्री, चौखम्बा सस्कृत सिरीज वाराणसी (अनु०) उमेश चन्द्र पाण्डेय (द्वितीय सस्करण) वाराणसी १९७७

योगयात्रा - वराहमिहिर कृत (सम्पा०) जे० एल० शास्त्री, लाहौर १९४४

रघुवश - कालिदास कृत (सम्पा०) के० पी० परब, बम्बई १८८२

राजतरङ्गिणी - कल्हण कृत (सम्पा०) विश्वबन्धु दो खण्ड, होशियारपुर, १९६३, १९६५

(अनु०) आर० एस० पण्डित, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद १९३५

(अनु०) दुर्गाप्रसाद बम्बई, १८९२-९६

(अनु०) रामतेज शास्त्री पाण्डेय, चौखम्बा सस्कृत सिरीज

(अनु०) एम० ए० स्टेइन, बम्बई १८९२, बेस्टमिनिस्टर १९००, अनु० रघुनाथ सिह

राजेन्द्रकर्णपूर - शम्भु कृत-काव्यमाला १

रामचरित - सन्ध्याकरनदी कृत-अनु० एच० जी० शास्त्री कलकत्ता १९१०

रम्भा मञ्जरीनाटिका - नवचन्द्रसूरी कृत-निर्णय सागर प्रेस, १८८९

रसरत्नसमुच्चय - वाणभट्ट कृत आनन्दाश्रम सस्कृत सिरीज पूना- स० १९

रसार्णव - अनु० पी० सी० रे० १९१०

रूपशतंकम् - वत्सराज कृत गायकवाड ओरिएण्टल सिरीज स० ८,१९१८

रतिरहस्य - कोकक-(अनु०) सदानन्द शास्त्री, लाहौर

लघुकाव्यसग्रह - क्षेमेन्द्र कृत (अनु०) आर्येन्द्र शर्मा, सस्कृत ऐकडमी सिरीज स० ७, हैदराबाद १९६९

लोकप्रकाश - क्षेमेन्द्र कृत (अनु०) प० जगद्धर जादू शास्त्री, कश्मीर सस्कृत टेक्स्ट्स सिरीज ७५, श्रीनगर १९४७

लटकमेलक - साखधर कृत निर्णय सागर प्रेस १८८९

लेखपद्धति - गायकवाड ओरिएण्टल सिरीज, १९२५

लीलावती - भाष्कराचार्य कृत (अनु०) प० राधाबल्लव, कलकत्ता, शक १८३५

लिङ्गपुराण - अनु० जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता १८८५

विक्रमाङ्कदेवचरित - बिल्हण कृत (अनु०) जी- ब्यूहलर, बाम्बे सस्कृत सिरीज स० १४, १८७५, प० विश्वनाथ शास्त्री भारगज, बनारस, १९६४

विष्णु पुराण - गीताप्रेस, गोरखपुर, वेकटेश्वर प्रेस सस्करण, बम्बई

वायु पुराण - (सम्पा०) आर० एल० मित्र, दो खण्ड, कलकत्ता, १८८०-८८, आनन्दाश्रम सस्कृत सिरीज, पूना, १९०५

विष्णुधर्मोत्तरपुराण - वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई १९१२

विवादरत्नाकर - चण्डेश्वर कृत , कलकत्ता १८८७

विविध तीर्थकल्प - मुनि जिनविजय बम्बई १९५६

वीसलदेव रासो - (अनु०) माता प्रसाद गुप्त एव अगरचन्द्र नहत, १९५३

वीर मित्रोदय - मित्रमिश्र कृत-चार खण्ड चौखम्बा सस्कृत सिरीज, बनारस १९१३

वामनपुराण - वेकटेश्वर प्रेस बम्बई १९२९

विजयन्ती - यादव प्रकाश कृत (अनु०) गुस्तव अपर्ट, गवर्नमेन्ट प्रेस, मद्रास, १८९३

वसन्तविलास - बालचन्द्र सूरी कृत-गायकवाड ओरिएण्टल सिरीज स० ञ्छ १९१७

शिशुपालवध - माध कृत- हिन्दी साहित्य सम्मेलन सस्करण वि० स० २००९

शुक्रनीति - अनु० बी० के० सरकार, पाणिनि ऑफिस, इलाहाबाद १९१४

श्रीकण्ठचरित - मखक कृत काव्यमाला ३ निर्णयसागर प्रेस १८८७

समयमातृका - क्षेमेन्द्र कृत-काव्यमाला सिरीज १० बम्बई १९२५

सेव्यसेवकोपदेश - क्षेमेन्द्र कृत-काव्यमाला २ बम्बई १८८६

सुवर्त्ततिलक - क्षेमेन्द्र कृत-काव्यमाला २, बम्बई १८८६

साधनमाला - खण्ड दो (अनु०) वी० भट्टाचार्य, गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज, स०ेथ्छ, १९२८

सदूक्तिकर्णामृत - श्रीधरदास कृत- द पजाब सस्कृत बुक डिपो, लाहौर १९३०

समरैच्चकहा - हरिभद्रसूरी कृत (अनु०) एच० जैकोबी कलकत्ता, १९२६

समरागणसूत्रधार - भोज कृत-टी० गणपतिशास्त्री, गायकवाड, ओरिएण्टल सिरीज स० ेन्न, १९२४

सन्देश रासक - अब्दुल रहमान कृत-सिधी जौन ग्रथमाला, १९४५

सङ्गीत रत्नाकर - सारङ्गदेव कृत-दो खण्ड आनन्दाश्रम सस्कृत सिरीज, १८९६

सिद्धान्तशिरोमणि - भाष्कराचार्य कृत नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १९११

स्कन्दपुराण - वेकटेश्वर प्रेस बम्बई

स्मृतिचन्द्रिका - देवाणभट्ट कृत (अनु०) जे० आर० घारपूरे, बम्बई १९१८

स्मृतिनामसमुच्चय - आनन्दाश्रम सस्कृत सिरीज स० ४८,१९०५ अनु० बी० जी० आप्टे, पूना १९२९

श्री भाष्य - रामानुज कृत निर्णयसागर प्रेस, १९१४

श्रीमद्देवीभागवतम् - प० पुस्तकालय काशी वि० स० २०१९

सुभाषितरत्नकोश - अनु० डी० डी० कौशाम्बी एव वी० वी० गोखले, हर्बर्ट यूनिवर्सिटी, प्रेस, १९५७

सूक्तिमुक्तावली - जल्हण कृत अनु० ई० कृष्णामाचार्य, बडौदा, १९३८

हरविजय - रत्नाकर अनु० प० दुर्गाप्रसाद एव के० पी० परब, काव्यमाला-२२, बम्बई १८९०

हरिवशपुराण - भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९६२

हर्षचरित - बाणभट्ट कृत (सम्पा०) पी० वी० काणे, बम्बई १९१८, (सम्पा०) ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, कलकत्ता, १८८२

हिन्दी काव्यधारा - अनु० राहुल साकृत्यायन, किताबमहल, इलाहाबाद, १९४५, हिस्ट्री ऑव द राइज ऑव द मुहम्डन पॉवर इन इण्डिया, खण्ड प्रथम ब्रिग्स जे, लागमैन्स एव ग्रीन, १८२९

त्रिशष्टिशलाका पुरुषचरित महाकाव्य - हेमचन्द्र कृत-श्री जैन आत्मानन्द शताब्दी सिरीज स० VII १९२६ एव VIII १९५०

विदेशी यात्रियो के विवरण

इलियट एच० एम० एव डाउसन जे० - हिस्ट्री ऑव इण्डिया ऐज टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्स ८ खण्डो मे लदन १८६६-७७, छ खण्ड अलीगढ से एम० हबीव के प्रस्तावना के साथ।

कास्मस इण्डिकोप्लस्टस - क्रिश्चियन टोपोग्राफी ऑव कास्मस (अग्रेजी अनु०) जे० डब्ल्यू० मैक्रिण्डल, इण्डियाच ऐज डेस्क्राइब्ड इन क्लासिकल लिटरेचर, वेस्टमिस्टर, १९०१

गाइल्स एच० ए० - द ट्रेवेल्स ऑव फाह्यान अथवा रिकार्डस ऑव बुद्धिस्टिक किग्डम्स, कैम्ब्रिज, १९२३

बील० एस० - (अनु०) ट्रेवेल्स ऑव फाह्यान ऐण्ड सुङ्गयुन, लदन १८६९

- बुद्धिस्ट रेकार्ड ऑव द वेस्टर्न वर्ल्ड (दो खण्ड) लदन १९०६, दिल्ली १९६०

- लाइफ ऑव ह्वेनसाग लदन १९११,दिल्ली, १८७३

महेश प्रसाद - सुलेमान सौदागर, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वि० स० १९७८

यूले०, सर हेनरी - द बुक ऑव सर मार्को पोलो (अनु० एव सपा०) सर हेनरीयूले दो खण्ड, लदन १९०३, १९२०

लेग्गे, जे० एच० - रेकार्ड ऑव बुद्धिस्टिक किग्डम्स बीइग ऐन एकाउन्ट ऑव द चाइनीज मॉन्क फाह्यान्स ट्रेवेल्स, ऑक्सफोर्ड १८८६

वाटर्स, टी० - ऑन युवान च्वाग्स ट्रेवेल्स इन इण्डिया (सम्पा०) टी० डब्ल्यू० राइस डेविड्स एव एस० डब्ल्यू० बुशेल दो खण्डो मे, लदन १९०४, १९०५

सचाऊ, ई० सी० - अलबेरुनीज इण्डिया, दो खण्ड, लदन १९१०

अभिलेख

आयगर, के० वी० एस० - साउथ इण्डियन इस्क्रिप्शस, दो खण्डो मे, मद्रास, १९२८, १९३३

उपाध्याय, वासुदेव - गुप्त अभिलेख, बिहार हिन्दी ग्रथ अकादमी, पटना, १९७४

गोयल, श्री राम - मौखरि-पुष्यभूति-चालुक्य युगीन अभिलेख, मेरठ, १९८७

थपलियाल, के० के० - इस्क्रिप्शस ऑव द मौखरीज, लेटर गुप्ताज, पुष्यभूतिज ऐण्ड यशोवर्मन् ऑव कन्नौज, दिल्ली, १९८५

पीटरसन, पी० - ए क्लेक्शन ऑव प्राकृत ऐण्ड सस्कृत इस्क्रिप्शस भावनगर आर्क्या डिपार्टमेन्ट, भावनगर, १९०५

फ्लीट, जे० एफ० - कार्पस इस्क्रिप्शनम इण्डिकेरम, खण्ड-३, इस्क्रिप्शस, ऑव द अर्ली गुप्ता किग्स ऐण्ड देयर सक्सेसर्स, वाराणसी, १९७०

भण्डारकर डी० आर० - 'इस्क्रिप्शस ऑव द अर्ली गुप्ता किग्स ऐण्ड देयर सक्सेसर्स' इपि० इण्डि०, खण्ड १९ एव २२ मे परिशिष्ट के रूप मे सकलित।

मिराशी, वी० वी० - कार्पस इस्क्रिप्शनम इण्डिकेरम, खण्ड-४ इस्क्रिप्शस ऑव द कलचुरि चेदि एरा, ओटकमण्ड, १९५५, खण्ड-५ इस्क्रिप्शस ऑव द वाकाटकाज, ओटकमण्ड, १९६३

मुखर्जी, आर० आर० एव - (सम्पा०) कार्पस ऑव बगाल इस्क्रिप्शस, कलकत्ता, १९६७ सरकार, डी०

मैती, एस० के० सी०- सेलेक्ट इस्क्रिप्शस बियरिंग ऑन इण्डियन हिस्ट्री ऐण्ड सिविलिजेशन प्रथम खण्ड (द्वितीय सशोधित सस्करण) कलकत्ता, १९६५ द्वितीय खण्ड-दिल्ली, १९८३

वोगेल, जे० - (सम्पा०) एन्टीविक्टीज ऑव द चम्बा स्टेट, कलकत्ता, १९११

अल्टेकर, ए० एस० - कैटलॉग ऑव द गुप्ता गोल्ट क्वायन्स इन द बयाना होर्ड, बम्बई, १९५४

- गुप्तकालीन मुद्राएँ, पटना, १९४५

- द क्वायनेज ऑव द गुप्ता इम्पायर, बनारस, १९५७

एलन, जे० - कैटलॉग ऑव द क्वायन्स ऑव द गुप्ता डायनेस्टीज ऐण्ड ऑव शशाङ्क, द किग ऑव गौड, लन्दन, १९१४

- कैटलॉग ऑव द क्वायन्स ऑव ऐन्शिएन्ट इण्डिया, लन्दन, १९३६

कनिघम, ए० - क्वायन्स ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डिया फ्राम दे अर्लिएस्ट टाइम्स डाउन टू दे सेवन्थ सेन्चुरी ए० डी०, लदन, १८९१

- क्वायन्स ऑव मेडिवल इण्डिया फ्राम दे सेवन्थ सेन्चुरी डाउन टू द मुहम्डन कन्क्वेस्ट, लन्दन, १८९४

गोपाल एल० - अर्ली मेडिवल क्वायन-टाइप्स ऑव नार्दर्न इण्डिया, स० १२

ब्राउन, सी० जे० - कैटलॉग ऑव द क्वायन्स ऑव गुप्ताज, मौखरीज, इटसेट्रा इन द प्राविन्शियल म्यूजियम, लखनऊ, इलाहाबाद, १९२०

- क्वायन्स ऑव इण्डिया, कलकत्ता १९२२

रैप्सन, ई० जे० - इण्डियन क्वायन्स, स्ट्रासबर्ग, १८९७

स्मिथ, वी० ए० - कैटलाग ऑव क्वायन्स इन इण्डिया म्यूजियम, कलकत्ता

पाण्डुलिपि-तालिका

- ए डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग ऑव मनुस्क्रिप्ट्स सस्कृत सिरीज इन द जैन भण्डार्स ऐट जैसलमेर, बडौदा, १९२३

- कैटचलाग ऑव मनुस्क्रिप्ट्स इन द इण्डिया आफिस लाइब्रेरी, लन्दन

- कैटलाग ऑव मनुस्क्रिप्ट्स इन द लाइब्रेरी ऑव पटना खण्ड ६ गायकवाड ओरिएटल सिरीज, स० [illegible]

- डिस्क्रिप्टिव कैटलाग ऑव मनुस्क्रिप्ट्स इन मिथिला-खण्ड प्रथम (अनु०) के० पी० जायसवाल एव ए० बनर्जी शास्त्री

अग्रवाल वी० एस० - हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, पटना, १९६४

- वृहत्कथाश्लेकसग्रह-ए स्टडी वाराणसी, १९७४

- भारत की मौलिक एकता, इलाहाबाद, वि० स० २०११

- इण्डिया ऐज नोन टू पाणिनि-यूनिवर्सिटी आव लखनऊ, १९५३

अल्टेकर ए० एस० - द पोजीशन ऑव वूमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन द्वितीय सस्करण बनारस १९५६

- स्टेट ऐण्ड गवर्नमेन्ट इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, बनारस, १९४९

- सोर्सेज ऑव हिन्दू धर्म, शोलापुर, १९५२

- द विलेज कम्यूनिटीज इन वेस्टर्न इण्डिया, ऑक्सफोर्ड प्रेस, १९२७

अशरफ के० एम० - लाइफ ऐण्ड कण्डीशन ऑव द पीपुल ऑव हिन्दुस्तान द्वितीय सस्करण, नई दिल्ली, १९७०

आप्टे, बी० एन० - सोशल ऐण्ड रिलिजस लाइफ इन दे गृह्यसूत्राज, बम्बई, १९५४

आयगर के० बी० आर० - आस्पेक्ट्स ऑव ऐन्सिएण्ट इण्डियन इकनॉमिक थाट, बनारस, १९३४

- सम आस्पेक्ट्स ऑव हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ एकार्डिग टु धर्मशास्त्र, बड़ौदा, १९५२

ओझा के० सी० - द हिस्ट्री ऑव फारेन रूल इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, इलाहाबाद, १९६८ हिस्टारिकल सर्वे ऑव नार्थ वेस्टर्न इण्डिया (ई० पू० ६००-७०० ई०) इ० वि० वि०

ओम प्रकाश - अर्ली इण्डियन लैण्ड ग्रान्ट्स ऐण्ड स्टेट इकॉनमी, इलाहाबाद, १९८८

ओम प्रकाश - फूड एण्ड ड्रिक्स इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, दिल्ली, १९६१

- प्राचीन भारत का सामाजिक एव आर्थिक इतिहास, दिल्ली, १९८६

'प्रसाद' डॉ० एस० एन० - कथासरित्सागर तथा भारतीय सस्कृत (चौखम्बा ओरियण्डलिया, वाराणसी, सन् १९७८)

'प्रसाद'ओझा, आदित्य - प्राचीन भारत मे सामाजिक स्तरीकरण (३००-६०० ई०) इलाहाबाद, १९९२

अच्छे लाल - प्राचीन भारत मे कृषि, वाराणसी, १९८०

उपाध्याय वी० - द सोशियो रिलिजस कण्डीशन्स ऑव नार्दर्न इण्डिया (७००-१२०० ई०) वाराणसी, १९६४

उपाध्याय, एन० - तात्रिक बौद्ध साधना और साहित्य, काशी वि० स० २०१५

उपाध्याय जी० पी० - ब्राह्माज इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, दिल्ली, १९७९

उपाध्याय, बी० एस० - गुप्तकाल एक सास्कृतिक अध्ययन, लखनऊ १९८९

- भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण, नई दिल्ली, १९४३
- इण्डिया इन कालिदास, इलाहाबाद, १९४७

उडगॉवकर, पद्या बी० - द पालिटिकल इन्स्टीट्यूशन्स ऐण्ड एडमिनिस्ट्रेशन ऑव नार्दर्न इण्डिया ड्यूरिंग मेडिवल टाइम्स (७५०-१२०० ई०) दिल्ली, १९६९

ईश्वरी प्रसाद - हिस्ट्री ऑव मेडिवल इण्डिया- इलाहाबाद, १९२५

इलियट सी० - हिन्दूइज्म, ऐण्ड बुद्धिज्म खण्ड घ-घ्छ, लदन, १९२१, १९६२

काणे, पी० वी० - हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र, ५ खण्डो मे, पूना, १९३०

- धर्मशास्त्र का इतिहास (हिन्दी अनु०) अर्जुन चौबे काश्यप, हिन्दी समिति, लखनऊ

कामेश्वर प्रसाद - सिटीज, क्राफ्ट्स ऐण्ड कामर्श अण्डर द कुषाणाज, दिल्ली, १९८१

कीथ, ए० बी० - ए हिस्ट्री ऑव सस्कृत लिटरेचर, दिल्ली, १९७३

- सस्कृत ड्रामा, ऑक्सफोर्ड, १९२४
- रिलिजन ऐण्ड फिलॉसफी ऑव द वेद, हार्बर्ट ओरिएटल सिरीज

कुप्पूस्वामी, बी० - सोशल चेन्ज, दिल्ली, १९७७

केतकर, ए० बी० - द हिस्ट्री ऑव कास्ट इन इण्डिया, न्यूयार्क, १९०९

कौन्जे, एडवर्ड - बुद्धिज्म, आक्सफोर्ड, १९५३

कौशाम्बी, डी० डी० - ऐन इन्ट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑव इण्डियन हिस्ट्री, बम्बई, १९५६

- ओरिजिन्स ऑव फ्यूडिलिज्म इन कश्मीर १८०४-१९५४
- द कल्चर ऐण्ड सिविलाइजेशन ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डिया इन हिस्टारिकल आउटलाइन, लन्दन १९६५

कौल, जी० एल० - कश्मीर देन ऐण्ड नाऊ श्रीनगर- १९७२

- कश्मीर थ्रू द ऐजेज, श्रीनगर, सातवा सस्करण, १९६३

कपूर, एम० एल० - इमीनेन्ट रूलर्स ऑव एन्शिएण्ट कश्मीर, दिल्ली, १९७५

- स्टडीज इन हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर ऑव कश्मीर, जम्मू, १९७६

काक, आर० सी० - ऐन्शिएण्ट मानुमेन्ट्स ऑव कश्मीर, लन्दन, १९३३, नई दिल्ली, १९७१

- एन्टीक्विटीज ऑव वसोली ऐण्ड रामनगर (जे० के० स्टेट), दिल्ली, १९७२
- हैण्डबुक ऑवद आर्क्यालॉजिकल ऐण्ड न्यूमिसमेटिक सेक्सन्स ऑव द श्री प्रतापसिह म्यूजियम, श्रीनगर, कलकत्ता, शिमला, १९२३

कोले, एच० एच० - इलुस्ट्रेशन्स ऑव ऐन्शिएण्ट बिल्डिंग्स इन कश्मीर, लदन, १८६९

कुमारस्वामी ए० के० - सती,लन्दन, १९१३

कॉलवॉर्न, आर० - फ्यूडलिज्म इन हिस्ट्री, प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी, प्रेस, १९५६

क्रूक, डब्ल्यू० - रिलिजन ऐण्ड फोल्कलोर ऑव नार्दर्न इण्डिया, आक्सफोर्ड, १९२५

कनिघम, ए० - एन्शिएण्ट ज्यॉग्राफी ऑव इण्डिया, अनु० रामकृष्ण द्विवेदी इलाहाबाद,

कगले, आर० पी० - द कौटिल्य अर्थशास्त्र, बम्बई, १९६५

कृष्णामाचारियर, एम० - हिस्ट्री ऑव क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर

क्रैमरिच, स्टेला - द आर्ट ऑव इण्डिया, लन्दन, १९५४

खोसला, सरला - गुप्ता सिविलाइजेशन, दिल्ली, १९८२

गागुली, डी० के० - द इम्पीरियल गुप्ताज ऐण्ड देअर टाइम्स, नई दिल्ली, १९८७

गुप्त, पी० एल० - द इम्पीरिलय गुप्ताज, खण्ड ६, वाराणसी, १९७४

गुप्ते, ब्री० ए० - हिन्दू हॉलीडेज ऐण्ड सेरेमानियल्स, कलकत्ता, १९१९

गहर, जे० एन० एव पी० एन० - बुद्धिज्म इन कश्मीर ऐण्ड लद्दाख, नई दिल्ली, १९५६

गियर्सन, जी० ए० - लिग्विस्टिक सर्वे ऑव इण्डिया, दिल्ली १९६८

गिब्स, एम० - फ्यूडल आर्डर, लन्दन, १९४९

गोपाल, लल्लनजी - द इकानामिक लाइफ ऑव नार्दर्न इण्डिया, वाराणसी, १९६५
- आस्पेक्ट्स ऑव हिस्ट्री ऑव एग्रीकल्चर इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, वाराणसी, १९८०

गोयल, एस० आर० - प्राचीन भारत का राचनीतिक इतिहास, इलाहाबाद, १९६९

गागुली, डी० सी० - हिस्ट्री ऑव द परमार डाइनेस्टी, ढाका, १९३३

गौड, मनोहरलाल - आचार्य क्षेमेन्द्र, अलीगढ, १९५५

घुर्ये, जी० एस० - कास्ट ऐण्ड क्लास इन इण्डिया, द्वितीय सस्करण, बम्बई, १९५७

- फेमिली ऐण्ड किन इन इण्डो-यूरोपियन कल्चर, बम्बई, १९६२
- इण्डियन कस्टम, बम्बई, १९५१

घोष, ए० - द सिटी इन अर्ली हिस्टारिकल इण्डिया, शिमला, १९७३

घोष, एन० एन० - अर्ली हिस्ट्री ऑव इण्डिया, इलाहाबाद, १९६०

घोषाल, यू० एन० - द एग्रेरियन सिस्टम इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९३०
- द बिगनिग ऑव इण्डियन हिस्ट्रोग्राफी ऐण्ड अदर एसेज, कलकत्ता, १९४४
- हिन्दू पॉलिटिकल थियरी, मद्रास, १९२७
- हिन्दू ऑव हिन्दू पब्लिक लाइफ, कलकत्ता, १९४५
- स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर, १९५७
- कन्ट्रीब्यूशन्स टू द हिस्ट्री ऑव द हिन्दू रेवेन्यू सिस्टम, कलकत्ता, १९२९

घोष, बी० के० - हिन्दू लॉ ऐण्ड कस्टम्स, कलकत्ता, १९२८

चकलादार, एच० सी० - सोशल लाइफ इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता , १९३०

चक्रवर्ती, हरिपद - इण्डिया ऐज रिफ्लेक्टेड इन द इस्क्रिप्शश ऑव गुप्ता पीरियड दिल्ली, १९७८
- ट्रेड ऐण्ड कामर्श इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९६६

चट्टोपाध्याय, ए० के० - स्लेवरी इन इण्डिया, कलकत्ता

चट्टोपाध्याय, बी० डी० - आस्पेक्ट्स ऑव रूरल सेटेलमेन्ट्स ऐण्ड रूरल सोसाइटी इन अर्ली मिडीवल इण्डिया, कलकत्ता, १९९०

चट्टोपाध्याय, एस० - अर्ली हिस्ट्री ऑव नार्थ इण्डिया, कलकत्ता, १९५८
- सोशल लाइफ इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९६५

चानना, देवराज - स्लेवरी इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, दिल्ली, १९६०

चौधरी, आर० के० - व्रात्यज इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, वाराणसी, १९६४

चौधरी, एस० बी० - एथनिक सेटेलमेट्स इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९६५

चक्रवर्ती, पी० सी० - द आर्ट ऑव वार इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, ढाका, १९४९

चक्रवर्ती, सी० - ए स्टडी ऑव हिन्दू सोशल पॉलिटी, कलकत्ता, १९५४

चन्द्रप्रभा - हिस्टोरिकल महाकाव्याज इन सस्कृत, दिल्ली, १९७६

चटर्जी, जे० सी० - कश्मीर शैविज्म, खण्ड छ्, श्रीनगर, १९१४

चतुर्वेदी, परशुराम - वैष्णव धर्म, इलाहाबाद, १९५३

चौधरी, जी० सी० - पालिटिकल हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया फ्राम सोर्सेज, अमृतसर १९५३,

जयचन्द्र - भारत भूमि और उसके निवासी

जायसवाल, के० पी० - हिन्दू पालिटी (द्वितीय सस्करण) बगलौर, १९४३

- हिस्ट्री ऑव इण्डिया, लाहौर, १९३३

जायसवाल, सुवीरा - द ओरिजिन ऐण्ड डेवलपमेट ऑव वैष्णविज्म, दिल्ली, १९६७

जॉली, जे० - हिन्दू लॉ ऐण्ड कस्टम्स, कलकत्ता, १९२८

जैन, के० सी० - प्राचीन भारतीय सामाजिक और आर्थिक सस्थाएँ, म० प्र०, १९७६

जैन, जे० सी० - लाइफ ऐज डेपिक्टेड इन जैन कैनान्स, बम्बई, १९४७

जैन, पी० सी० - लेबर इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, नई दिल्ली, १९७१

- सोशियो इकनॉमिक एक्सप्लोरेशन ऑव मिडिवल इण्डिया, दिल्ली, १९७६

जोशी, लालमनि - स्टडीज इन बुद्धिस्टिक कल्चर ऑव इण्डिया, दिल्ली, १९७६

जोशी, एल० डी० - द खश फेमिली लॉ, इलाहाबाद, १९२९

झा, डी० एन० - ऐन्शिएण्ट इण्डिया ऐन इट्रोडक्टरी आउटलाइन, दिल्ली, १९७७

- स्टडीज इन अर्ली इण्डियन इकनॉमिक हिस्ट्री, दिल्ली, १९८०

- (सम्पा०)- फ्युडल सोशल फार्मेशन इन अर्ली इण्डिया, दिल्ली, १९८७

- रेवेन्यू सिस्टम इन पोस्ट-मौर्यन ऐण्ड गुप्ता ऐज, कलकत्ता, १९७६

ट्यूमिन, एम० एम० - सोशल स्टेटीफिकेशन, दिल्ली, १९७८

टेलर हेनरी आसवॉर्न - द मिडिवल माइन्ड, लन्दन, १९११

टाइटस एम० डी० - इण्डियन इस्लाम, लन्दन, १९३०, मद्रास १९३८

टॉड जेम्स - ट्रेवल्स इन वेस्टर्न इण्डिया, एशियाटिक सोसाइटी बगाल, १८३९

टॉयनबी - ऐन हिस्टॉरियन्स एप्रोच टु रिलिजन, आक्सफोर्ड, १९५६

ठाकुर, विजयकुमार - अरबनाइजेशन इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, नई दिल्ली, १९८१

ड्रयू, एफ०	-	ए ज्यॉग्रफिकल एकाउन्ट ऑव जम्मू ऐण्ड कश्मीर टेरिटरीज, लन्दन, १८७५
डाउसन, जे०	-	क्लासिकल डिक्शनरी ऑव हिन्दू माइथोलाजी, रिलिजन, ज्यॉग्रफी, हिस्ट्री ऐण्ट लिटरेचर, लन्दन, १९५०
डागे, एस०ए०	-	भारत आदिम साम्यवाद से दास प्रथा तक का इतिहास, दिल्ली, १९७८
डेरेट, जे० डी० एम०	-	रिलिजन, लॉ ऐण्ड स्टेट इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, लन्दन, १९६८
डे, एस० के०	-	अर्ली हिस्ट्री ऑव द वैष्णव फेथ ऐण्ड मूवमेन्ट इन बगाल, कलकत्ता १९४२
डे, एन० एल०	-	ज्यॉग्रफिकल डिक्शनरी ऑव ऐन्शिएण्ट ऐण्ड मेडिवल इण्डिया
ताराचन्द्र	-	इन्फ्लुएन्स ऑव इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर, इलाहाबाद
तिवारी, गौरीशकर	-	उत्तरी भारत के ब्राह्मणो का सामाजिक अध्ययन, फैजाबाद, १९८२
थपलियाल, उमाप्रसाद	-	फारेन इलीमेन्ट्स इन ऐन्शिएण्ट इण्डियन सोसाइटी, नई दिल्ली, १९७९
थपलियाल, के० के०	-	स्टडीज इन ऐन्शिएण्ट सील्स, लखनऊ, १९७२
थापर, रोमिला	-	ऐन्शिएण्ट इण्डियन सोशल हिस्ट्री, नई दिल्ली, १९७८
	-	हिस्ट्री ऑव इण्डिया, खण्ड ६, पेलिकन, १९७२
थॉमसन, जे० डब्ल्यू०	-	ऐन इकनॉमिक ऐण्ड सोशल हिस्ट्री ऑव मिडिल ऐज, न्यूयार्क, १९२८
दत्त, बी० एन०	-	स्टडीज इन इण्डियन सओशल पॉलिटी, कलकत्ता, १९४४
दत्त, आर० सी०	-	लेटर हिन्दू सिविलाइजेशन, कलकत्ता, १९६५
दत्त, एन० के०	-	ओरिजिन ऐण्ड ग्रोथ ऑव कास्ट इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९६५
दण्डेकर, आर० एन०	-	हिस्ट्री ऑव गुप्ताज, पूना, १९४१
दास, एस० के०	-	इकनॉमिक हिस्ट्री ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डिया,इलाहाबाद, १९८०
	-	शक्ति ऑर डिवाइन पॉवर, कलकत्ता, १९३४
दास, मोतीलाल	-	हिन्दू लॉ ऑव बेलमेन्ट
दासगुप्ता, एस० एन० तथा डे, एस० के०	-	ए हिस्ट्री ऑव सस्कृत लिटरेचर, कलकत्ता, १९४७

दास, एस० सी० - इण्डियन पण्डित्स इन द लैण्ड ऑव स्नो, १८९३

दास, एस० के० - द एजुकेशनल सिस्टम ऑव द ऐन्शिएण्ट हिन्दूज, कलकत्ता, १९३०

दासगुप्ता, एस० एन० - हिस्ट्री ऑव इण्डियन फिलॉसफी, कैम्ब्रिज, १९४०

दाते, जी० टी० - द आर्ट ऑव वार इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, बम्बई, १९२९

दीक्षितार, के० वी० आर० - वार इन ऐन्शिएण्ट इण्डियन, १९४८

दीक्षितार, वी० आर० आर० - हिन्दू एडमिनिस्ट्रेटिव इन्स्टीट्यूशन्स, मद्रास, १९२९

दीक्षितार, एस० के० - द मरद गॉडेस, पूना

दुबे, एस० एन० - क्रास करेन्ट्स इन अर्ली बुद्धिज्म, नई दिल्ली, १९८०

दुबे, लालमणि - अपराजितपृच्छा ए क्रिटिकल स्टडी, इलाहाबाद, १९८७

दुबे, हरिनारायण - पुराण समीक्षा, इलाहाबाद, १९८४

देवहूति, डी० - हर्ष-ए पोलिटिकल स्टडी-आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रे, १९७०

धर, एस० एन० - रिलिजस इन्स्टीट्यूशन्स ऐण्ड कल्ट्स इन द डेकन, दिल्ली, १९७३

नदवी, एस०एस० - अरब-भारत के सम्बन्ध, इलाहाबाद, १९३०

नाग, कालिदास - ग्रेटर इण्डिया, बम्बई, १९६०

निगम, एस० एस० - इकनॉमिक आर्गनाइजेशन इन ऐन्शिएण्ट, इण्डिया, दिल्ली, १९७५

नियोगी, पुष्पा - कन्ट्रीब्यूशस टू द इकनॉमिक हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया, कलकत्ता १९६२

- ब्रह्मनिकल सेटेलमेन्ट्स इन डिफरेन्ट सब-डिवीजन्स ऑव ऐन्शिएण्ट बगाल, कलकत्ता, १९७६

नियोगी, रोमा - हिस्ट्री ऑव द गाहडवाल डाइनेस्टी, कलकत्ता, १९५९

निजामी, के० ए० - सम आस्पेक्ट्स ऑव रिलिजन ऐण्ड पॉलिटी इन इण्डिया ड्यूरिंग द थर्टीन्थ, सेचुरी, १९६१

नेगी, जे० एस० - सम इण्डोलॉजिकल स्टडीज खण्ड ६ इलाहाबाद, १९६९

प्रभु, पी० एच० - हिन्दू सोशल ऑर्गनाइजेशन, बम्बई, १९५४

पणिक्कर, के० एम० - इण्डिया ऐण्ड द इण्डियन ओशन्, लन्दन, १९५९

पार्जिटर, एफ० ई० - ऐन्शिएण्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडिशस, दिल्ली, १९७२

पाण्डेय, ए० बी० - पूवमध्यकालीन भारत का इतिहास, कानपुर, १९५४

पाण्डे, अनुपा - ए हिस्टारिकल कल्चरल स्टडी ऑव द नाट्यशास्त्र ऑव भारत, जोधपुर, १९९१

पाण्डे, वीणापाणि - हरिवशपुराण का सास्कृतिक विवेचन, वाराणसी, १९६०

पाण्डे, सुस्मिता - बर्थ ऑव भक्ति इन इण्डियन रिलिजन्स ऐण्ड आर्ट, दिल्ली, १९८२ समाज, आर्थिक व्यवस्था एव धर्म, भोपाल, १९९१

पाण्डे, जी० सी० - द मीनिग ऐण्ड प्रोसेस ऑव कल्चर, आगरा, १९७२

- फाउन्डेशस ऑव इण्डियन कल्चर, खण्ड ६

- डाइमेन्शस ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डियन सोशल हिस्ट्री, नई दिल्ली, १९८४

- बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, लखनऊ, १९६३

- भारतीय परम्परा के मूल स्वर, नई दिल्ली-१९८१

- स्टडीज इन दो ओरिजिन्स ऑव बुद्धिज्म, इलाहाबाद, १९५७

पाण्डेय, विमल चन्द्र - भारत वर्ष का क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर (मोती लाल, बनारसी दास, वाराणसी, १९७४)

पाण्डेय, चन्द्रदेव - साम्ब पुराण का सास्कृतिक अध्ययन, इलाहाबाद, १९८६

पाण्डेय, जयनारायण - पुरातत्त्व विमर्श, इलाहाबाद, १९८८

- भारतीय कला एव पुरातत्त्व, इलाहाबाद, १९८९

पाण्डेय, एल० पी० - सन वर्शिप इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, दिल्ली, १९७१

पाण्डेय, आर० बी० - हिन्दू, सस्काराज, बनारस, १९४९

पाण्डेय, के० सी० - अभिनवगुप्त ऐन हिस्टारिकल ऐण्ड फिलॉसफिकल स्टडी, बनारस, १९३६

पण्डित, एम० पी० - स्टडीज इन द तत्राज ऐण्ड द वेद, मद्रास, १९६४

पटवर्धन, सी० एन० - हिस्ट्री ऑव एजुकेशन इन मेडिवल इण्डिया।

पालिट, डी० आर० - कल्चरल हिस्ट्री फ्राम द वायु पुराण, दिल्ली, १९७३

पाठक, पी० एन० - सोसाइटी ऐण्ड कल्चर इन अर्ली बिहार, पटना, १९८८

पाठक, वी० एस० - ऐन्शिएण्ट हिस्टोरियन्स ऑव इण्डिया, बम्बई, १९६६

- स्मार्त रिलिजस ट्रेडिशन, मेरठ, १९८७

- शैव कल्ट्स इन नार्दर्न इण्डिया, वाराणसी, १९६०

पाठक, हलधर - कल्चरल हिस्ट्री ऑव द गुप्ता पीरियड, दिल्ली, १९७८

पाठक, एस० - चार्वाक दर्शन की शास्त्रीय समीक्षा, वाराणसी, १९६५

प्राणनाथ - ए स्टडी इन द इकानामिक कण्डीशन ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डिया, लन्दन, १९२९

पॉवेल, बेडेन - द इण्डियन विलेज कम्यूनिटी, लन्दन १८९६

पारसन्स, टी० - एसेज इन सोशियोलॉजिकल थियरी, दिल्ली, १९७५

पुरी, बी० एन० - द हिस्ट्री ऑव द गुर्जर-प्रतिहार, बम्बई, १९५७

पीथवाला, एम० बी० - एन इन्ट्रोडक्शन टू कश्मीर इट्स ज्यॉग्रफी ऐण्ड ज्यालाजी, कराजी, १९५३

परक्यूहर, जे० एन० - आउट लाइन ऑव रिलिजस लिटरेचर ऑव इण्डिया, ऑक्सफोर्ड, १९२०

फिक, रिचर्ड - सोशल आर्गनाइजेशन इन नार्थ-ईस्ट इण्डिया इन बुद्धाज टाइम, वाराणसी, १९७२

फिनले, एम० आई० - एन्शिएण्ट स्लेवरी ऐण्ड मार्डर्न आईडियोलॉजी, लन्दन, १९८०

फिलिप्स, सी० एच० - हिस्टोरियन्स ऑव इण्डिया, पाकिस्तान ऐण्ड सीलोन, न्यूयार्क, १९७६

बागची, पी०सी० - स्टडीज इन द तत्राज, कलकत्ता, १९३९

बाजपेयी, के० डी० - भारतीय व्यापार का इतिहास, मथुरा, १९५१

बनर्जी, एन० आर० - द आइरन ऐज इन इण्डिया, नई दिल्ली, १९६५

बनर्जी, जे० एन० - डेवपलमेट ऑव हिन्दू आइकनोग्राफी, कलकत्ता,- १९६५

बनर्जी, आर० डी० - द ऐज ऑव द इम्पीरियल गुप्ताज, वाराणसी, १९७०

बनर्जी, एस० सी० - कल्चरल हेरिटेज ऑव कश्मीर, कलकत्ता, १९६५

बनर्जी, पी० - ए हिस्ट्री ऑव इण्डिया, कलकत्ता, १९६४

बट्स, आर० एफ० - ए कल्चरल हिस्ट्री ऑव एजुकेशन, लन्दन, १९४७

बर्नियर, एफ० - ट्रेवेल्स इन द मुगल इम्पायर, लन्दन, १९१६

बमजाई, पी० एन० के० - ए हिस्ट्री ऑव कश्मीर, दिल्ली, १९७३

बन्द्योपाध्याय, एन० सी० - इकनॉमिक लाइफ ऐण्ड प्रोग्रेस इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९२५

ब्लट - द कास्ट सिस्टम इन नार्दर्न इण्डिया, दिल्ली, १९६९

ब्यूहलर, जी० - द रिलिजन्स ऑव इण्डिया, लन्दन, १९२१, वाराणसी, १९६३

बाजपेयी, रञ्जना - सोसाइटी इन इण्डिया, दिल्ली, १९९२

बाशम, ए० एल० - द वन्डर दैट वाज इण्डिया, लन्दन, १९५४

- हिस्ट्री ऐण्ड डाक्ट्रिन्स ऑव द आजीविकाज, दिल्ली, १९८१

- कल्हण ऐण्ड हिज क्रोनिकल, शोधपत्र, १९५६

ब्रॉन, सी० जे० - क्वायन्स ऑव इण्डिया, द हेरिटेज ऑव इण्डिया सिरीज, १९२२

ब्राउन, पर्सी - इण्डियन आर्किटेक्चर, बम्बई

बूच, एम० ए० - इकनॉमिक लाइफ इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, बडौदा, १९२४

बेनी प्रसाद - स्टेट इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, इलाहाबाद, १९२८

बोस, ए० एन० - सोशल ऐण्ड रुरल इकॉनमी ऑव नार्दर्न इण्डिया, कलकत्ता, १९६७

बोस० एन० के० - द स्ट्रक्चर ऑव हिन्दू सोसाइटी, नई दिल्ली, १९७५

बोर, फणीन्द्रनाथ - द इण्डियन टीचर्स इन चाइना, मद्रास, १९२३

बील, एस० - सी-यु-की-लन्दन, १८८४

लाइफ ऑव ह्वेनसाग- लन्दन १९१४

बुद्ध प्रकाश - स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, आगरा, १९६२

भट्टाचार्य, एच० - द कल्चरल हेरिटेज ऑव इण्डिया खण्ड छ- कलकत्ता, १९५३-६२

भट्टाचार्य, एस० सी० - सम आस्पेक्ट्स ऑव इण्डियन सोसाइटी, कलकत्ता, १९७८

भण्डारकर, आर० जी० - वैष्णविज्म, शैविज्म ऐण्ड माइनर रिलिजस सिस्टम, पूना, १९२८

- वैष्णव, शैव तथा अन्य धार्मिक मत, वाराणसी, १९६७

- रिपोर्ट इन सर्च ऑव सस्कृत मनुस्क्रिप्ट्स, बम्बई, १८९७

भण्डारकर, डी० आर० - सम आस्पेक्ट्स ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डियन पॉलिटी, कलकत्ता, १९२९,

ममफोर्ड, लेविस - द सिटी इन हिस्ट्री, लन्दन, १९६१

मजूमदार आर० सी० एव माधवनन्द - ग्रेट वूमेन ऑव इण्डिया, अल्मोडा, १९५३

मजूमदार, ए० के० - राजतरगिणी ऐज द सोर्सेज ऑव द हिस्ट्री ऑव कश्मीर, बम्बई, १९५६

मजूमदार, बी० के० - द मिलिटरी सिस्टम इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया,कलकत्ता, १९५५,१९६०

मजूमदार, आर० सी० - कारपोरेट लाइफ इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९२२

मजूमदार, आर० सी० एव० ए० डी० पुलास्कर - हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर ऑव द इण्डियन पीपुल-खण्ड II VI बम्बई १९६०

मजूमदार, एस० एन० - (सम्पा०) कनिघम्स ऐन्शिएण्ट ज्यॉग्रफी ऑव इण्डिया, कलकत्ता, १९२४

मजूमदार, डी० एन० - रेसेज ऐण्ड कल्चर्स ऑव इण्डिया, बम्बई, १९६१

मजूमदार, बी० पी० - द सोशियो-इकनॉमिक हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया, कलकत्ता, १९६०

मलूनी - हिस्ट्री ऑव कश्मीर-क्रिश्चियन लिटरेरी सोसाइटी फार इण्डिया, १९२१

मार्क्स, कार्ल - द पावर्टी ऑव फिलासफी, मास्को, १९७३

मिश्र, के० सी० - ट्राइब्स इन द महाभारत ए सोशियो कल्चर स्टडी, नई दिल्ली, १९८७

मिश्र, रमानाथ - प्राचीन भारतीय समाज, अर्थव्यवस्था एव धर्म (वैदिककाल से ३०० ई० तक) भोपाल, १९९१

मिश्र, स्नच्चिदानन्द - प्राचीन भारत मे ग्राम एव ग्राम्य जीवन , गोरखपुर, १९८४,

मिश्र, पद्मा - इवोल्यूशन ऑव द ब्राह्मण क्लास, वाराणसी, १९७८

मिश्र दुर्गाप्रसाद - शृगारी शतक काव्यो का आलोचनात्मक अध्ययन, मेरठ, १९९०
साहित्य सौहित्यम्, निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, १९९५

मित्रा, आर० - इण्डो-आर्यन्स खण्ड छ्छ कलकत्ता, १८८१

मित्रा, आर० सी० - डिक्लाइन ऑव बुद्धिज्म, विश्वभारती स्टडीज, १९५४

मुकर्जी, आर० के० - ऐन्शिएण्ट इण्डिया, इलाहाबाद, १९६०ो
लोकल गवर्नमेण्ट इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, ऑक्सफोर्ड, १९२०

मुकर्जी, सन्ध्या - सम आस्पेक्ट्स ऑव सोशल लाइफ इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, इलाहाबाद १९७६

मूरक्राफ्ट, डब्ल्यू० एव जार्ज ट्रेबेक - ट्रेवेल्स इन हिमालयन प्रोविन्सेस ऑव हिन्दुस्तान, ऐण्ड द पजाब,इन लद्दाख ऐण्ड कश्मीर, दो खण्ड, नई दिल्ली, १९७१

मैक्डॉनल, ए० ए० - हिस्ट्री ऑव सस्कृत लिटरेचर, लन्दन, १९००

मैती, एस० के० - अर्ली इण्डियन क्वायन्स ऐण्ड करेसी सिस्टम, दिल्ली, १९७०
- इकनॉमिक लाइफ इन नार्दर्न इण्डिया इन द गुप्ता पीरिएड, दिल्ली, १९७०

मोतीचन्द्र - सार्थवाह, पटना, १९५३

मेरी, मार्टिन - वूमेन इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, वाराणसी, १९६४

यादव बी० एन० एस० - सोसाइटी ऐण्ड कल्चर इन नार्दर्न इण्डिया इन ट ट्वेल्फथ सेन्चुरी ए० डी०, इलाहाबाद, १९७३

यग हसबैण्ड, एफ० - कश्मीर, नई दिल्ली, १९७०

यूले, हेनरी - द बुक ऑव सर मार्को पोलो, दो खण्ड, लन्दन, १९०३

युशुफ अली - मेडिवल इण्डिया, सोशल ऐण्ड इकनॉमिक कन्डीशस, लन्दन, १९३२

रमनप्पा, एम० एन० - आउलटाइन्स ऑव साउथ इण्डियन हिस्ट्री, दिल्ली, १९७५

राज, भारती - प्राचीन भारत मे सामाजिक गतिशीलता का अध्ययन, इलाहाबाद, १९८५

राधाकृष्णन् - इण्डियन फिलॉसफी, लन्दन, १९५६

राय, उदयनारायण - प्राचीन भारत मे नगर और नगर-जीवन, इलाहाबाद, १९६५

- गुप्त सम्राट और उनका काल, इलाहाबाद, १९७१

- स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर, इलाहाबाद, १९६९

राय, एस० एन० - हिस्टारिकल ऐण्ड कल्चरल स्टडीज इन द पुराणाज, इलाहाबाद, १९७८

राय, जी० के - इनवालटरी लेबर इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, इलाहाबाद, १९८१

राय, जयमल - द दरुल अरबन इकॉनामी ऐण्ड सोशल चेन्जेज इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, वाराणसी, १९७४

राय चौधरी, एच० सी० - पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९५३

- अर्ली हिस्ट्री ऑव द वैष्णव सेक्ट, कलकत्ता, १९२०

रे, एच० सी० - डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया, दो खण्ड, कलकत्ता, १९३१

रे, एस० सी० - अर्ली हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर ऑव कश्मीर, कलकत्ता, १९५७, दिल्ली, १९७०

रिस्ले, एच० - द पीपुल ऑव इण्डिया, लन्दन, १९१५

रेनो, लुइस - वेदिक इण्डिया, कलकत्ता, १९५७

रैप्सन, ई०जे० - (सम्पा०) द कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया, दिल्ली, १९६८

रॉलैण्ड, बेन्जिमिन - द आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर ऑव इण्डिया

लॉ०, एन० एन० - स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर, कलकत्ता, १९२५

लॉ०, बी० सी० - हिस्टारिकिल ज्यॉग्रफी ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डिया, पेरिस, १९५४

लॉरेन्स, वाल्टर - द वैली ऑव कश्मीर, लन्दन १८९५, श्रीनगर १९६७

लैपियर, आर० टी० - सोशल चेन्ज, चोकियो, १९६५

वलवलकर, पी० एच० - हिन्दू सोशल इन्स्टीट्यूशस, मद्रास, १९३९

वरदचारियर, एस० - हिन्दू जुडिसियल सिस्टम, लखनऊ, १९४६

विन्टरनित्स, एम० - ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर, दिल्ली, १९७२

विग्ने, जी० टी० - ट्रेवेल्स इन कश्मीर, लद्दाख, इस्कार्डो, खण्ड ६-छ, लन्दन, १८४२

वेद कुमारी - द नीलमत पुराण ए कल्चरल एण्ड लिटरेरी स्टडी, दो खण्ड श्री नगर जम्मू, १९६८

वैद्य, सी० वी० - हिस्ट्री ऑव मेडिवल हिन्दू इण्डिया, तीन खण्ड पूना, १९२१, १९२४, १९२६,

वाट, जी० (सर) - डिक्शनरी ऑव द इकनॉमिक प्रोडक्ट्स ऑव इण्डिया,छ खण्ड, १९९१

वाटर्स, टी० - ऑन युवान च्वाग्स ट्रेवेल्स इन इण्डिया, दिल्ली, १९६१

विल्सन, एच० एच० - ए ग्लोजरी ऑव जुडीशियल ऐण्ड रेवेन्यू टर्म्स, लन्दन, १९५५

- एसे ऑन द हिन्दू हिस्ट्री ऑव कश्मीर, कलकत्ता, १९६०

विलियम्स, एम० - ब्राह्मण्जिम ऐण्ड हिन्दूइज्म, लन्दन, १८९१

- बुद्धिज्म, वाराणसी, १९६४

- ए सस्कृत इगलिश डिक्शनरी, ऑक्सफोर्ड, १९५१

विन्टरनित्ज, एम० - हिस्ट्री ऑन इण्डियन लिटरेचर, दो खण्ड, कलकत्ता, १९२७-३३

वुड्रॉफ, सर जे - इन्ट्रोक्शन टु तत्रशास्त्र, मद्रास, १९६३

- द सर्पेन्ट पॉवर, १९६४

- शक्ति ऐण्ड शाक्त, मद्रास, १९५१

वेवर, मैक्स - द रिलिजन ऑव इण्डिया, द फ्री प्रेस, ग्लेन कोई

वाचस्पति, गैरोला - भारतीय चित्रकला,

शर्मा, दशरथ - राजस्थान थ्रू द ऐजेज (खण्ड ६) बीकानेर, १९६६

- अर्ली चौहान डाइनेस्टीज, दिल्ली, १९५९,

शर्मा, जी० आर० - इक्सकावेशस ऐट कौशाम्बी (१९५७-१९५९ ई०), दिल्ली, १९६६

शर्मा, आर० एस० - इण्डियन फ्युडलिज्म, दिल्ली, १९८०
- पर्सपेक्टिव्स इन सोशल ऐण्ड इकनॉमिक हिस्ट्री ऑव अर्ली इण्डिया, दिल्ली, १९८३
- प्राचीन भारत मे भौतिक प्रगति एव सामाजिक सरचनाए नई दिल्ली, १९९०
- पूर्वकालीन भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था पर प्रकाश, दिल्ली, १९७८
- पूर्व मध्यकालीन भारत मे सामाजिक परिवर्तन, दिल्ली, १९७५
- मैटेरियल कल्चर ऐण्ड सोशल फार्मेशन्स इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, दिल्ली, १९८३
- लाइट ऑन अर्ली इण्डियन सोसाइटी ऐण्ड इकॉनमी, बम्बई, १९६६
- शूद्राज इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, दिल्ली, १९८०
- लैण्ड रेवेन्यू इन इण्डिया, हिस्टारिकल प्रोबिन्स, नई दिल्ली, १९७१

एव झा, वी० - (सम्पा०) इण्डियन सोसाइटी, हिस्टारिकल प्रोबिन्स, नई दिल्ली, १९७४

शर्मा, रामायण प्रसाद - भारतीय वर्ण व्यवस्था, सांस्कृतिक एव दार्शनिक विवेचन, वाराणसी, १९७४

शास्त्री शकुन्तला राव - वूमेन इन द सेक्रेड लाज, बम्बई, १९५३

शाह, के० टी० - ऐन्शिएण्ट फाउन्डेशस ऑव इकनामिक्स इन इण्डिया, बम्बई, १९५४

शास्त्री, ए० बी० - असुर इण्डिया, पटना, १९२६

स्पेगलर, जोसेफ जे० - इण्डियन इकनॉमिक थाट, डरहम, एन० सी०, १९७३

स्मिथ, वी० ए० - अर्ली हिस्ट्री ऑव इण्डिया, आक्सफोर्ड, १९२४

सरकार, डी० सी० - इण्डियन इपिग्राफी, दिल्ली, १९६६
- द इम्परर ऐण्ड द सबार्डिनेट रुलर्स, कलकत्ता, १९८२
- स्टडीज इन इण्डियन क्वायन्स, दिल्ली, १९६८
- (सम्पा०) लैण्ड सिस्टम ऐण्ड फ्युडलिज्म इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९६६
- सोशल लाइफ इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९७१

सक्सेना, के० एस० - पालिटिकिल हिस्ट्री ऑव कश्मीर, लखनऊ, १९७४

सरन, पी० - स्टडीज इन मुगल इम्पायर, कलकत्ता

स्पेयर, जे० एस० - स्टडीज एबाउट द कथासरित्सागर, लैडेन

सिल्स, एल० डेविड - इन्टरनेशनल इनसाइक्लोपीडिया ऑव सोशल साइन्सेज, खण्ड ऱ,१९६८

सिह, चन्द्रदेव - प्राचीन भारतीय समाज और चिन्तन, वाराणसी, १९८७

सिह, देवी प्रसाद - हिन्दू समाज मे परिवर्तन की प्रक्रिया, गोरखपुर, १९८४

सिह, रणजीत - धर्म की हिन्दू अवधारणा, इलाहाबाद, १९७७

सिन्हा ए० के० - सोशल स्ट्रक्चर ऑव इण्डिया, कलकत्ता, १९७४

सिन्हा, वी० पी० - पाटरीज इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, पटना, १९६९

सिलवरवर्ग, जेम्स - सोशल मोबिलिटी इन द कास्ट सिस्टम इन इंण्डिया माटन, द हाग, १९६८

सोरोकिन, पी० ए० - सोशल ऐण्ड कल्चरल मोबिलिटी, लन्दन, १९५९

साहनी, डी० आर० - प्रि मोहम्डन मानुमेन्ट्स ऑव कश्मीर, आर्क्या०, सर्वे० इण्डि० १९१५-१६ कलकत्ता १९१८

साकृत्यायन, राहुल - पुरातत्त्व निबन्धावली, इलाहाबाद, १९३७
तिब्बत मे बौद्ध धर्म, १९३४

सरकार, बी० के० - द फोल्क इलमेन्ट इन हिन्दू कल्चर, लन्दन, १९१७

सेन, पी० एन० - जनरल प्रिन्सिपल्स ऑव हिन्दू जुरिशप्रुडेन्स

सूफी, जी० एम० डी० - कश्मीर, दो खण्ड, लाहौर, १९४९

सूर्यकान्त - क्षेमेन्द्र स्टडीज, पूना, १९५४

श्रीमाली, के० एम० - (सम्पा०) एसेज इन इण्डियन आर्ट, रिलिजन एण्ड सोसाइटी, दिल्ली, १९८७

श्रीवास्तव, वी० सी० - सन वर्शिप इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, इलाहाबाद, १९७२

श्रीवास्तव, ए० एल० - मेडिकल इण्डियन कल्चर, आगरा, १९६४

हबीब, इरफान - द कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया, खण्ड छ्छ

हट्टन - कास्ट इन इण्डिया, लन्दन, १९६३

हनुमन्थन, के० आर० - अनटजेबिलिटी, मदुरै, १९७९

व्हीलर, जे० टाल्ब्याज - द रिलिजस ऐण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑव इण्डिया, दिल्ली, १९८८

हापकिन्स, ई० डब्ल्यू० - द रिलिजन्स ऑव इण्डिया, लन्दन, १८९५

- द सोशल ऐण्ड मिलिटरी पोजीशन ऑव द रुलिग कास्ट इन इण्डिया

हेस्टिग्स, जे० - (सम्पा०) इनसाइक्लोपीडिया ऑव रिलिजन ऐण्ड इथिक्स, वाराणसी, १९७२, खण्ड र्छ्ह्ह, इण्डियन वर्ग, १९०८-१९२६

हुसैन, युसुफ - ग्लिम्पसेज ऑव मेडिवल इण्डियन कल्चर, बम्बई, १९६२

त्रिपाठी, जयशकर - सस्कृत साहित्य रचना का इतिहास (साहित्य भण्डार, इलाहाबाद, सन् २००२)

त्रिपाठी, श्री शिव शकर - अथ-अनुक्रम

साहित्य भण्डार, इलाहाबाद सन्२००२

(भारतीय मनीषासूत्रम्, इलाहाबाद, सन् १९९०)

त्रिपाठी, आर० पी० - स्टडीज इन पोलिटिकल एण्ड सोशियो- इकनॉमिक हिस्ट्री ऑव अर्ली इण्डिया, इलाहाबाद, १९८१

- मिनिस्टर्स इन अर्ली इण्डिया, नीरज प्रकाशन, इलाहाबाद, १९९९

त्रिपाठी, आर० एस० - हिस्ट्री ऑव कन्नौज, दिल्ली, १९५९, बनारस, १९३७

त्रिपाठी, सत्यदेव - प्राचीन भारत मे गुप्तचर सेवा, दिल्ली, १९८५